तमसो मा ज्योतिर्गमय

SANTINIKETAN
VISWA BHARATI
LIBRARY

गौरमोहन

अर्थात्

डाक्टर रवीन्द्रनाथ ठाकुर के प्रसिद्ध उपन्यास "गोरा" का हिन्दी अनुवाद।

ebookspdf.in

If you want to download
a lot of ebook,
click the below link
Get More
Free
eBook
VISIT
WEBSITE
www.ebookspdf.in
Click here

गौरमोहन

अर्थात

डाक्टर रवीन्द्रनाथ ठाकुर के प्रसिद्ध
उपन्यास "गोरा" का हिन्दी
अनुवाद।

(पूर्वार्द्ध)

प्रकाशक

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

संवत् १९७९

मूल्य २

Published by
Apurva Krishna Bose,
at The Indian Press, Ltd.,
Allahabad

Printed by
Bishweshwar Prasad,
at The Indian Press, Ltd.,
Benares-Branch

गौरमोहन

[१]

सावन का महीना है। कई दिनों से आकाश-मण्डल बादलों से घिरा था। आज सबेरे धूप निकल आने से कलकत्ते ने एक अपूर्व सौन्दर्य धारण किया है। सब लोग उत्साहपूर्वक अपना अपना काम करने लगे हैं।

ऐसे समय में कुछ विशेष प्रयोजन न रहते भी विनयभूषण अपने दो-मञ्जिले मकान के बरामदे में खड़ा होकर सड़क से जाते हुए लोगों की ओर देख रहा था। कालेज का पढ़ना उसका बहुत दिनों से छूटा ही था। घर का काम-काज भी वह कुछ न करता था। यही उसकी दशा थी। इस समय उसका मन सभा-समाज चलाने और समाचार-पत्रों में लेख देने की ओर विशेष रूप से झुका था। किन्तु इन कामों से, जैसा चाहिए, अब तक उसे पूर्ण सन्तोष नहीं हुआ है। आज क्या करना होगा, इसी बात को वह सोच रहा था, कुछ निश्चय न कर सकने के कारण मन ही मन घबरा भी रहा था।

इसी समय एक बैरागी झगा पहिरे, हाथ में तम्बूरा लिये, पास ही एक दूकान के सामने गाने लगा—

देखो, एक अनोखा पत्ती आ आ कर उड़ जाता है ।
इस पिँजरे के भीतर भाई बोली मधुर सुनाता है ॥
मानव-जन्म सफल कर लेते अगर इसे धर पाते हम ।
दे कर मन-बेड़ी पग इसके अधिक अधिक सुख पाते हम ॥

विनयभूषण की इच्छा हुई कि बैरागी को बुला कर यह अनोखे पत्ती वाला गीत लिखालें, किन्तु जैसे वैशाख महीने में कुछ रात रहते जाड़ा मालूम होने पर भी कपड़ा ओढ़ते नहीं बनता वैसे ही एक प्रकार के आलस्य भाव के कारण बैरागी का बुलाना न हो सका । गीत का लिखाना भी न हुआ । वह केवल उस अनोखे पत्ती का गान मनही मन गुनगुना कर गाने लगा ।

इतने में ठीक उसके घर के सामने ही एक भाड़ा-गाड़ी के ऊपर एक बहुत बड़ी जोड़ी-गाड़ी आ पड़ी और उस कमज़ोर गाड़ी का एक पहिया तोड़ती हुई आगे निकल गई । भाड़ा-गाड़ी उलटते उलटते बची और सड़क के एक किनारे जा खड़ी हुई ।

विनयभूषण ने झट बरामदे से नीचे आ रास्ते पर जा कर देखा, गाड़ी से एक सत्रह अठारह वर्ष की लड़की उतर पड़ी है और गाड़ी के भीतर से एक बूढ़ी वयस के भलेमानस उतरने की चेष्टा कर रहे हैं ।

विनयभूषण ने उन्हें हाथ का सहारा देकर गाड़ी से उतार लिया और उनका मुँह सूखा हुआ देख कर पूछा—आपको चोट तो नहीं लगी?

"नहीं, कुछ नहीं" कह कर बूढ़े ने हँसने की चेष्टा की। परन्तु वह हँसी मुँह के बाहर भी न आने पाई, इतने में बेचारे बूढ़े मूर्च्छित हो तलमला कर गिरने लगे। विनय बाबू ने उन्हें पकड़ लिया और उस घबराई हुई लड़की की ओर देख कर कहा—यह सामने ही मेरा घर है, आप लोग इसके भीतर चलें।

वृद्ध को एक चारपाई पर लिटा देने के बाद उस युवती ने चारों ओर निहार कर देखा कि घर के कोने में एक सुराही रक्खी है। वह झट सुराही का जल एक गिलास में ढाल वृद्ध के मुँह पर छिड़क कर पंखा झलने लगी और फिर विनय बाबू की ओर देख कर बोली—एक डाक्टर को बुलाते तो अच्छा होता।

घर के पास ही डाक्टर था। विनय ने उस को बुला लाने के लिए नौकर भेजा।

घर में एक ओर टेबुल के ऊपर एक आइना, सुगन्धित तेल की शीशी और बाल झाड़ने की कंघी रक्खी थी। विनय उस युवती के पीछे खड़ा होकर आइने की ओर टकटकी बाँध कर देखने लगा।

बिनयभूषण ने बालपन से ही कलकत्ते के मकान में रह कर लिखना पढ़ना सीखा है। सांसारिक कामकाज के साथ

उसका जो कुछ परिचय हुआ है वह केवल पुस्तकों के ही द्वारा । भले घर की पराई स्त्री के साथ कभी उसका कोई परिचय न हुआ था ।

आइने की ओर दृष्टि कर उसने देखा कि जिस मुँह का प्रतिबिम्ब दर्पण पर पड़ा है वह क्या ही सुन्दर मुख है ! उस मुखमण्डल के प्रत्येक अवयव की शोभा को अलग अलग देखने की अभिज्ञता उसके नेत्रों को न थी । सिर्फ़ उस उद्विग्न और प्रेम से झुके हुए तारुण्य-पूर्ण मुख का कोमलता से विभूषित प्रकाश विनय के नेत्रों में एक आश्चर्य की भाँति उद्भासित हुआ ।

कुछ देर के बाद वृद्ध ने धीरे धीरे आँखें खोलीं और "बेटी!" कह कर लम्बी साँस ली । बेटी ने दोनों आँखों में आँसू भर वृद्ध के मुँह के पास मुँह ले जाकर बड़ी नम्रता के साथ सिर झुकाया और करुणाभरे स्वर में पूछा—बाबूजी, आप को कहाँ चोट लगी है?

"ऐं! मैं कहाँ आया हूँ" कह कर वृद्ध को बैठने का उपक्रम करते देख विनय ने सामने जाकर कहा—आप अभी उठें मत, लेटे ही रहें,—डाक्टर आ रहा है ।

तब उनको सब बातें याद हो आईं और उन्होंने कहा—हाँ, सिर में इस जगह कुछ चोट मालूम होती है, पर अधिक कुछ कष्ट बोध नहीं होता ।

उसी समय डाक्टर जूते चरमराते हुए आ पहुँचे ।

उन्होंने भी वृद्ध को देख कर कहा—कुछ डर नहीं, ज्यादा चोट नहीं लगी है। थोड़े से गरम दूध में शराब मिलाकर पिलाने की व्यवस्था करके डाक्टरसाहब चले गये। उनके जाते ही वृद्ध अत्यन्त संकुचित और व्यग्र हो उठे। उनकी लड़की ने उनके मन का भाव समझ कर कहा—बाबूजी, आप क्यों इतनी चिन्ता कर रहे हैं? डाक्टर की फ़ीस और औषध का मूल्य अपने घर पहुँचने पर भेज दूँगी।—यह कहकर उसने विनय के मुँह की ओर देखा।

अहा! कैसे बाँके नेत्र हैं। वे बड़े हैं या छोटे, विष-भरे हैं या अमृत-भरे, कुछ समझ में नहीं आता। उनपर दृष्टि पड़ते ही जान पड़ता है कि उस दृष्टि में अवश्य कुछ विशेष प्रभाव है। इसमें सन्देह नहीं कि वह एक स्थिर शक्ति से भरी है।

विनय ने कहना चाहा—फ़ीस महज़ मामूली है—उसके लिए—वह आप क्यों—मैं ही—; पर वह स्त्री इस भाव से उसके मुँह की ओर देख रही थी, जिससे वह कुछ बोल न सका और मन ही मन समझ गया कि फ़ीस का रुपया उससे लेना ही पड़ेगा।

वृद्ध ने कहा—देखो, मेरे लिए शराब न चाहिए। उस की ज़रूरत—

बेटी ने बात काट कर कहा—क्यों बाबूजी, डाक्टरसाहब जो कह गये हैं।

वृद्ध ने कहा—डाक्टर लोग योंही कहा करते हैं। यह उन लोगों का एक प्रकार का कुसंस्कार है। थोड़ा सा गरम दूध पीने ही से मेरी कमज़ोरी दूर हो जायगी।

दूध पीने से वृद्ध के शरीर में कुछ बल का सञ्चार हो आया। तब उन्हों ने विनय से कहा—अब हम जाना चाहते हैं। आप को बहुत कष्ट दिया।

लड़की ने विनय के मुँह की ओर देख कर कहा—एक गाड़ी चाहिए।

वृद्ध ने कुछ संकुचित होकर कहा—फिर उन को तकलीफ़ देने की क्या ज़रूरत? हमारा घर तो यहाँ से पास ही है. इतनी दूर पैदल ही जायँगे।

लड़की ने कहा—नहीं बाबूजी, यह न होगा।

वृद्ध इस पर कुछ न बोले। विनय स्वयं जाकर एक गाड़ी ले आया। गाड़ी पर सवार होने के पूर्व वृद्ध ने उस युवक का नाम पूछा।

विनय ने कहा—मेरा नाम विनयभूषण भट्टाचार्य है।

वृद्ध—मेरा नाम परेशचन्द्र है। मैं समीप ही इस महल्ले के ७८ नम्बर के घर में रहता हूँ। अवकाश पाकर आप कभी मेरे घर आने की कृपा करेंगे तो मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँगा।

बेटी ने विनय के मुँह की ओर नज़र करके बिना कुछ बोले ही इस अनुरोध का समर्थन किया। विनय उसी क्षण गाड़ी में बैठ कर उनके घर जाने को प्रस्तुत था, किन्तु यह

शिष्टता के अनुकूल होगा या नहीं, यह सोच कर खड़ा हो रहा। गाड़ी रवाना होते समय बेटी ने सिर झुका कर विनय को अभिवादन किया। विनय हतबुद्धि सा खड़ा था, इसलिए प्रत्यभिवादन न कर सका। घर आकर वह इसको अपनी भूल समझ बार बार अपने को धिक्कार देने लगा। इसके साथ साथ विनय ने भेट होने से बिदा होने तक के अपने समस्त आचरण को जब आलोचना करके देखा तब उसने आदि से अन्त तक अपना सारा व्यवहार असभ्यता में भरा पाया। किस समय मे क्या करना उचित था, क्या बोलना उचित था, इन बातों को लेकर वह मनही मन झूठ मूठ का तर्क वितर्क करने लगा। घर के भीतर प्रवेश करके उसने देखा, जिस रूमाल से बालिका ने अपने बाप का मुँह पोंछा था वह रूमाल बिछौने पर पड़ा है। उसने झट उसे उठा लिया। उसके मन में बैरागी के स्वर मे वह गीत गूँजने लगा—

देखो, एक अनाखा पक्षी आ आ कर उड़ जाता है।

देखते ही देखते दस बजने को हुए। वर्षा की धूप कड़ी हो उठी। गाड़ियों का स्रोत बड़े वेग से ऑफ़िस की ओर दौड़ चला। विनय का उस दिन किसी काम में जी न लगा। उसे अपना छोटा सा घर और चारों ओर कलकत्ते के बुरे महल्ले मायामहल की भाति प्रतीत होने लगे। इस वर्षा-ऋतु के प्रभातकालिक सूर्य की निर्मल प्रभा उसके मस्तिष्क में प्रवेश कर गई; वह उसके लहू के भीतर प्रवाहित होने

लगी । उसके हृदय के आगे एक ज्योतिर्मय वस्तु ने यवनिका की भाँति गिर कर प्रतिदिन के जीवन की सारी तुच्छता को एकबारगी छिपा दिया ।

इसी समय उसने देखा कि एक सात आठ वर्ष का लड़का सड़क पर खड़ा होकर उसके मकान का नम्बर देख रहा है । विनय ने ऊपर से कहा—हाँ यही घर है । लड़का उसी के घर का नंबर खोज रहा था इसलिए इस सम्बन्ध में उसके मन में कोई सन्देह न रहा । विनय चप्पल चटचटाते हुए झटपट सीढ़ी से नीचे उतर आया और बड़े प्यार से लड़के को घर के भीतर लाकर उसके मुँह की ओर देखने लगा । 'बहन ने मुझको भेजा है' यह कह कर उस लड़के ने विनयभूषण के हाथ में एक चिट्ठी दी ।

विनय ने चिट्ठी हाथ में लेकर पहले लिफ़ाफ़े के ऊपर अपना नाम देखा । अँगरेज़ी अक्षरों की लिखावट देखते ही वह समझ गया कि यह किसी स्त्री के हाथ का लिखा है । लिफ़ाफ़े के भीतर चिट्ठी पत्री कुछ न थी । केवल कोरे काग़ज़ में लपेटे कई रुपये थे ।

लड़के को जाने का उपक्रम करते देख विनय ने उसको किसी भी तरह जाने न दिया । उसका हाथ पकड़ कर वह उसे कोठे के ऊपर ले गया ।

लड़के का रङ्ग उसकी बहन की अपेक्षा कुछ साँवला था । परन्तु उसका चेहरा बहुत कुछ बहन के मुँह से मिलता

जुलता था। उस बालक को देखकर विनय के मन में एक स्वाभाविक स्नेह और विशेष हर्ष उपजा।

लड़का ख़ूब ढीठ था। उसने कोठे के ऊपर के कमरे में प्रवेश करके दीवार में लटकती हुई एक तसवीर को देख कर पूछा—यह किसका चित्र है?

विनय ने कहा—यह मेरे एक मित्र की तसवीर है।

लड़के ने पूछा—मित्र की तसवीर? आप के मित्र कौन हैं?

विनय ने हँस कर कहा—तुम उसको नहीं पहचानते। मेरे मित्र का नाम गौरमोहन है। हम उसे गोरा कहते हैं। हम लोगों ने एक साथ पढ़ा लिखा है।

लड़का—क्या वे अब भी पढ़ते हैं?

विनय—नहीं, अब नहीं पढ़ते।

लड़का—आप का सब पढ़ना हो गया?

विनय ने इस छोटे लड़के के निकट भी गर्व की लालसा को न रोक कर कहा—हाँ, सब पढ़ना हो गया।

बालक ने अचम्भित होकर साँस ली। मालूम होता है, उसने सोचा कि इतनी विद्या न जाने मैं कितने दिनों में ख़तम करूँगा।

विनय—तुम्हारा नाम क्या है?

बालक—मेरा नाम सतीशचन्द्र मुखोपाध्याय है।

विनय ने विस्मित होकर कहा—मुखोपाध्याय?

इस के बाद उसने एक एक करके बालक का सब परिचय प्राप्त कर लिया। परेश बाबू उसके पिता नहीं हैं। वे इन दोनों भाई-बहनों के रक्षक हैं, उन्होंने लड़कपन से ही इन दोनों को पाला-पोसा है। इसकी बहन का नाम पहले राधा-रानी था—परेश बाबू की स्त्री ने उसे बदल कर "सुशीला" नाम रख दिया है।

थोड़ी ही देर की भेंट में विनय के साथ सतीश का पूरा हेलमेल हो गया। सतीश जब अपने घर जाने को उद्यत हुआ तब विनय ने पूछा—क्या तुम अकेले जा सकोगे?

उसने गर्व के साथ कहा—जी हाँ, मैं अकेला ही जाऊँगा।

विनय—नहीं, मैं तुम्हें पहुँचा दूँगा।

अपनी शक्ति के प्रति विनय का यह सन्देह देख कर सतीश ने क्षुब्ध होकर कहा—"क्या मैं अकेला नहीं जा सकता हूँ?" यह कह कर वह अपने अकेले जाने-आने के कई एक अद्भुत उदाहरण देने लगा। तो भी विनय उसके घर के दर्वाज़े तक उसके साथ गया, पर इसका ठीक कारण वह अबोध बालक न समझ सका।

सतीश ने पूछा—आप भीतर नहीं आवेंगे?

विनय ने अपने मन को रोक कर कहा—आज नहीं, दूसरे दिन आऊँगा।

घर लौट कर विनय ने वह सरनामा लिखा लिफ़ाफ़ा पाकेट से निकाल कर बड़ी देर तक देखा। प्रत्येक अक्षर

और उसकी बनावट उसके हृदय-पट पर अङ्कित हो गई। इसके बाद उसने रुपया-सहित वह लिफ़ाफ़ा बड़े यत्न से बक्स के भीतर बन्द करके रख दिया। यह रुपया समय आ पड़ने पर भी ख़र्च किया जायगा, इसकी संभावना न रही।

[२]

वर्षा ऋतु की साँझ होते न होते आकाश अन्धकार से भर गया है। चारों ओर मेघ का साम्राज्य दिखाई दे रहा है। निःशब्द घन घटा के नीचे कलकत्ता शहर एक बहुत बड़े उदासीन कुत्ते की भाँति पूँछ के भीतर मुँह को छिपा, कुण्डली सी मार, चुप हो पड़ा है। कल साँझ से टिप् टिप् कर कुछ पानी बरस गया है, जिससे सड़क की धूल कीचड़ बन गई है। किन्तु इतनी वृष्टि नहीं हुई है, जो कीचड़ को धो बहा कर सड़क को साफ़ कर दे। आज दिन के पिछले पहर से पानी बरसना बन्द है; किन्तु बादल के रङ्ग ढङ्ग से मालूम होता है कि कुछ ही देर में ज़ोर शोर की वर्षा होगी। ऐसे सुहावने समय में साँझ को जब सूने घर के भीतर जी नहीं लगता और बाहर घूमने की भी इच्छा नहीं होती, तब अमीर लोग अकसर छत के ऊपर जा बैठते हैं। ठीक ऐसी अवस्था मे दो नवयुवक एक तिमहले मकान की भीगी छत के ऊपर बेंत के मोढ़ों पर बैठे हैं।

ये दोनों मित्र जब छोटे थे तब स्कूल से आकर इस छत पर दौड़-धूप करते और खेलते थे। इमतिहान देने के पूर्व दोनों चिल्ला चिल्ला कर पाठ याद करते करते इसी छत पर पागल की भाँति इधर उधर दौड़ते थे। गरमी के मौसम में कालेज से लौट कर रात को दोनों इसी छत के ऊपर ब्यालू करते थे। कभी कभी दोनों में किसी विषय का तर्क होते होते रात के दो बज जाते और तर्क करते ही करते दोनों सो जाते थे। जब सबेरे सूर्य की किरण उन दोनों के मुँह पर आ पड़ती थी तब वे चौंक कर जाग उठते और अपने को उसी जगह चटाई पर सोये हुए देख आश्चर्य करते थे। अब ये दोनों कालेज की सभी परीक्षाओं में पास हो चुके हैं। आजकल इस छत के ऊपर महीने में जो एक बार हिन्दूहितैषिणी सभा होती है, उसके इन दोनों में एक सभापति और दूसरे मन्त्री हैं।

सभापति का नाम गौरमोहन है; उसको आत्मीय बन्धुवर्ग गोरा अथवा गौर कह कर पुकारते हैं। वह चारों ओर के सबलोगों से न्यारा होकर रहना चाहता है। उसको कालेज के पण्डित लोग रजत-पहाड़ कहा करते थे क्योंकि उसके शरीर का रङ्ग अत्यन्त गौर था। ऊँचाई में वह छः फ़ीट से कम लम्बा न था। उसके बदन की हड्डियाँ ख़ूब मज़बूत और मोटी थीं। हाथ बाघ के पञ्जे के सदृश दृढ़ थे। उसकी आवाज़ इतनी कड़ी थी कि उसके मुँह से एक बार "कोई है?"

सुनते ही लोग चौंक उठते थे। सारांश यह कि उसके शरीर का गठन एक विचित्र ही तरह का था। गौरमोहन को देख कर उसे कोई सुन्दर न कहे, परन्तु वह ऐसा न था कि उसे देख कर कोई घृणा करे। सब लोग उसे देखना चाहते थे।

उसका मित्र विनयभूषण एक सरल सुशिक्षित भले आदमी की भाँति नम्र और स्वरूपवान् था। स्वभाव की कोमलता और बुद्धि की तीक्ष्णता दोनों ने मिल कर उसके मुख की शोभा को बढ़ा दिया है। कालेज में वह बराबर अधिक नम्बर और वृत्ति पाता आया है। उसका मित्र गौरमोहन किसी तरह पढ़ने-लिखने में उसकी बराबरी न कर सकता था। पाठ्य विषय में गौर बाबू के चित्त का वैसा झुकाव न था। विनय की भाँति वह किसी विषय को न शीघ्र समझ सकता और न उसे याद ही रख सकता था। विनयभूषण ही उस का हाथ पकड़ कर कालेज की कई परीक्षाओं के भीतर से खींच कर उसे किनारे लाया है।

गौरमोहन विनय से कहा करता था—सुनो, विनय, अविनाश ने जो ब्राह्मों की निन्दा की थी, उससे यही जाना जाता है कि वह अपने मत का पक्का और स्थिर स्वभाव का मनुष्य है। उससे तुम इस प्रकार एकाएक ख़फ़ा क्यों हो उठे?

विनय—आश्चर्य है! इस सम्बन्ध में कोई प्रश्न किया जा सकता है यह भी मैं नहीं समझ सकता।

गौरमोहन—यदि यही बात सच है, तो यह तुम्हारे मन

का दोष है। मनुष्यों का एक दल समाज का बन्धन तोड़ कर सब कामों में उलटी रीति से चले और समाज अविचल भाव से उस का सुविचार करे, यह स्वाभाविक नियम नहीं है। समाज उनकी उलटी चाल देख कर निन्दा करेगी ही—उनकी भूल मानेगी ही। वे लोग सीधे भाव से जो काम करेंगे, वह इसकी आँखों में टेढ़ा जँचेगा ही। जिसे वे अच्छा समझेंगे, उसे यह बुरा कहेगा ही। यही होना उचित भी है। अपनी इच्छा से समाज-बन्धन को तोड़ कर बाहर निकल जाने वालों के लिए जितने दण्ड हैं, यह भी उन में एक है।

विनय—जो स्वाभाविक है वही अच्छा है, यह मैं नहीं कह सकता।

गौरमोहन ने कुछ तीव्र भाव धारण कर कहा—अच्छा है या नहीं, इस बात को जाने दो। यदि संसार में दो चार मनुष्य अस्वाभाविक मिलें तो मिलें, पर और सब तो स्वाभाविक ही हैं। यदि ऐसा न हो तो संसार का कोई काम न चले। जिनको ब्राह्म हो कर बहादुरी दिखलाने का शौक है, हिन्दू समाज उनके सब कामों में भूल समझ उनकी निन्दा करेगी ही। यह दुःख उन्हें सह्य करना ही होगा। वे लोग अपना छाता तान कर चलें और उनके विरुद्ध पक्षवाले उनके पीछे पीछे शाबाशी देते चलें, यह कभी हो नहीं सकता। अगर ऐसा होता भी तो संसार के लोगों को सुभीता न होता।

विनय—मैं किसी दल की निन्दा की बात नहीं कहता हूँ। व्यक्तिगत—

गौरमोहन—फिर दल की निन्दा कैसी? यह तो मतामत का विचार है। व्यक्तिगत निन्दा होनी ही चाहिए। अच्छा तुम तो बड़े सज्जन हो, कहो, तुम किसी की निन्दा करते हो या नहीं?

विनय—करता हूँ, ख़ूब करता हूँ—किन्तु इसके लिए मैं लज्जित हूँ।

गौरमोहन ने ख़ूब ज़ोर से अपने दहने हाथ की मुट्ठी बाँध कर कहा—नहीं विनय, यह बात न हो सकेगी। किसी तरह भी नहीं।

विनय कुछ देर चुप रहा। फिर उसने कहा—कहो, क्या हुआ है? तुम्हें डर किस बात का है?

गौर—मैं स्पष्ट ही देख रहा हूँ, तुमने अपने को दुर्बल बना डाला है।

विनय ने कुछ उत्तेजित हो कर कहा—दुर्बल! तुम क्या समझते हो? मैं चाहूँ तो अभी उनके घर जा सकता हूँ। उन्होंने मुझको बुलाया भी था, किन्तु मैं नहीं जाता।

गौर—किन्तु यह 'नहीं जाता' तुम्हें किसी तरह नहीं भूलता। दिन-रात केवल यही सोचते हो, नहीं जाता हूँ; मैं उनके यहाँ नहीं जाता हूँ। इसकी अपेक्षा जाना ही अच्छा है।

विनय—तो क्या जाने ही को कहते हो?

गौरमोहन ने अपने घुटने को थपथपा कर कहा—नहीं भाई! मैं जाने को नहीं कहता हूँ। हाँ, इतना अवश्य कहता हूँ कि जिस दिन तुम जाओगे उस दिन पूरे तौर से ही जाओगे। उसके दूसरे ही दिन से तुम उनके घर भोजन करना आरम्भ करोगे और ब्राह्म-समाज के रजिस्टर में नाम लिखा कर एकबारगी दिग्विजयी होकर ब्राह्म मत का प्रचार करोगे।

विनय—क्या कहते हो! उसके दूसरे ही दिन?

गौर—उसके बाद क्या! मरने से बढ़कर तो कुछ नहीं है। तुम ब्राह्मण के पुत्र होकर कर्मनाशा नदी के किनारे जाकर मरोगे, तुम्हारा आचार विचार कुछ न रहेगा। कम्पास-टूटे नाविक की भाँति तुम्हारा पूर्व पश्चिम का ज्ञान लोप हो जायगा। तब तुम यही समझोगे कि जहाज़ को किनारे लगाना या किसी बन्दर में ठहराना कुसंस्कार और संकीर्णता है। केवल बिना प्रयोजन तैरा कर जहां तहाँ चला जाना ही यथार्थ में जहाज़ का चलाना है। किन्तु इन सब बातों को लेकर बकवाद करने से मेरा धैर्य लुप्त हो जाता है। मैं कहता हूँ, तुम जाओ। अधःपात के मुख में पाँव डाल कर हम लोगों को भी क्यों उस ओर घसीटे लिये जा रहे हो?

विनय हँस उठा और बोला—डाक्टर की आशा छोड़ देने से सब रोगी हमेशा मर ही जाते हैं, ऐसा नहीं होता। मैं तो अन्तकाल का कोई लक्षण नहीं देखता।

गौर—नहीं देखते हो?

विनय—नहीं।

गौर—क्या नाड़ी छूटने पर नहीं है?

विनय—नहीं, खूब ज़ोर से चल रही है।

गौर—क्या तुम यह नहीं जानते कि यदि वह अपने श्री-हाथों से परोसेंगी तो म्लेच्छ का भी अन्न देवता का भोग हो जायगा?

विनय अत्यन्त संकुचित होकर बोला—गौर बाबू! बस, अब इस विषय को यहीं तक रहने दो।

गौर—क्यों, इसमें अपमान की कोई बात नहीं है। उसका श्री-हाथ ऐसा तो नहीं जो कोई देख न सके। भले लोगों के साथ जिसका शेक-हैन्ड होता है उसके पवित्र कर-पल्लव का नाम लेना भी जब तुम्हें सह्य नहीं होता तब हम विजय की आशा नहीं कर सकते।

विनय—देखो गौर बाबू, मैं स्त्रियों की भक्ति करता हूँ—हमारे शास्त्र में भी—

गौर—तुम जिस भाव से स्त्री जाति की भक्ति करते हो उसके लिए शास्त्र की दुहाई देने की आवश्यकता नहीं। उसको भक्ति नहीं कहते, जो कुछ कहते हैं उसे यदि हम मुँह पर लावें तो तुम हमें बिना मारे न छोड़ोगे।

विनय—यह तुम अपने दैहिक बल के भरोसे कहते हो?

गौर—शास्त्र में स्त्रियों के विषय में लिखा है—"पूजार्हा

गृहदीप्तय:"—वे पूजनीया होकर घर को उज्ज्वल करती हैं। वे पुरुषों के हृदय को भी भले ही प्रकाशमान करती हैं, इसलिए विलायती विधि से उनकी जो पूजा की जाती है, उसे पूजा न कहना ही अच्छा है।

विनय—कहीं कहीं विपरीत दशा देखने से क्या एक विशेष भाव के ऊपर ऐसा कटाक्ष करना उचित है?

गौरमोहन ने अधीर होकर कहा—विनय, अभी तुम्हारी बुद्धि ठिकाने नहीं है, इसलिए तुम मेरी बात नहीं मानोगे। मैं कहता हूँ, विलायती शास्त्र में स्त्री जाति के सम्बन्ध में जो अत्युक्तियाँ कही गई हैं, उनका आन्तरिक अर्थ है वासना। स्त्री जाति की पूजा करने का जो निर्दिष्ट स्थान माँ का घर है, वहाँ से उन्हें हटा लाकर उनकी जो स्तुति की है उसके भीतर अपमान छिपा है। पतङ्ग की भाँति तुम्हारा मन जिस कारण परेश बाबू के घर के चारों ओर घूम रहा है उसे अँगरेज़ी में "लव्" कहते हैं। कहीं अँगरेज़ों की नक़ल में इस "लव्" को ही संसार में एक परम पुरुषार्थ मान कर उसकी उपासना रूपी भक्तिभाव का भूत तुम्हारे ऊपर भी सवार न हो जाय।

विनय चाबुक खाये नये घोड़े की तरह उछल कर बोला—ओफ़्, गौर बाबू, अब रहने दो, बहुत हुआ।

गौर—बहुत क्या हुआ है। अभी तो कुछ भी नहीं हुआ। हमने स्त्री और पुरुष को अपने उचित स्थान में रह कर

सम्बन्ध जोड़ते नहीं देखा, इसीलिए उस विषय की कितनी ही कवितायें जमा कर रक्खी हैं।

विनय—अच्छा मैं मानता हूँ, स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध जिस जगह रहने से स्वाभाविक हो सकता है हम लोग प्रवृत्ति की झोंक में पड़ कर उसका उल्लंघन करते हैं और उसे मिथ्या कर डालते हैं, किन्तु यह अपराध क्या केवल विदेशी का हो है? इस सम्बन्ध में अँगरेज़ी कविता यदि झूठी है तो हम लोग जो कामिनी-काञ्चन के त्याग की बात लेकर वाद-विवाद करते हैं वह भी झूठ ही है। मनुष्य की प्रकृति जिसको लेकर सहज ही अपने को भूल जाती है उसके हाथ से उसे बचाने के लिए कोई तो प्रेम के सौन्दर्य का कुछ अंश कविता के द्वारा प्रकट करता है और उसकी मन्दता को धिक्कारता है, और कोई उसकी मन्दता की ही बड़ाई करता है तथा कामिनी-काञ्चन के त्याग की प्रशंसा करता है। ये दोनों केवल दो भिन्न प्रकृति के लोगों की भिन्न प्रणालियाँ हैं। यदि एक की निन्दा करोगे तो दूसरे की तारीफ़ न करने से न बनेगा।

गौर—नहीं, मैंने भूल की है। तुम्हारी अवस्था उतनी ख़राब नहीं है जितनी मैं समझता था। अब भी फ़िलासफ़ी जब तुम्हारे सिर पर नाच रही है तब तुम निर्भय होकर "लव" कर सकते हो; किन्तु समय रहते अपने को सँभाल लेना। हितैषी बन्धु का यही अनुरोध है।

विनय ने व्यग्र होकर कहा—क्या तुम पागल हुए हो?

मेरा लव् कैसा? हाँ, यह बात मुझे कबूल करनी ही होगी कि परेश बाबू का जो कुछ व्यवहार मैंने देखा है और उनके सम्बन्ध में जो कुछ सुना है उससे उनके ऊपर मेरी यथेष्ट श्रद्धा हुई है। इसीसे जान पड़ता है, उनके घर के भीतर का व्यवहार जानने के लिए मेरे चित्त का कुछ खिंचाव उस ओर अवश्य हुआ है।

गौर—अच्छी बात है। इस खिंचाव को ही सँभाल कर चलना होगा। वे सब शिकारी जानवर हैं। उनका भीतरी व्यापार जानने के लिए तुम भीतर जाकर यहाँ तक धँस जाओगे कि तुम्हारी चोटी तक दिखाई न देगी।

विनय—देखो, तुम में एक दोष है। तुम मन में समझते हो कि जितनी कुछ शक्ति है, ईश्वर ने केवल एक तुम्हीं को दी है और हम लोग जितने हैं शक्तिहीन हैं।

यह बात गौरमोहन के मन में नई सी जान पड़ी। उसने उत्साह के मारे विनय की पीठ पर एक हलकी चपत लगा कर कहा—ठीक कहते हो, यह मुझ में भारी दोष है।

विनय—उसकी अपेक्षा भी तुम में एक और भारी दोष है। दूसरे के सिर पर खड़ा होने से उसे कितनी पीड़ा होती है, इसका ज्ञान तुम्हें तनिक भी नहीं है।

इसी समय गौरमोहन के सौतेले बड़े भाई महिम बाबू अपना विशाल शरीर लिये हाँफते हाँफते ऊपर आकर बोले—गौर!

गौरमोहन ने झट कुरसी से खड़े होकर कहा—क्या आज्ञा है?

महिम—मैं देखने आया हूँ कि बरसात का बादल हम लोगों की छत के ऊपर गरजता हुआ नीचे उतर आया या नहीं? आज बड़ी देर से बहसें चल रही हैं। कहो, क्या माजरा है? मालूम होता है, अँगरेज़ों को इतनी देर में भारत समुद्र का आधा रास्ता तुमने पार करा दिया है? इसमें अँगरेज़ों की कोई विशेष हानि नहीं है, किन्तु नीचे की कोठरी में बड़ी बहू सिर पकड़े पड़ी हैं, इस सिंहनाद से उन्हें अवश्य कष्ट हो रहा है।

यह कह कर महिम बाबू नीचे चले गये।

[३]

गौरमोहन और विनयभूषण छत से नीचे उतरना चाहते थे, इसी समय गौर बाबू की माँ ऊपर आ पहुँचीं। विनय ने उनके पैर की धूल सिर में लगा कर प्रणाम किया।

गौरमोहन की माँ आनन्दी को देखने से कोई यह नहीं कह सकता कि यह उसकी माँ है। वे देह की दुबली थीं, क़द में न बहुत लम्बी थीं और न बहुत छोटी ही। सिर के बाल कुछ कुछ पके थे, पर वे बाहर से मालूम न होते थे। देखने से उनकी उम्र चालीस वर्ष से भी कम जान पड़ती थी।

उनके चेहरे से तीक्ष्ण बुद्धि का भाव प्रकट होता था। रंग साँवला था, गौरमोहन की कान्ति से उनकी कान्ति न मिलती थी। आनन्दी को देखते ही सब के पहले लोगों की दृष्टि एक वस्तु के ऊपर पड़ती थी। वे साड़ी के साथ शेमिज़ पहिरती थीं। हम उस समय की बात कहते हैं. जब नये दल में यद्यपि स्त्रियों में जामा और शेमिज़ पहिरने का रिवाज शुरू हो गया था तथापि कुलीन घर की स्त्रियाँ उन्हें किरिस्तानिन कह कर हँसती थीं और उनसे अलग रहती थीं। आनन्दी के पति कृष्णदयाल बाबू कमसरियट में काम करते थे। आनन्दी उनके साथ पश्चिम प्रदेश में मुग्धावस्था से ही रहती थीं। इसीसे वे यह न जानती थीं कि मेम की तरह पोशाक पहिरना लज्जा या परिहास का विषय है। वे अपने घर का सब काम धन्धा करके भी बहुत समय निकाल लेती थीं। उनके शरीर में आलस्य की गन्धमात्र न थी।

गौर की माँ ने ऊपर आकर कहा—जब नीचे से गौर का स्वर सुन पड़ता है तब मैं समझ जाती हूँ कि विनय बाबू ज़रूर ही आये हैं। कई दिनों से मेरा घर सूना था। तुम दोनों में क्या बातचीत होती थी, ज़रा मुझे भी समझा कर बताओ। तुम इतने दिन कहाँ थे? यहाँ क्यों नहीं आते थे? शरीर से तो आरोग्य थे न? किसी तरह की कोई बीमारी तो न हो गई थी?

विनय ने ठिठक कर कहा—नहीं माँ, बीमारी तो

नहीं, बदली के सबब कहीं जाने को जी नहीं चाहता था। इसी से न आता था।

गौर बाबू ने कहा—हाँ, अभी तुम बादल का बहाना कर रहे हो, बादल न रहने पर धूप का बहाना करोगे। देवता पर दोष आरोपण करने से वे तो कुछ बोलते ही नहीं हैं—असल में मन की बात भगवान् ही जानें।

विनय—गौर बाबू, तुम क्यों वृथा बकते हो?

आनन्दी—हाँ, यह ठीक कहता है। देवता सचमुच अपने मन की बात कुछ नहीं कहते। मनुष्य का जी कभी अच्छा कभी ख़राब रहता है। सदा एक सा नहीं रहता। इन सब बातों की बहस कहाँ तक करोगे। चलो विनय, मेरे साथ नीचे चलो, तुम्हारे लिए जलपान की सब तैयारी कर आई हूँ।

गौरमोहन ने सिर हिला कर कहा—नहीं माँ, यह न होगा। तुम्हारे घर में मैं विनय को खाने न दूँगा।

आनन्दी—ठीक है, बेटा। इसीलिए तो मैं तुमसे कभी खाने को नहीं कहती। इधर तुम्हारे बाप तो अब बड़े भारी शुद्धाचारी हो गये हैं। वे अपने हाथ से रसोई बनाकर खाते हैं; दूसरे के हाथ का राँधा नहीं खाते। विनय मेरा बड़ा ही सीधा और सुशील लड़का है। मुझे तुम्हारी भाँति उसकी ख़ुशामद न करनी होगी। तुम बरजोरी उसे रोक रखना चाहते हो।

गौरमोहन—सच कहती हो; मैं ज़बर्दस्ती उसे रोक रक्खूँगा। जब तक तुम अपनी उस लखमिनिया किरिस्तानिन दासी को घर से न हटाओगी तब तक तुम्हारे घर में हम लोगों का खाना-पीना न होगा।

आनन्दी—बेटा, तुम ऐसी बात मुँह से मत निकालो। बहुत दिनों तक तुमने उसके हाथ की बनाई रसोई खाई है। उसी ने पाल-पोस कर तुम को इतना बड़ा बनाया है। दो दिन की बात है, उसके हाथ की बनाई चटनी न होने से तुम्हें खाना नहीं रुचता था। छोटी उम्र में जब तुम्हें एक बार हैज़ा हुआ था तब लखमिनिया ने जिस तरह तुम्हारी सेवा करके तुम्हें बचा लिया था, वह क्या मैं कभी भूल सकती हूँ।

गौर—अब उसे पेन्शन दे दो, ज़मीन ख़रीद दो, घर बनवा दो, उसके लिए जो उचित समझो करो; परन्तु उसके रखने से अब काम न चलेगा।

आनन्दी—बेटा, तुम समझते हो कि रुपया देने ही से सब ऋण चुक जाता है? वह न ज़मीन चाहती है, न घर चाहती है। तुम को बिना देखे वह कभी जी नहीं सकती। उसके प्राण तुम्हीं हो।

गौर—तब तुम्हारी ख़ुशी है, उसे रक्खो। किन्तु विनय तुम्हारे यहाँ खायगा नहीं। जो कुल-धर्म है उसे मानना ही होगा। किसी तरह उसमें अन्यथा नहीं हो सकता। माँ, तुम

इतने बड़े अध्यापक के वंश की बेटी हो कर आचार का पालन नहीं करती, जो जी में आता है करती हो! यह कैसी बात है? लेकिन—

आनन्दी—सुनो बेटा, तुम्हारी माँ पहिले आचार का पालन करके ही चलती थी—जिस कारण उसे कई बार आँसू बहाने पड़े थे—उस समय तुम्हारा जन्म भी न हुआ था। मैं नित्य मिट्टी के पार्थिव बना कर पूजा करने बैठती थी और तुम्हारे पिता मेरे आगे से पार्थिव महादेव को उठा कर दूर फेंक देते थे। उस समय अपरिचित ब्राह्मण के हाथ का बनाया भात खाने में भी मुझे घृणा होती थी। तब रेल गाड़ी का इतना प्रचार न था। बैल-गाड़ी, घोड़ा-गाड़ी और पालकी आदि सवारी से जब कहीं मैं जाती थी, रास्ते में कुछ न खाती थी। दिन-रात भूखी रह जाती थी। मुझ से जहाँ तक निभ सकता, मैं वर्ण-धर्म की रक्षा करती थी। तुम्हारे बाबूजी क्या सहज ही मेरा आचार नष्ट कर सके थे? वे अपनी स्त्री को लेकर सभी जगह घूमते फिरते थे इसलिए उनके अफ़सर साहब लोग उनकी प्रशंसा करते थे। इसी से उनका मासिक बढ़ गया था। वे उनको एक ही जगह बहुत दिनों तक रख कर उनसे काम लेते थे। अब वे बूढ़ी वयस में नौकरी छोड़ ढेर के ढेर रुपये जमा करके ख़ूब आचारी बन बैठे हैं, परन्तु अब मुझसे उतना आचार नहीं निभ सकता। मेरे सात-पुरुषों का संस्कार एक एक करके सब लुप्त

हो गया। बहुत दिनों की बिगड़ी चाल क्या अब सुधर सकती है?

गौर—अच्छा, तुम अपने सात-पुरुषों की बात जाने दो, वे तो तुम्हें किसी काम में बाधा देने को नहीं आते। किन्तु हम लोगों के अनुरोध से तुम को कितनी ही बातें मान कर चलना होगा। शास्त्र का मान भले ही न रक्खो, परन्तु स्नेह का मान तो रखना ही होगा।

आनन्दी—तुम इस तरह मुझे क्या समझा रहे हो। मेरे मन में जो है वह मैं ही जानती हूँ। मेरे स्वामी और मेरे बेटे यदि मेरे कारण पग पग पर झगड़ने लगें तो मैं क्या सुख भोगूँगी! मैंने तो तुम को गोद में लेकर ही आचार को बहा दिया है। क्या यह तुम जानते हो? छोटे बच्चे को छाती से लगाकर देखने ही से स्पष्ट विदित होता है कि कोई जाति लेकर पृथिवी में उत्पन्न नहीं होता। जब से मैंने यह बात जानी है तब से मैंने यह भी निश्चय समझ रक्खा है कि अगर मैं किसी को किरिस्तान या छोटे क़ौम का आदमी समझ कर घृणा करूँगी तो ईश्वर तुम्हें भी मेरे हाथ से छीन लेगा। तुम मेरी गोद को भरा पूरा करके मेरे घर को उजाला करते रहो; मैं संसार की सभी जातियों के हाथ का छूआ खाऊँगी।

आज आनन्दी की बात सुन कर विनय के मन में हठात् एक अप्रकट सन्देह का आभास आ पड़ा। उसने एक

बार आनन्दी और एक बार गौरमोहन के मुँह की ओर देखा, देखतेही उसके मन का सारा सन्देह जाता रहा।

गौर बाबू ने कहा—माँ, तुम्हारी युक्ति भली भाँति समझ में न आई। जो विचारपूर्वक शास्त्र की बात मानकर चलते हैं उनके घर में भी तो बाल-बच्चे जीते जागते हैं। खास कर तुम्हारे ही लिए ईश्वर एक नया क़ानून बनावेंगे, ऐसी बुद्धि तुमने कहाँ पाई?

आनन्दी—जिसने तुझसा बेटा दिया है उसी ने यह बुद्धि भी दी है। कहो, मैं क्या करूँ? इसमें मेरा कोई अधिकार नहीं। तुम पागल की तरह क्यों बातें करते हो? तुम्हारा पागलपन देखकर मैं हँसूँ या रोऊँ? अच्छा, इन सब बातों को जाने दो। क्या सचमुच विनय मेरे यहाँ न खायगा?

गौर—क्यों न खायगा? वह तो कब से यह सुयोग ढूँढ़ रहा है। उसे तुम्हारे घर में खाना सोलह आने मंजूर है। किन्तु मैं उसे खाने न दूँगा। वह ब्राह्मण का बेटा है; उसे दो एक मीठी बातें सुना कर धोखे में मत फँसाओ। उसे ब्राह्मण-वंश का गौरव रखना होगा, प्रवृत्ति मार्ग की रक्षा करनी होगी, उसे बहुत विचार कर चलना होगा, कितनी ही बातें उसे त्याग करनी पड़ेंगी। माँ, यह सुन कर तुम क्रोध मत करो, मैं तुम्हारे पैरों की धूल सिर चढ़ाता हूँ।

आनन्दी—मैं भला क्रोध करूँगी! यह तुम क्या कहते हो? तुम जो करते हो वह समझ बूझ कर नहीं करते, यह मैं

कहे देती हूँ। मेरे मन में यही एक कष्ट रहा कि तुम को मैंने आदमी बनाया सही किन्तु—। जो हो, तुम जिसे धर्म मान कर घूमते हो, उसे मैं धर्म मानूँ तो मेरा एक भी काम न चलेगा—तुम भले ही हम से अलग हो रहो, हमारे हाथ का छूआ न खाओ, और जिस धर्म को अच्छा समझो उसीको मान कर चलो। मैं तुम को जो दोनों साँझ नज़र भर देखूँगी यही मेरे लिए बहुत है। विनय, तुम ऐसा उदास मुँह मत करो; बाबू, तुम्हारा हृदय बड़ा ही कोमल है, तुम सोचते हो, मैंने दुःख पाया: नहीं बेटा, कुछ नहीं, एक दिन तुम को नेवता देकर किसी अच्छे ब्राह्मण के हाथ से भोजन की सामग्री तैयार करा कर तुमको खिलाऊँगी। उसके लिए चिन्ता क्या! किन्तु मैं लखमिनिया के हाथ का जल पीना न छोड़ूँगी। यह मैंने पहले ही सब से कह रक्खा है।

इतना कह कर गौरमोहन की माँ नीचे चली गईं। विनय चुपचाप कुछ देर खड़ा रहा, फिर धीरे धीरे बोला—गौर बाबू, यह एक तरह की बढ़ी चढ़ी बात होती है।

गौर—किसकी बढ़ी चढ़ी?

विनय—तुम्हारी।

गौरमोहन—ज़रा भी बढ़ी चढ़ी नहीं है। मैं सीमा उल्लंघन करके चलना नहीं चाहता। धर्म-पथ से सुई के अग्र भाग के बराबर हट कर चलने का आरम्भ करने ही से लोग एक दिन पूर्ण रूप से पथच्युत हो जाते हैं।

विनय—किन्तु माँजी जो—

गौर—माँ किसको कहते हैं सो मैं जानता हूँ। क्या मुझे इसका स्मरण कराना होगा। मेरी माँ की भाँति और कितने लोगों की माँ हैं! किन्तु आचार को यदि न मानना शुरू करें तो एक दिन यह भी संभव है कि माँ को भी न मानें। देखो विनय, तुम से एक बात कहता हूँ। याद रक्खो, हृदय एक अति उत्तम वस्तु है, परन्तु सब की अपेक्षा उत्तम नहीं माना जा सकता।

विनय कुछ देर बाद ज़रा इधर उधर देख कर बोला—सुनो गौर बाबू, आज माँ के मुँह से वे सब बातें सुन कर मेरे मन में एक विचित्र आन्दोलन हो रहा है। जान पड़ता है, माँ के मन में कोई ऐसी बात है जो वे हम लोगों को भली भाँति समझा नहीं सकतीं, इसीसे वे कष्ट पा रही हैं।

गौरमोहन ने अधीर होकर कहा—ओफ़्, विनय, कल्पना के साथ इस प्रकार खेल मत करो। इससे केवल समय नष्ट होता है; कोई फल प्राप्त नहीं होता।

विनय—तुम संसार की किसी वस्तु की ओर अच्छी तरह विचार करके नहीं देखते, इसीसे जो तुम्हारी दृष्टि के सामने नहीं पड़ता, उसे तुम कल्पना कह कर उड़ा देना चाहते हो; किन्तु मैं तुम से कहता हूँ, मैंने कई दफ़े देखा है कि माँ के मन में किसी प्रकार की भावना है; परन्तु उसे वे स्पष्ट रूप से कह नहीं सकतीं। इसीसे सब प्रकार का सुभीता रहते भी

वे दुखी सी देख पड़ती हैं। गौर बाबू, तुम उनकी बातें ज़रा ध्यान देकर सुना करो।'

गौर—ध्यान देकर जितना सुनना चाहिए, सुन चुका हूँ। उससे अधिक सुनने की चेष्टा करने से भ्रान्ति भरी बात सुनने की संभावना है, इसलिए अब अधिक सुनने की इच्छा नहीं होती।

[४]

मत के सम्बन्ध से कोई बात सुन तो ली जाती है, किन्तु मनुष्य के ऊपर अपने मत का प्रयोग करते समय हृदय का वह एकान्त निश्चित भाव नहीं रहता। कम से कम विनय को तो न रहता था। उसकी चित्तवृत्ति अत्यन्त प्रबल थी। इसीसे विवाद के समय वह एक मत को खूब उच्चस्वर से मानता था, किन्तु व्यवहार के समय मनुष्य को उसकी अपेक्षा अधिक न माने, यह उससे न हो सकता था। यहाँ तक कि गौरमोहन के प्रचारित मतों को विनय ने जो ग्रहण किया है उनमें कितने को हिन्दू मत के लिहाज़ से मान लिया है और कितने को गौर बाबू के ऊपर जो उसका एकान्त प्रेम है उसके दबाव से स्वीकार किया है—यह कहना कठिन ।

गौर बाबू के घर से निकल कर अपने घर लौटते समय वर्षा ऋतु के सन्ध्या काल में जब कीचड़ बचा कर विनय धीरे

धीरे सड़क से जा रहा था, तब मत और मनुष्य, दोनों उसके मन के भीतर द्वन्द्वयुद्ध मचा रहे थे। मत प्रबल है या मनुष्य, इसका वह कुछ निर्णय न कर सका।

आजकल के अनेक प्रकाश्य और गुप्त आघातों से यदि समाज अपने को बचा कर चलना चाहे तो खाना, छूना आदि सब बातों में उसे विशेष रूप से सतर्क होना पड़ेगा—यह बात गौरमोहन के मुँह से सुन कर विनय ने सहज ही स्वीकार कर ली है। इस विषय को लेकर उसने विरुद्ध लोगों के साथ कितना ही वादानुवाद किया। उसने यह कह कर लोगों को समझाया कि शत्रु ने जब क़िले को चारों ओर से आ घेरा है, तब क़िले के प्रत्येक फाटक, गली, खिड़की, और सुरङ्ग को बन्द करके यदि प्राणपण से उसकी रक्षा कर सकें तो यह उदारता ही में गिना जायगा। इसे भीरुता कदापि नहीं कह सकते।

किन्तु आज जो आनन्दी के घर में गोरा ने उसको खाने न दिया, इसकी चोट भीतर ही भीतर उसके जी को दुखाने लगी।

विनय के पिता न थे, माँ भी उसकी कम उम्र में ही चल बसी थी। चचा देश में थे। विनय अकेला बचपन से ही पढ़ने-लिखने के लिए कलकत्ते में रह कर बड़ा हुआ है। गौरमोहन के साथ मित्रता होने के कारण विनय ने जब से आनन्दी को जाना है तब से वह उसी को अपनी माँ समझता

है। कई दिन उनके घर जाकर उसने लड़ झगड़ कर खाया है। उसे यह नहीं जान पड़ता था कि यह उसका अपना घर नहीं है। भोजन का कुछ विशेष अंश देकर आनन्दी गौरमोहन का पक्ष लेती है, उन्हें यह दोष लगाकर उसने कई दिन आनन्दी पर कृत्रिम क्रोध प्रकट किया है। बनावटी ईर्ष्या दिखा कर उसने उन्हें अपने ऊपर विशेष अनुरक्त किया है। दो चार दिन विनय को पास आते न देख आनन्दी को उसके लिए कितना उद्वेग होता था, वे कितनी उत्कण्ठित हो उठती थीं, विनय को पास बिठा कर खिलाने की आशा में वे उत्सुकचित्त से सभाभङ्ग होने की अपेक्षा करके कैसे बैठी रहती थीं, ये सब बातें विनय भली भाँति जानता था। वही विनय आज सामाजिक बन्धन में पड़ कर आनन्दी के घर में न खायगा! यह विडम्बना न आनन्दी सह सकती हैं और न विनय ही को सह्य होगी।

अब से माँ (आनन्दी) कुलीन ब्राह्मण के हाथ की रसोई मुझे खिलावेंगी, अपने हाथ से कभी न परोसेंगी—यह बात माँ ने हँसी में कह दी है; किन्तु यह बात मर्मान्तिक है। इस बात को मन ही मन सोचता हुआ विनय अपने घर आ पहुँचा।

घर में कोई आदमी नहीं। सारा घर सूना पड़ा है। सर्वत्र अँधेरा छाया है। चारों ओर काग़ज़ पत्र इधर उधर बिखरे पड़े हैं। विनय ने दियासलाई से चिराग़ जलाया।

लिखने की टेबुल जिस कोरे कपड़े से ढँकी है उसपर कई जगह तेल और स्याही के दाग़ हैं।

इस घर में आकर उसने एक लम्बी साँस ली। मनुष्यों के साथ इस प्रकार स्नेह के अभाव ने मानो आज उसके हृदय पर पूरा प्रभाव डाला। देश का उद्धार और समाज की रक्षा, इन दोनों कर्तव्यों को वह एक साथ किसी तरह सम्पन्न कर सकने की बात पर विश्वास न कर सका। इसकी अपेक्षा उसने एक अनोखे पक्षी के विषय के उस गान पर अधिक विश्वास किया जो एक दिन सावन के सुन्दर प्रकाशमान प्रभातकाल में पिंजरे के पास उसके आने और फिर वहाँ से उड़ जाने के भाव का था। किन्तु उस अनोखे पक्षी की बात आज विनय किसी प्रकार मन में स्थिर होने नहीं देता। गौरमोहन ने जो आज उसे आनन्दी के घर जाने से रोक दिया है, इससे उस घर की शोभा मानो उसके हृदय-पट पर अङ्कित होने लगी।

घर का मध्य भाग अच्छी तरह लीपा पोता ख़ूब साफ़ सुथरा है। एक तरफ़ तख़्तपोश के ऊपर हंस के परों के समान स्वच्छ और कोमल बिछौना बिछा है। बिछौने के पास ही एक छोटे स्टूल के ऊपर रेंड़ी के तेल का चिराग़ जल रहा है। माँ इस समय अनेक रङ्ग के सूत लेकर चिराग़ के पास बैठ कर किसी कपड़े पर बेल-बूटे बना रही है। लखमिनिया नीचे बैठी हुई टेढ़े मेढ़े उच्चारण से हिन्दी की कोई

किताब पढ़ रही है। माँ उसपर विशेष ध्यान न देकर चुपचाप अपना काम कर रही है। माँ के मन में जब किसी तरह का दुःख होता है तब वे सिलाई का सामान लेकर बैठती हैं। उनके काम में लगे हुए उस चिन्तित चेहरे पर विनय ने अपने अन्तःकरण की दृष्टि स्थापित की। उसने मन ही मन कहा—इस मुख की निर्मल स्नेह-छटा मेरे मन के समस्त विक्षेपों से मुझे बचावे। यही मुख मेरी मातृभूमि का प्रतिमास्वरूप हो; मुझे कर्तव्य की प्रेरणा करे और कर्तव्य में दृढ़ रक्खे। विनय ने मन ही मन उन्हें 'माँ' कह कर एक बार पुकारा और कहा, तुम्हारे हाथ का अमृतवत् अन्न मेरे लिए ग्राह्य नहीं है, यह बात मैं किसी शास्त्र के प्रमाण से भी स्वीकार न करूँगा।

सूने घर में बड़ी घड़ी खट् खट् करके चलने लगी। घर के भीतर अकेले रहना विनय को असह्य हो गया। चिराग़ के पास दीवार पर एक छिपकली कीड़े को पकड़ रही थी—उसकी ओर कुछ देर देखते देखते विनय उठ खड़ा हुआ और एक छाता लेकर घर से निकल पड़ा।

घर से बाहर होकर कहाँ जायगा? इसका शायद कुछ निश्चय न करके ही वह चल पड़ा था। मालूम होता है, उसके मन का अभिप्राय फिर आनन्दी के पास लौट जाने का था; किन्तु फिर उसके मन में यह चेत हो आया कि आज रविवार है—चलो, ब्राह्मसभा में केशव बाबू की वक्तृता सुन आवें।

इस बात का मन में ध्यान आते ही द्विधाभाव को छोड़ कर विनय ख़ूब ज़ोर से चलने लगा। वक्तृता आरम्भ होने में अब विलम्ब नहीं है—यह वह जानता था, तो भी उसने वहाँ जाने का संकल्प न छोड़ा।

वहाँ पहुँच कर उसने देखा, उपासक-गण धीरे धीरे बाहर आरहे हैं। वह छाता लगाये सड़क के एक किनारे खड़ा हो रहा—उसी समय मन्दिर से परेश बाबू शान्त भाव धारण किये प्रसन्न मुख से बाहर निकले। उनके साथ उनके चार पाँच आत्मीय व्यक्ति थे—विनय ने उन सबों के बीच केवल एक व्यक्ति का जवानी से भरा चेहरा कुछ मिनिटों के लिए बिजली की रोशनी में देखा। इसके बाद तुरन्त ही गाड़ी चल पड़ी और यह दृश्य बात की बात में अन्धकार के महासमुद्र में बुलबुले की भाँति विलीन हो गया।

विनय अपने घर न जाकर घूमते फिरते जब गौरमोहन के पास जा पहुँचा तब ख़ूब अँधेरा हो गया था। गौरमोहन बत्ती जला कर कुछ लिखने बैठा था।

गौरमोहन ने कागज़ की ओर मुँह किये ही कहा—विनय आओ, हवा किधर से चल रही है?

विनय ने इस बात पर कुछ ध्यान न देकर कहा—गौर बाबू, तुम से एक बात पूछता हूँ। क्या भारतवर्ष तुम्हारे आगे ख़ूब सच्चा और सीधा है? तुम तो दिन रात उसपर ध्यान रखते हो, कहो, तुम उसे कैसा समझते हो?

गौरमोहन ने लिखना छोड़ कर कुछ देर अपनी तीव्र दृष्टि से विनय के मुँह की ओर देखा, इसके बाद क़लम को हाथ से रख कर कहा—जहाज़ का कप्तान जब समुद्र के पार जाना चाहता है तब जैसे खाते-पीते सोते-जागते सदा उसका ध्यान समुद्र के पारवर्ती बन्दर की ओर लगा रहता है, वैसे ही मेरे मन में भी भारतवर्ष का ध्यान लगा रहता है।

विनय—तुम्हारा वह भारतवर्ष कहाँ है?

गौरमोहन ने अपनी छाती पर हाथ रख कर कहा—मेरे यहाँ का दिग्दर्शक यन्त्र जहाँ दिन रात काँटा घुमा रहा है वहीं। तुम्हारे मार्शमैन साहब की हिस्ट्री आफ़ इन्डिया के भीतर नहीं।

विनय—तुम्हारा काँटा जिस तरफ़ है उधर क्या कुछ है?

गौर बाबू ने उत्तेजित होकर कहा—है नहीं तो क्या? मैं रास्ता भूल सकता हूँ, डूब कर मर सकता हूँ; किन्तु मेरा यह लक्ष्मी का आवास-स्थान बन्दर अब भी नष्ट नहीं हुआ है। यह मेरा भरपूर भारतवर्ष धन से, ज्ञान से और धर्म से परिपूर्ण था, वह भारत अब कहीं नहीं है। है केवल चारों ओर यह मिथ्या आडम्बर! यह तुम्हारा कलकत्ता शहर, यह ऑफ़िस, यह अदालत, ये छोटे बड़े ईंट लकड़ी के बने कितने एक क्षण-भंगुर घर! बस।

यह कह कर गौरमोहन विनय के मुँह की ओर कुछ देर देखता रहा। विनय कुछ जवाब न देकर मन ही मन सोचने

लगा। गौरमोहन ने कहा—देखो, हम लोग जहाँ पढ़ते हैं, लिखते हैं, नौकरी की आशा में घूमते हैं और भूतों की तरह न जाने कितने परिश्रम-साध्य काम करते हैं। उस जादूगरी से भरे झूठे भारतवर्ष को ही सच मान कर हम ३० करोड़ आदमी झूठे आदर मान को आदर मान, और झूठे कर्म को कर्म, कह कर दिन-रात भूले रहते हैं। इस झूठी मृगतृष्णा के भीतर से क्या हम लोग किसी तरह निकल कर चैतन्य लाभ करेंगे? हम लोग इसी शोच से दिन दिन मरे जाते हैं। जो एक सच्चा भारतवर्ष है, जो अन्न-धन से परिपूर्ण है, वहाँ स्थिति न होने से हम लोग हृदय में वास्तविक सुख नहीं पा सकेंगे। इसीसे मैं कहता हूँ कि सब कुछ भूल कर—किताब की विद्या, ख़िताब की माया, उञ्छवृत्ति का प्रलोभन, इन सबों को दूर फेंक कर—उसी बन्दर की ओर जहाज़ ले जाना होगा। तूफ़ान में पड़ कर जहाज़ डूबेगा तो हम भी उसके साथ डूब मरेंगे या फिर किनारे लगेंगे। सच पूछो तो मैं भारतवर्ष की सत्यमूर्ति को किसी समय नहीं भूल सकता।

विनय—ये सब बातें तुम उत्तेजना में आकर तो नहीं बोलते हो? क्या यह तुम सच कहते हो?

गौर बाबू ने मेघ की तरह गरज कर कहा—हाँ, सच कहता हूँ।

विनय—अच्छा, जो लोग तुम्हारी भाँति भारत को नहीं देखते?

गौरमोहन ने ज़ोर से मुट्ठी बाँध कर कहा—उन्हें दिखा देना होगा। यही तो हम लोगों का काम है। सत्य का चित्र प्रत्यक्ष न देखने पर लोग किसके निकट आत्म-समर्पण करेंगे? भारतवर्ष का पूरा चित्र सब के सामने रख दो, उसे देखते ही लोग पागल हो उठेंगे। तब क्या दर्वाज़े दर्वाज़े चन्दा उगाहने के लिए घूमना पड़ेगा? प्राण देने के लिए लोग खड़े हो जायँगे।

विनय—या तो मुझे संसार के दस लोगों की तरह इस अपार समुद्र में उतराते हुए जाने दो, या मुझे वह असली मूर्ति दिखाओ।

गौर—साधन करो, यदि मन में विश्वास हो तो कठोर साधना से ही सुख पाओगे। हमारे शौक़ीन देशी बाबुओं को सत्य का तो विश्वास कुछ है ही नहीं, इसीसे वे अपने और पराये के पास बलपूर्वक दावा नहीं कर सकते। स्वयं कुबेर यदि उनको वर देने आवें तो मालूम होता है वे लाट साहब के अर्दली की चमकती हुई चपरास की अपेक्षा और कुछ अधिक माँगने का साहस न करेंगे। उनको विश्वास नहीं है, इसीसे अधिक पाने की आशा भी नहीं है।

विनय—सुनो गौर बाबू, सब का स्वभाव एक सा नहीं होता। तुमने अपना विश्वास आप ही अपने मन से पाया है। तुम आप ही अपना अवलम्ब हो, तुम आप ही अपने पैरों चलना चाहते हो, इसीसे दूसरे की अवस्था

तुम ठीक ठीक नहीं समझ सकते। मैं कहता हूँ, तुम मुझको चाहे जिस काम में लगा दो,—दिन-रात मुझसे परिश्रम का काम लो—नहीं तो तुम्हारे पास जितनी देर रहता हूँ उतनी देर ऐसा जान पड़ता है जैसे मैंने कुछ पा लिया और वास्तव में पाता हूँ कुछ नहीं। मन की साध मन ही में रह जाती है। हाथ कुछ नहीं आता।

गौर—क्या तुम सचमुच काम की बात कर रहे हो? अभी हम लोगों का यही एकमात्र काम है कि जो कुछ अपने देश की वस्तु हो उसपर संकोचहीन होकर पूर्णरूप से श्रद्धा प्रकाश करें और देश के अविश्वासी लोगों के मन में उस श्रद्धा का सञ्चार करें। देश के सम्बन्ध में हम लोगों ने सङ्कोच करते ही करते अपने मन को दासत्व रूपी हलाहल से दुर्वल कर डाला है। हम लोगों में प्रत्येक व्यक्ति यदि आप ही दृष्टान्त बन कर उसका प्रतीकार करे तो हम लोगों को काम करने का उचित स्थान मिल जाय। अभी जो हम कोई काम करना चाहते हैं वह काम नहीं, काम की नक़ल है। उस झूठे काम में क्या हम लोग कभी पूरे तौर से मन लगावेंगे या सत्य भाव से उसे अपना कर्तव्य समझेंगे? उस दिखौवा काम से हम लोग आप ही अपने को कमज़ोर बनावेंगे, उससे कुछ विशेष फल होने का नहीं।

इसी समय हाथ में हुक्का लिये आलस्य-भरी चाल से झूमते-झामते महिम बाबू उस कमरे में आ पहुँचे। ऑफ़िस से

आकर जलपान करने के बाद एक बीड़ा पान मुख में डाल और पाँच छ: बीड़े पनवट्टी में ले सड़क के किनारे बैठ कर महिम के तम्बाकू पीने का यही समय था। जब कुछ ही देर में एक एक कर महल्ले के सभी मित्र आ जुटेंगे तब सदर दर्वाज़े के पासवाले कमरे में चौसर खेलने की धूम मचेगी।

महिम को वहाँ आते देख गौरमोहन कुरसी से उठ खड़ा हुआ। महिम ने हुक्क़ा पीते पीते कहा—भारत का उद्धार करने के लिए तो व्यग्र हो, किन्तु पहले भाई का तो उद्धार करो।

गौरमोहन महिम के मुँह की ओर देखने लगा। महिम ने कहा—हमारे ऑफ़िस में जो एक नया बड़ा साहब आया है उसका चेहरा बिलकुल बन्दर के ऐसा है। वह बड़ा बद-माश है। वह बाबू को बेबुन कहता है। किसी की माँ मर जाने पर भी वह छुट्टी देना नहीं चाहता। कहता है, झूठी बात है। नौकरों को महीने महीने तलब मिलना कठिन हो गया है। वेतन का आधे से अधिक अंश जुर्माने में ही कट जाता है। समाचार-पत्र में उसके सम्बन्ध में एक लेख छपा था, वह पाजी समझता है कि यह मेरा ही काम है। उसका समझना बिलकुल झूठ भी नहीं है। अब फिर अपने नाम से एक कड़ा प्रतिवाद न लिखने से वह मुझे रहने न देगा। तुम दोनों युनीवर्सिटी के समुद्र से दो रत्न निकल पड़े हो—यह चिट्ठी ज़रा अच्छी तरह लिख देनी होगी।

उसमें इतना छोड़ देना पड़ेगा—even-handed justice, never-failing generosity, kind courteousness इत्यादि।

गौरमोहन चुप हो रहा। विनय ने हँस कर कहा—इतनी झूठी बात क्या एकदम चलेगी ?

महिम—"शठे शाठ्यं विनिर्दिशेत्।" मैं बहुत दिन उन लोगों के साथ रह चुका हूँ, मुझसे उनकी कोई बात छिपी नहीं है। वे जो झूठ बात जमा सकते हैं वह तारीफ़ के लायक़ है। दरकार होने पर उन्हें कुछ रोक नहीं। अगर एक आदमी झूठ बोलता है तो गीदड़ की भाँति सबके सब उसीके स्वर में स्वर मिलाकर चिल्लाने लगते हैं। हम लोगों की भाँति एक आदमी दूसरे को दबाने पर वाहवाही लेना नहीं चाहता। यह सच समझो, उनको ठगने में कोई पाप नहीं, अगर पकड़ा न जाऊँ।

इतना कह कर महिम बाबू ख़ूब ज़ोर से ठहाका मार कर हँसने लगे। विनय भी अपनी हँसी को न रोक सका।

महिम ने कहा—तुम लोग उनके मुँह पर सच बात कह कर उन्हें लज्जित करना चाहते हो! यदि भगवान् तुम लोगों को ऐसी बुद्धि न देंगे तो देश की ऐसी दशा कैसे होगी ? यह तो तुम्हें समझना चाहिए कि जिसके बदन में ताक़त है, साहस करके उसकी चोरी निकालने पर भी वह सङ्कोच से सिर नीचा नहीं कर सकता। वह जिसके घर चोरी करता है उसीको साधु बनकर मारने दौड़ता है, कहो यह बात सच है न ?

विनय—सच क्यों नहीं है।

महिम—अगर उसको ख़ुशामद करके कहो, साधुजी, परमहंस बाबा, दया करके झोली को एक बार झाड़ो, उसकी धूल मिल जाने ही से हमारा कल्याण होगा तो कदाचित् तुम्हारे घर की सम्पत्ति का कुछ अंश लौट आ सकता है और शान्ति-भङ्ग की आशङ्का भी मिट सकती है। भली भाँति सोच कर देखो, इसीको देशभक्ति या स्वदेशानुराग कहते हैं। किन्तु मेरा भाई इससे नाराज़ होता है! वह जब से हिन्दू-धर्म का उपासक हुआ है तब से मुझे दादाजी कह कर मेरा ख़ूब आदर करता है। उसके सामने आज मेरी ये बातें ठीक बड़े भाई की तरह नहीं हुई। किन्तु क्या करूँ। झूठी बात के सम्बन्ध में भी तो सच बात बोलनी ही होगी। विनय बाबू, वह लेख शीघ्र होना चाहिए। ठहरो, मेरा लिखा नोट है, वह ले आता हूँ। यह कह कर महिम तम्बाकू पीते पीते बाहर गये।

गौरमोहन ने विनय से कहा—तुम दादाजी के कमरे में जाकर उन्हें बिलमाओ। मैं अपने लेख को ख़तम कर डालता हूँ।

[५]

सुन रहे हैं न? मैं आपके पूजा-घर में नहीं घुसती, आप डरिए मत, नित्यकृत्य समाप्त होने पर आप एक बार उस कमरे

में आइएगा । आपसे कुछ कहना है । जब दो नये संन्यासी आ पहुँचे हैं तब कुछ देर तक आपका दर्शन न होगा, यह जान कर मैं आपको बुलाने आई हूँ । भूलिएगा नहीं, अवश्य आइएगा ।

यह कह कर आनन्दी घर का काम धन्धा देखने गईं ।

कृष्णदयाल बाबू साँवले हैं, बदन दोहरा है । क़द बहुत लम्बा नहीं है । आँखें बहुत बड़ी बड़ी हैं । दाढ़ी-मूँछ के बाल कुछ कुछ पक गये हैं । वे बराबर लाल रंग की रेशमी धोती पहिने रहते हैं । जब कहीं जाते हैं तब हाथ में पीतल का कमण्डलु लेते और पैरों में खड़ाऊँ पहिन लेते हैं । सिर के आगे के बाल उड़ जाने से खल्वाट हो गये हैं । जो बाल बच रहे हैं वे बड़े लम्बे हैं और उन्हें वे जूड़े की तरह लपेट कर सिर पर बाँधे रहते हैं ।

किसी समय जब ये पश्चिम प्रदेश में थे तब इन्होंने गोरों की पल्टनों के साथ मिल कर मद्य-मांस खाकर एकाकार कर दिया था । उस समय ये देश के पुजारी, पुरोहित, वैष्णव और संन्यासी आदि श्रेणी के लोगों का अपमान करना पुरुषार्थ समझते थे । किन्तु अब ऐसा कोई जीव ही नहीं जिसका सम्मान न करें । नये संन्यासी को देखते ही उसके पास नई साधना की बात सीखने को बैठ जाते हैं । मुक्ति का गुप्त मार्ग और योग का गूढ़ तत्त्व जानने के लिए इनके लोभ का अन्त नहीं । तान्त्रिक साधना करने के लिए कृष्णदयाल कुछ दिन तक तन्त्रशास्त्र का

उपदेश ले रहे थे, इसी समय एक बौद्ध संन्यासी का पता पाकर उनका मन चञ्चल हो उठा है ।

इनकी पहली स्त्री एक पुत्र प्रसव कर जब मर गई तब इनकी आयु तेईस वर्ष की थी । बच्चे की माँ मर जाने के कारण रुष्ट हो बच्चे को अपनी ससुराल में रख कृष्णदयाल, वैराग्य की झोंक में, एकदम पच्छिम चले गये और छः महीने के भीतर ही काशी के निवासी सार्वभौम महाशय की पितृ-हीना पौत्री आनन्दी से ब्याह कर लिया ।

पश्चिम प्रदेश में ही कृष्णदयाल ने नौकरी का प्रबन्ध किया और मालिक के निकट अनेक उपायों से विश्वासपात्र बने । इतने में सार्वभौम की मृत्यु हुई; दूसरा कोई अभिभावक न रहने के कारण इन्होंने स्त्री को अपने ही पास लाकर रक्खा ।

इसी बीच जब सिपाहियों की बग़ावत हुई तब इन्होंने बड़े कौशल से दो एक उच्चपदस्थ अँगरेज़ों की प्राण-रक्षा करके कीर्ति और जागीर पाई । सिपाही-विद्रोह के कुछ ही दिन बाद इन्होंने काम छोड़ दिया और नवजात गौरमोहन को लेकर कुछ दिन काशी में रहे । गौरमोहन जब पाँच वर्ष का हुआ तब कृष्णदयाल ने कलकत्ते आकर अपने बड़े बेटे महिमचन्द्र को उसके मामा के घर से अपने पास लाकर पढ़ाया-लिखाया । महिम इस समय अपने पिता के पूर्व हितैषियों की कृपा से सरकारी ख़ज़ाने में ख़ूब तेज़ी के साथ काम कर रहा है ।

गौरमोहन लड़कपन से ही अपने टोले महल्ले और स्कूल के बालकों पर हुकूमत करता आया है। स्कूल के मास्टरों और पण्डितों के साथ बात बात में विवाद कर उन्हें हैरान करना ही उसका प्रधान कर्म और आमोद का विषय था। कुछ उम्र होते ही वह छात्रों के क्लब में "स्वाधीनता" और "बीस करोड़ मनुष्यों का निवास" आदि उत्तेजक वाक्यों की भली भाँति आवृत्ति कर अँगरेज़ी भाषा में वक्तृता करके छोटे विद्रोहियों का दलपति बन बैठा। आखिर जब उसने छात्रसभा की शिशुता भङ्ग कर तरुण सभा में कूकना आरम्भ किया तब कृष्णदयाल बाबू को यह अत्यन्त कुतूहल का विषय जान पड़ने लगा।

बाहर के लोगों के पास गौरमोहन की ख्याति धीरे धीरे बढ़ चली। किन्तु अपने घर में किसी के पास वह विशेष पूजित न हुआ। महिम उस समय नौकरी करता था। उसने गौरमोहन को कभी देशभक्त, कभी द्वितीय विक्रम, कह कर अनेक प्रकार से दबाने की चेष्टा की थी। तब बड़े भाई के साथ गौरमोहन को कभी कभी हाथापाई करने की नौबत आ जाती थी। गौर के अँगरेज़-विद्वेष पर आनन्दी मन ही मन कुढ़ती थी और नाना प्रकार से उसे शान्त करने की चेष्टा करती थी, किन्तु कोई फल न होता था। गौरमोहन घाट-बाट, गली-कूचों में सुयोग पा अँगरेज़ों के साथ मार पीट कर सकने पर अपने जीवन को धन्य मानता था।

इधर केशव बाबू की वक्तृता से मुग्ध हो कर गौरमोहन ब्राह्म समाज के प्रति विशेष रूप से झुक पड़ा और इसी समय से कृष्णदयाल बाबू फिर घोरतर आचारनिष्ठ हो उठे। यहाँ तक कि गौरमोहन को घर में प्रवेश करते देख वे व्यग्र हो जाते थे। उन्होंने दो तीन आवश्यक कमरों को अपने अधीन कर रक्खा था। उनमें और लोगों के आने का अधिकार न रहा। उस भवन के फाटक के पास एक काठ की तख़्ती पर मोटे अक्षरों में "साधनाश्रम" लिख कर लटका दिया गया।

पिता की इस करतूत से गौरमोहन के मन में विद्रोह भाव का उदय हुआ। उसने कहा—मैं इस अज्ञानता भरे आडम्बर को सह्य नहीं कर सकता; यह मेरी आँखों में शूल की तरह गड़ता है। गौरमोहन ने इस भण्डता से नाराज़ हो पिता के साथ कोई सम्पर्क न रख एक दम घर छोड़कर कहीं चल देने का विचार किया था, किन्तु आनन्दी ने किसी तरह उसे रोक रक्खा।

बाप के पास जिन ब्राह्मण पण्डितों का समागम होने लगा, गौरमोहन सुयोग पाते ही उनके साथ शास्त्रार्थ ठान देता था। शास्त्रार्थ क्या वह एक प्रकार की घुस्सेबाज़ी या मुष्टिकाघात था। उनमें कितने ही ईषद्-विद्य थे अर्थात् बहुत कम पढ़े लिखे थे और उन्हें धन का असीम लोभ था। वे लोग गौरमोहन के साथ शास्त्रार्थ में नहीं जीत सकते थे, इसीसे वे

उससे बहुत डरते थे । इस पण्डित-मण्डली में केवल हरचन्द्र विद्यावागीश के प्रति गौरमोहन की श्रद्धा उत्पन्न हुई ।

कृष्णदयाल ने वेदान्त विषय की चर्चा करने के लिए विद्यावागीश को नियुक्त किया था । गौरमोहन ने पहले इन्हीं के साथ उद्दण्ड भाव से वाग्युद्ध करके देखा कि लड़ाई चल नहीं सकती । वे केवल सीधे पण्डित ही न थे, वरन् उनका मन अत्यन्त उदार भाव से भरा था । केवल संस्कृत पढ़ कर ऐसी तीक्ष्ण और प्रशस्त बुद्धि हो सकती है, यह बात गौरमोहन की कभी कल्पना में भी न आई थी । विद्यावागीश में ऐसी क्षमा और शान्ति से भरा अटल धैर्य तथा गम्भीरता थी जिसे देख उनके पास संयत न होना गौर के लिए सर्वथा असंभव हो गया । उसने हरचन्द्र से वेदान्त शास्त्र पढ़ना आरम्भ किया । गौर कोई काम अधूरा नहीं छोड़ता था, इसलिए वह वेदान्त की आलोचना में जी जान से लग पड़ा ।

घटनाक्रम से इस समय एक अँगरेज़ पादरी ने किसी संवाद-पत्र में हिन्दू शास्त्र और हिन्दू समाज पर आक्रमण करके देशवासियों को शास्त्रार्थ करने के लिए ललकारा । गौरमोहन तो यह सुनकर क्रोध से एकदम आग बबूला हो गया । यद्यपि वह आप ही अवकाश पाकर शास्त्र और लोकाचार के कतिपय अंशों की निन्दा करके विरुद्धमतावलम्बी लोगों को—जहाँ तक हो सकता था—चिढ़ाता था, तथापि हिन्दू समाज के प्रति विदेशी मनुष्य की अवज्ञा ने मानो उसे बर्छी की मार मारी ।

गौरमोहन ने संवाद-पत्र में पादरी के विरुद्ध लेख देना आरम्भ किया। पादरी ने हिन्दूसमाज को जो जो दोष लगाये थे, उनमें एक भी, एक क्या कुछ भी, गौरमोहन ने स्वीकार न किया। दोनों ओर से अनेक उत्तर-प्रत्युत्तर वाद-प्रतिवाद होने पर सम्पादक ने कहा—हम इस विषय में अब अधिक लेख नहीं छापेंगे।

किन्तु गौरमोहन को सनक चढ़ गई थी। वह चुप क्यों होने लगा। वह "हिन्दू धर्म" नाम की एक पुस्तक अँगरेज़ी में लिखने लगा। उसमें वह अपने साध्यानुसार समस्त युक्ति और शास्त्र के अनेकानेक प्रमाण देकर हिन्दू धर्म और हिन्दू समाज की अनिन्द्य श्रेष्ठता का समर्थन करने बैठा।

इस प्रकार पादरी के साथ झगड़ा करने में गौरमोहन ने धीरे धीरे आप ही अपनी दलील के आगे हार मानी। वह जो पहले हिन्दू धर्म से कोसों भागता था, वही अब उसका आदर करने लगा। उसने कहा—हम अपने देश को विदेशी अदालत के सामने मुजरिम की तरह खड़ा करके विदेशी क़ानून के मत से उसका विचार करने न देंगे। विलायती आदर्श के साथ साथ चलने से न हमारी लज्जा रहेगी और न हम गौरवान्वित होंगे। जिस देश में हमने जन्म लिया है उस देश के आचार, विश्वास, शास्त्र और समाज के हेतु हम किसी के आगे कुछ भी संकुचित होकर न रहेंगे। हमारे देश का जो

कुछ आचार विचार है उसे सगर्व सिर पर धारण कर देश को और अपने को अपमान से बचावेंगे।

यह निश्चय कर गौरमोहन गङ्गास्नान और संध्यावन्दन करने लगा तथा खाने-पीने में छूआछूत का विचार भी रखने लगा। उसने चोटी भी रक्खी। अब से वह नित्य सबेरे माँ-बाप के पैर की धूल सिर पर चढ़ाने लगा। जिस महिम को वह बात बात में अँगरेज़ी भाषा में डपट कर बोलता था उसे देखते ही अब वह उठकर खड़ा होता और प्रणाम करता है। महिम हठात् उसकी यह भक्ति देख जो उसके मुँह में आता वह कहता; परन्तु गौरमोहन उसका कोई जवाब न देता।

गौरमोहन ने अपने उपदेश और आचरण से देश के एक दल को जाग्रत कर दिया। वे लोग मानो एक भारी खैंचा-खैंची से बच गये। वे दीर्घ निःश्वास त्याग कर बोल उठे—हम लोग अच्छे हैं या बुरे, सभ्य हैं या असभ्य, इन बातों के विषय में हम किसी के पास कुछ कैफ़ियत देना नहीं चाहते। हमारा सिर्फ़ यह अनुभव दृढ़ होना चाहिए कि हम हमी हैं। हमें अपने असली स्वरूप की पहचान होनी चाहिए।

किन्तु यह न जान पड़ा कि गौरमोहन के इस नये परिवर्तन से कृष्णदयाल प्रसन्न हुए हैं। एक दिन उन्हों ने गौरमोहन को बुला कर कहा—देखो बाबू, हिन्दूशास्त्र बड़ा ही गम्भीर विषय है। ऋषिगण जो धर्म-स्थापन कर गये हैं उसका गूढ़ तत्त्व जानना साधारण मनुष्यों का काम नहीं है।

मेरी समझ में बिना असली अभिप्राय जाने हिन्दू-धर्म पर इस प्रकार ढुल जाना अच्छा नहीं। तुम अभी लड़के हो, अँगरेज़ी पढ़ लिख कर ही इतने बड़े हुए हो, तुम जो ब्राह्म समाज की ओर झुके थे सो तुम ने अपने अधिकार के अनुसार ही काम किया था। इसलिए मैं तुम्हारे उस आचरण से कभी नाराज़ न हुआ, बल्कि प्रसन्न ही था। किन्तु अब तुम ने जिस मार्ग का अवलम्बन किया है उसे मैं पसन्द नहीं करता। यह तुम्हारे योग्य मार्ग नहीं।

गौर—आप यह क्या कहते हैं? जब मैं हिन्दू हूँ तब हिन्दुओं के चलाये मार्ग पर क्यों न चलूँगा? हिन्दू-धर्म का गूढ़ तत्त्व आज नहीं तो कल समझूँगा ही। मान लीजिए, अगर कभी नहीं ही समझ सकूँगा तो भी इसी पथ से चलना होगा। हिन्दू-समाज के साथ जो पूर्वजन्म का सम्बन्ध है उसे हम काट नहीं सकते। इसी सम्बन्ध से तो इस जन्म में ब्राह्मण के घर जन्म लिया है, इसी तरह बारंबार हिन्दू-धर्म और हिन्दू-समाज के भीतर जन्म ग्रहण कर अन्त में आवागमन से उत्तीर्ण हूँगा। यदि भूल से कभी दूसरा रास्ता पकड़ूँगा तो फिर दुगुने वेग से लौट कर अपने मार्गपर आना होगा।

कृष्णदयाल ने सिर हिला कर कहा—सुनो बेटा, हिन्दू कहने ही से कोई हिन्दू नहीं होजाता। मुसलमान होना सहज

है, और किरिस्तान होना भी कठिन नहीं। किन्तु हिन्दू! अरे दादा! हिन्दू होना बड़ा कठिन है।

गौर—हाँ, यह सही है। किन्तु मैं जब हिन्दू हो कर उत्पन्न हुआ हूँ तब तो सिंह दर्वाज़ा पार होकर ही आया हूँ। विजातियों के लिए हिन्दू होना अवश्य कठिन, कठिन ही क्या, उनके पक्षमें नितान्त असंभव है। मैं अब भली भाँति समझ बूझ कर हिन्दू-धर्म का साधन करूँगा तो अवश्य ही मेरा प्रयत्न सफल होगा।

कृष्णदयाल—दलील से तो मैं तुमको ठीक ठीक नहीं समझा सकूँगा। पर तुम जो कह रहे हो वह भी सच हो सकता है। जिसका जो कर्म-फल है, जिसका जो नियत धर्म है, वह घूम फिर कर एक दिन उस धर्म पर आवेगा ही। उसे कोई रोक नहीं सकता। ईश्वर की ऐसी ही इच्छा है! हम क्या कर सकते हैं। हम लोग तो एक निमित्त मात्र हैं।

उमा दारु योषित की नाईं।
सबहिं नचावैं राम गुसाईं॥

कर्म-फल और भगवान् की इच्छा, ब्रह्मज्ञान तथा भक्ति-योग, इन सब को कृष्णदयाल तुल्य समझते थे। इनके बीच जो परस्पर किसी तरह का कुछ भेद है उसका वे कभी अनुभव तक नहीं करते थे।

[६]

आज सबेरे नित्यकृत्य समाप्त करके कृष्णदयाल अनेक दिनों के बाद आनन्दी के कमरे के भीतर गये और अपने हाथ से कम्बल का आसन बिछा बड़ी सावधानी से चारों ओर का स्पर्श बचा कर शान्त भाव से बैठे।

आनन्दी ने कहा—आप तो तपस्या करते हैं, घर की बात कुछ जानते नहीं। मेरे मन में गोरा का भय दिन-रात लगा रहता है।

कृष्ण०—क्यों, भय कैसा?

आनन्दी—मैं यह आप से ठीक ठीक नहीं कह सकती। किन्तु मेरे मन में जो है सो सुनिए। गोरा जो आज-कल हिन्दूपन दिखा रहा है, उसने जो हिन्दू-धर्म पर चलना आरम्भ किया है, सो यह क्या कभी उससे हो सकेगा। इस तरह आचार विचार करने से आखिर एक दिन कोई न कोई विपद होगी ही। मैंने तो तभी आप से कह दिया था कि उसका जनेऊ न करावें। तब तो आपने मेरी कही कुछ सुनी ही नहीं; कहा, गले में एक लच्छी सूत पहिना देने से क्या होता है। किन्तु वही सूत इस समय करामात की पिटारी बनकर गोरा को हिन्दू-धर्म पर घसीटे लिये जा रहा है। इसका क्या उपाय होगा?

कृष्ण०—अच्छा, तो क्या सब दोष मेरा ही है? शुरू में तो तुम्हीं ने भूल की। तुम ने उसे अपने पास घेर रक्खा। तब मैं भी पूरा गँवार था—धर्म-कर्म का कुछ भी ज्ञान न था। अब की सी बुद्धि होने से क्या वैसा काम कभी करता।

आनन्दी—आप जो चाहे कहें, पर मैंने जो कुछ किया है वह अधर्म है, इस बात को मैं किसी तरह नहीं मान सकती। आप तो जानते ही हैं, सन्तान होने के लिए मैंने क्या नहीं किया। जिस ने जो कहा वही किया। कितने यन्त्र मन्त्र धारण किये, कितना टोना किया। यह सब मुझे बखूबी याद है। एक दिन मैंने सपना देखा कि मैं डलिया-भर तगर के फूल लेकर श्रीठाकुरजी की पूजा करने बैठी हूँ। इतने में क्या देखती हूँ कि डलिया में फूल नहीं हैं, फूलों की जगह एक अत्यन्त सुन्दर छोटा सा बालक बैठा है। अहा! उसका मनोहर रूप अब भी मेरी आँखों में गड़ा है। जो देखा था वह आप को कैसे बताऊँ! मेरी दोनों आँखों से आनन्द के आँसू बहने लगे। ज्योंही हाथ फैला कर उसे गोद में लेना चाहा त्योंही नींद टूट गई। उस के दस दिन भी न होने पाये कि गोरा मेरी गोद में आ बैठा। वह मेरा ठाकुर का दिया दान है। वह क्या और किसी का है, जो मैं उसे देदूँगी। मालूम होता है, पूर्व जन्म में उस को गर्भ में धारण कर मैंने बहुत कष्ट पाये थे, इसी से वह इस जन्म में मुझे माँ कहने आया है। कहाँ से किस तरह वह आया,

इस बात को भी तो एक बार सोच देखिए। चारों ओर मार काट हो रही थी, मैं अपने ही प्राणों के भय से मरी जाती थी—उसी समय आधी रात को वह मेम हमारे घर में आ छिपी; तुम तो डर के मारे उसको घर में रखना ही नहीं चाहते थे। मैंने तुम्हारी आँख बचा कर उसे गोशाला में छिपा रक्खा। उसी रात एक बालक जन कर वह बेचारी मर गई। उस बे माँ-बाप के बच्चे को यदि मैं न बचाती तो क्या वह बचता। तुम्हें क्या फ़िक्र थी? तुम ने तो उसे पादरी के हाथ में देना चाहा था। मैं पादरी को क्यों देने जाती? पादरी क्या उसका माँ-बाप था, जो उसको पालता पोसता? इस तरह जिस लड़के को पाया है वह क्या गर्भ से पाये हुए की अपेक्षा कम है? आप चाहे जो कहें, किन्तु इस लड़के को जिसने मेरे हाथ सौंपा है यदि वह स्वयं न ले ले तो कण्ठगत प्राण होने पर भी मैं किसीको लेने न दूँगी।

कृष्ण०—यह तो मैं भी जानता हूँ। तुम अपने गोरा को ले कर रहो, मैं तो इसमें कभी कोई बाधा नहीं डालता। किन्तु उसको अपना लड़का कह कर जब लोगों में परिचय दिया तब उसका जनेऊ न कराने से समाज के लोग क्या कहते। इसी से जनेऊ कराना पड़ा। अब केवल दो बातें सोचने की हैं। न्यायदृष्टि से तो मेरी धन-सम्पत्ति सब महिम को ही मिलनी चाहिए, इससे—

आनन्दी—आपके धन का अंश कौन लेने जाता है? आपके पास जो कुछ धन-दौलत रुपये-पैसे हों सब महिम को दे दीजिए। गोरा उसका एक पैसा भी न लेगा। वह पढ़ा लिखा है, वह ख़ुद कमा खायगा। वह दूसरे का धन बँटाने क्यों जायगा? वह जीता रहे, यही मेरे लिए बहुत है—मैं धन दौलत कुछ नहीं चाहती।

कृष्ण०—नहीं, उसे एकदम वञ्चित न करूँगा। जागीर उसीको दे दूँगा। कम से कम साल में उससे एक हज़ार रुपये की आय होने लगेगी। अब चिन्ता है उसके ब्याह की, उसका ब्याह अब हो जाना चाहिए। पहले जो कुछ किया सो किया। किन्तु अब हिन्दू की भाँति ब्राह्मण के घर में उसका ब्याह नहीं करा सकूँगा। इसमें तुम क्रोध करो चाहे जो करो।

आनन्दी—राम राम, आप समझते हैं कि मैं आपकी भाँति गोबर से चौका लगा कर और गङ्गाजल छिड़ककर नेम-निष्ठा से नहीं रहती, इस से मुझको धर्मज्ञान भी नहीं है। भला, ब्राह्मण के घर में उसका ब्याह कैसे होगा? और इसके लिए मैं क्रोध ही क्यों करूँगा?

कृष्ण०—तुम ब्राह्मण की बेटी हो न, इसी से ऐसा कहती हो।

आनन्दी—अब मैं ब्राह्मण की बेटी कहाँ रही। ब्राह्मण का कर्म तो मैंने छोड़ ही दिया है। महिम के ब्याह के

समय यही तो मेरी किरिस्तानी चाल थी, जिसे देख कर कुटुम्बवर्ग कानाफूसी करने लग गये थे। इसी से मैं अलग हो गई थी और कुछ बोली नहीं। सारे संसार के लोग मुझे किरिस्तान कहते हैं। और जिसके जी में जो आता है, बकता है। मैं सब की बातें सुन लेती हूँ और यही कहती हूँ कि किरिस्तान क्या आदमी नहीं होता! अगर तुम्हारी ही जात सब से ऊँची है यदि और तुम्हीं को भगवान आदर की दृष्टि से देखते हैं तो उन्होंने एक बार पठान के, एक बार मुग़ल के और एक बार किरिस्तान के पैरों पर तुम्हारे सिर क्यों रखवाये? उन विधर्मियों के हाथ में देश-शासन का भार क्यों दिया?

कृष्ण०—यह सब सोचने की बातें हैं। तुम औरत होकर सब बातें नहीं समझोगी। किन्तु समाज भी एक अत्याज्य वस्तु है, यह तो तुम जानती हो, उसे राज़ी रखकर ही कोई काम करना उचित है।

आनन्दी—मेरे समझने की ज़रूरत नहीं है। मैं यही जानती हूँ कि जब गोरा को मैंने पाल-पोस कर छोटे से बड़ा किया है तब आचार-विचार की ओर दृष्टि देने से समाज रहे चाहे न रहे, परन्तु धर्म नहीं रहेगा। मैं केवल उस धर्म के भय से ही कभी किसी से कुछ नहीं छिपाती। मैं जो कुछ मानती या करती हूँ वह सभी पर प्रकट कर देती हूँ; और सभी की घृणास्पद होकर चुपचाप अपना काम किये जाती हूँ।

सिर्फ़ एक बात मैंने छिपा रक्खी है ; उसके लिए मैं दिन-रात डर से सिकुड़ी रहती हूँ, न जाने भगवान् कब क्या करेंगे। सुनिए, मैं चाहती हूँ कि गोरा से सब बातें खोल कर कह दूँ। इसके बाद भाग्य में जो लिखा होगा, वह होगा।

कृष्णदयाल घबरा कर बोल उठे—नहीं नहीं, मैं जब तक जीता हूँ तब तक किसी तरह यह बात न हो सकेगी। गोरा को तुम जानती ही हो, यह बात सुन लेने पर वह क्या कर बैठेगा, यह नहीं कहा जा सकता। एक बात और यह कि यह रहस्य प्रकट होने पर समाज में बड़ा भारी बखेड़ा उठ खड़ा होगा। इतना ही नहीं, यह बात सुन पाने पर सरकार क्या करेगी, इसका भी कुछ निश्चय नहीं। मान लो, अगर गोरा का बाप लड़ाई में मारा गया था, और माँ भी उसकी मर ही गई थी तो सब उपद्रव शान्त होने पर मजिष्टरी में इन बातों की ख़बर देना उचित था। अभी इस घटना को लेकर यदि कोई बखेड़ा उठ खड़ा हो तो मेरे सभी साधन और ज्ञान ध्यान मिट्टी में मिल जायँगे। और भी क्या विपत्ति आ खड़ी हो, नहीं कहा जा सकता।

आनन्दी चुप हो रही। कृष्णदयाल कुछ देर में बोले—गोरा के ब्याह के बारे में मैंने एक बात सोची है। परेश भट्टाचार्य मेरे साथी हैं, मेरे साथ साथ पढ़ते थे। वे स्कूल की इन्स्पेक्टरी में पेन्शन पाकर अब कलकत्ते में आ बैठे हैं। वे घोर ब्राह्म हैं। सुना है, उनके यहाँ अनेक

अनब्याही लड़कियाँ हैं। अगर उनके घर से गोरा का मेल-मिलाप करा दें तो उनके यहाँ आने-जाने से परेश बाबू की कोई लड़की उसके पसन्द हो भी सकती है। उसके बाद ब्याह की बात ठीक हो जायगी।

आनन्दी—आप यह क्या कहते हैं! गोरा ब्राह्म के घर कैसे आवे जावेगा? वह समय निकल गया जब वह ऐसा कर सकता।

इसी समय धीर स्वर से "माँ" कहता हुआ गौरमोहन उस कमरे में आया। कृष्णदयाल को वहाँ बैठा देख वह कुछ विस्मित हुआ। आनन्दी झट उठ कर गौरमोहन के पास गई और स्नेहभरी दृष्टि से उसके मुँह की ओर देख कर बोली—कहो बेटा, क्या चाहते हो?

"नहीं, कुछ नहीं, अभी रहने दो"—यह कह कर गौर ने तुरन्त उलटे पैर लौटना चाहा।

कृष्णदयाल ने कहा—कहाँ जाते हो? ज़रा बैठो, तुमसे एक बात कहना है। मेरे एक ब्राह्म मित्र इन दिनों कलकत्ते आये हैं, वे हेदोतला में रहते हैं।

गौर—परेश बाबू तो नहीं?

कृष्ण०—तुमने उनको कैसे जाना?

गौर—विनय उनके घर के पास ही रहता है, उसके मुँह से उनका समाचार सुना है।

कृष्ण०—मैं चाहता हूँ, तुम उनके घर जाकर उनसे मिलो, और उनका कुशल-समाचार ले आओ।

गौरमोहन मन में कुछ सोच कर सहसा बोल उठा—अच्छा, मैं कल उनके यहाँ जाऊँगा ।

आनन्दी कुछ अचम्भे में आगई ।

गौर ने कुछ सोच कर फिर कहा—नहीं, कल तो मैं न जा सकूँगा ।

कृष्णदयाल—क्यों ?

गौर—कल मुझे त्रिवेणी जाना होगा ।

कृष्णदयाल ने अचम्भे के साथ कहा—त्रिवेणी!

गौर—कल सूर्यग्रहण का स्नान है ।

आनन्दी—तुमने तो ग़ज़ब किया बेटा । स्नान करना चाहते हो तो क्या कलकत्ते में गङ्गाजी नहीं हैं । त्रिवेणी न जाने से क्या तुम्हारा स्नान न होगा । तुम तो बूढ़े हिन्दू से भी बढ़ कर कर्मकाण्डी निकले!

गौर इसका कुछ उत्तर न देकर चला गया ।

गौर ने जो त्रिवेणी-स्नान करने का संकल्प किया है, उसका कारण यही कि वहाँ अनेक तीर्थयात्री एकत्र होंगे अतएव एक साथ वहाँ कितने ही लोगों से भेंट होगी । उनसे धर्म-सम्बन्धी बहुत कुछ वार्तालाप होगा ।

[७]

तड़के उठ कर विनय ने देखा कि रात में ही आकाश साफ़

हो गया है। काले बादल कहीं दिखाई नहीं देते, दो एक सफ़ेद बादलों के टुकड़े निठल्ले मनुष्य की तरह इधर से उधर जा रहे हैं। प्रातःकाल का स्वच्छ प्रकाश छोटे बच्चे की हँसी की भाँति प्रस्फुटित होकर सब के हृदय को प्रफुल्लित कर रहा है।

बरामदे में खड़े होकर जब वह प्रातःकालिक मधुर दृश्य को देख कर पुलकित हो रहा था उसी समय उसने देखा, परेश बाबू एक हाथ में छड़ी और दूसरे हाथ से सतीश का हाथ पकड़े धीरे धीरे चले जा रहे हैं। विनय को बरामदे में देखते ही सतीश हाथ की ताली बजा कर उच्च स्वर से "विनय बाबू" कह कर चिल्ला उठा। परेशचन्द्र ने भी सिर उठा कर विनय की ओर देखा। विनय झटपट नीचे उतर आया और परेश ने भी सतीश के साथ उस के घर के भीतर प्रवेश किया।

सतीश ने विनय का हाथ पकड़ कर कहा—विनय बाबू, आप ने उस दिन हमारे घर आने का करार किया था, पर आये क्यों नहीं?

सतीश की पीठ पर स्नेह से हाथ रखकर विनय हँसने लगा। परेश सावधानी से अपनी छड़ी टेबुल से अड़ा कर कुरसी पर बैठे और बोले—उस दिन आप यहाँ न रहते तो हम लोगों की बड़ी दुर्दशा होती। आपने बड़ा उपकार किया।

विनय ने संकुचित होकर कहा—आप यह क्या कहते हैं। मैंने भला क्या उपकार किया है?

सतीश झट पूछ बैठा—अच्छा, विनय बाबू, आपके यहाँ कुत्ता है?

विनय ने हँस कर कहा—कुत्ता? नहीं, मैं कुत्ता नहीं पालता।

सतीश—क्यों, कुत्ता आप क्यों नहीं पालते?

विनय—मैं कुत्ते पोसना पसन्द नहीं करता।

परेश—सुना, उस दिन सतीश आपके यहाँ आया था। मालूम होता है, यह आप को ख़ूब दिक कर गया। यह इतना बकता है कि इसकी बहन ने इसका नाम बख़्तियार खिलजी रक्खा है।

विनय—मैं भी ख़ूब बोलनेवाला हूँ, इसीसे हम दोनों में ख़ूब मैत्री हो गई है। क्यों सतीश बाबू, यह बात है न?

सतीश ने इस बात का कुछ उत्तर न दिया; किन्तु वह अपने नये नामकरण से विनय के समक्ष अपनी मान-हानि समझ घबरा उठा और बोला—ठीक तो है, बख़्तियार खिलजी नाम क्या बुरा है? अच्छा, कहो, विनय बाबू, बख़्तियार खिलजी ने लड़ाई की थी न? उसने बंगाल को जीत लिया था न?

विनय ने हँस कर कहा—पहले वह लड़ाई करता था,

अब लड़ाई की ज़रूरत नहीं है; अब वह केवल वक्तृता करता है और इसीसे वह चाहे तो सारे बंगाल को जीत सकता है।

इसी प्रकार बड़ी देर तक दोनों में बातचीत हुई। परेश बाबू इन दोनों की अपेक्षा कम बोले। उन्होंने केवल प्रसन्न शान्त मुख से मुसकुरा कर बीच बीच में दो एक बातों में योग-दान ही किया। बिदा होते समय कुरसी से उठ कर उन्होंने कहा—हमारा अठहत्तर नंबर का मकान यहाँ से बराबर दहने हाथ की तरफ़ कुछ ही दूर—

सतीश बीच ही में बोल उठा—उन्हें हमारा घर मालूम है। उस दिन वे हमारे साथ बराबर हमारे घर के फाटक तक गये थे।

इस बात में सकुचने का कोई कारण न था, किन्तु विनय मनही मन लज्जित हो गया। मानो वह किसी गुप्त विषय में पकड़ा गया हो।

वृद्ध ने कहा—तब तो आप मेरा घर देख ही चुके हैं। यदि कभी आप को—

विनय—यह कहने की आवश्यकता नहीं—जब मुझे—

परेश—मेरा और आपका घर तो एक ही महल्ले में है। परन्तु यह शहर इतना बड़ा है कि इतने दिनों तक मेरी और आपकी जान पहचान न हुई।

विनय सड़क तक परेश को पहुँचा आया। कुछ देर वह फाटक के पास खड़ा रहा। परेश बाबू हाथ में छड़ी

लेकर धीरे धीरे चले। सतीश भी मनमानी बातें बकता हुआ उनके साथ साथ चला।

विनय मन ही मन कहने लगा—परेश बाबू के ऐसा सज्जन वृद्ध कभी नहीं देखा—उनके चरणों की धूल सिर चढ़ाने को जी चाहता रहा। सतीश लड़का भी क्या ही चमत्कार-भरा है। अगर जी जायगा तो वह एक नामी पुरुष होगा। जैसी उसकी बुद्धि है वैसी ही उसमें सरलता भी है।

ये वृद्ध और बालक चाहे जितने ही भले हों, परन्तु इतनी थोड़ी देर के परिचय से उन पर इस परिमाण से प्रगाढ़ भक्ति और स्नेह का उदय न हो सकता था। किन्तु विनय का मन एक ऐसी अवस्था में पड़ा था जिससे उसने विशेष परिचय की अपेक्षा न रक्खी।

इसके बाद फिर उसने सोचा—परेश बाबू के घर न जाने से शिष्टता की रक्षा न होगी। जब वे ख़ुद मुझ से इस तरह कह गये हैं तब उनके यहाँ न जाना अशिष्टता में गिना जायगा।

किन्तु गौरमोहन के मुँह से उसके हिन्दू-दल का भारत-वर्ष उससे कहने लगा, वहाँ तुम्हारा जाना-आना अच्छा नहीं, ख़बरदार!

विनय पग पग में अपने दल के भारतवर्ष के अनेक निषेध वाक्यों को मान कर चला है, जिस बात में उसे कुछ सन्देह उत्पन्न हुआ है उसे भी मान लिया है, दुबिधा होने

पर भी वह इतने दिन तक अपनी ही भूल मान कर हिन्दू-धर्म को आदर देता आया है। किन्तु आज उसके मन के भीतर एक विद्रोह की झलक दिखाई दी है। भारतवर्ष अब उसकी दृष्टि के आगे निषेध की मूर्ति बन कर चारों ओर से उसे बकोटने लगा है।

नौकर ने आकर ख़बर दी, भोजन तैयार है; किन्तु विनय ने अभी तक स्नान भी नहीं किया है। बारह बज गये हैं। विनय ने सिर हिला कर कहा—मैं नहीं खाऊँगा, तुम लोग क्यों भूखे रहो, जाकर खा लो। यह कह कर हाथ में छाता ले वह घर से बाहर हो पड़ा। उसने एक डुपट्टा भी काँधे पर न लिया।

विनय सीधे गौरमोहन के घर जा उपस्थित हुआ। वह जानता था, एमहर्स्ट स्ट्रीट में एक भाड़े के मकान में हिन्दूहितैषिणी सभा का कार्यालय है; और गौरमोहन नित्य दोपहर दिन को ऑफ़िस में जाकर अपने दल के समस्त वङ्ग-देशीय लोगों को पत्र द्वारा जाग्रत करता है। वहीं उसके भक्त-गण उसके मुँह से उपदेश सुनने आते हैं और अपनी सहकारिता दिखा कर अपने को धन्य मानते हैं।

उस दिन भी गौर उसी ऑफ़िस का काम करने गया था। विनय बेरोक एकाएक हवेली के भीतर प्रवेश कर आनन्दी के कमरे में जा खड़ा हुआ। आनन्दी भोजन करने बैठी थी और लखमिनिया उसके पास बैठ कर पंखा झल रही थी।

आनन्दी ने अकचकाकर कहा—कहो विनय, किधर से आये ? तुम्हें क्या हुआ है ?

विनय ने उसके सामने बैठकर कहा—माँ, बड़ी भूख लगी है, मुझे कुछ खाने को दो।

आनन्दी ने घबरा कर कहा—तब तो तुमने बड़ी मुश्किल की। रसोइया ब्राह्मण तो चला गया—तुम्हें कौन परोस कर—

विनय ने कहा—मैं क्या ब्राह्मण देवता के हाथ का बनाया हुआ खाने आया हूँ ? अगर वही खाना चाहता तो मेरे ब्राह्मण ने क्या अपराध किया था जो उसके हाथ का छुआ न खाता। मैं तो तुम्हारे थाल का प्रसाद खाऊँगा। लखमिनिया, मुझे एक गिलास पानी ला दो।

लखमिनिया पानी ले आई। विनय घट् घट् कर पी गया। तब आनन्दी ने एक दूसरी थाली लाकर उसमें अपनी थाली का थोड़ा सा भात बड़े स्नेह और यत्न से परोस कर विनय के आगे रख दिया। विनय बहुत दिन के भूखे की भाँति गपागप खाने लगा।

आनन्दी के मन की एक तीव्र वेदना आज दूर हुई। उसका प्रसन्न मुँह देख कर विनय के हृदय का बोझ मानो हलका हो गया। आनन्दी तकिये का खोल सीने बैठी। कत्थे को सुवासित करने के लिए पास वाले कमरे में जो केवड़े का फूल रक्खा हुआ था, उसकी सुगन्ध आने लगी। विनय आनन्दी के पैर के पास हाथ पर सिर रख, अर्द्धशायित की

भाँति घुटने मोड़ कर लेट रहा। संसार की सब बातें भूल कर वह भविष्य की आशा में आनन्द से उमँग कर बातें करने लगा।

[८]

इस एक समाज-बन्धन का भङ्ग होते ही विनय के हृदय की बाढ़ मानो बड़े वेग से उमड़ चली। आनन्दी के घर से बाहर होकर वह रास्ते पर आते ही मानो एक दम उड़ चला; मानो धरती के ऊपर ही ऊपर जाने लगा। उसकी इच्छा होने लगी कि जिस बात से मैं कई दिनों से संकोच में पड़ कर कष्ट पा रहा था, उसे आज सबके सामने सिर उठा कर प्रकट कर दूँ।

विनय जिस समय ७८ नंबर वाले मकान के फाटक के पास आ पहुँचा, ठीक उसी समय परेश भी दूसरी ओर से वहाँ आ उपस्थित हुए।

"आइए आइए, विनय बाबू, आप को देख कर हम बड़े प्रसन्न हुए," यह कह कर परेश बाबू ने विनय को अपने बाहर के कमरे में ले जाकर बिठाया। उस कमरे के भीतर एक छोटी सी टेबल थी, उसके एक तरफ़ बेञ्च और दूसरी तरफ़ एक काठ तथा बेंत की बुनी कुरसी थी। दीवाल में एक ओर ईसा मसीह का एक रङ्गीन चित्र और दूसरी ओर केशव बाबू का

चित्र टँगा था। टेबल के ऊपर, दो चार दिन के समाचार-पत्र, और कुछ पुस्तकें सजा कर रक्खी हुई थीं।

विनय बैठ गया। उसका हृदय न मालूम क्यों एकाएक धड़कने लगा। उसके मन में आने लगा, जैसे कोई उसकी पीठ की ओर से खुले दर्वाज़े होकर घर के भीतर आया है।

परेश ने कहा—सोमवार को सुशीला मेरे एक मित्र की लड़की को पढ़ाने जाती है। वहाँ सतीश की हमजोली का एक लड़का भी है, इसीसे सतीश भी उसके साथ गया है। मैं उनको वहाँ पहुँचा कर अभी अभी आया हूँ। मेरे आने में ज़रा और देर होती तो आप आगे बढ़ जाते।

यह सुन कर विनय के मन में आशा-भङ्ग की वेदना और आराम दोनों एक साथ आविर्भूत हुए। परेश के साथ आज उसकी घुल घुल कर बातें होने लगीं।

वार्तालाप करते करते परेश ने आज एक एक कर विनय के सब समाचार जान लिये। विनय के माँ बाप नहीं हैं। उसकी एक चाची और चाचा देश में रह कर घर का काम देखते भालते हैं। उसके दो चचेरे भाई उसके साथ एक मकान में रहकर पढ़ते-लिखते थे। बड़ा वकील हो गया है और अपने ज़िले की कचहरी में वकालत कर रहा है, छोटा कलकत्ते में ही हैज़े की बीमारी से चल बसा। उसके चाचा की इच्छा है कि विनय डिपुटी मैजिस्ट्रेटी के लिए कोशिश करे, किन्तु

विनय उसकी कोई चेष्टा न करके इधर उधर के कामों में घूमता फिरता है।

इस प्रकार बातचीत में प्राय: एक घंटा बीत गया। बिना प्रयोजन के कहीं अधिक देर तक रहना अभद्रता है, यह सोच कर विनय कुरसी से उठ खड़ा हुआ। कहा—प्रिय सतीश से मेरी भेंट न हुई, इसका दुःख रहा। आप उससे कह दीजिएगा, मैं आया था।

परेश बाबू ने कहा—और कुछ देर बैठने ही से भेंट हो जायगी। उन सबों के लौटने में अब अधिक विलम्ब नहीं है।

इस बात पर निर्भर होकर फिर बैठने में विनय को लज्जा हुई। कुछ और विशेष आग्रह दिखाने पर वह बैठ जाता परन्तु परेश बाबू व्यर्थ की बात करने और किसी बात में विशेष हठ दिखाने वाले मनुष्य नहीं हैं, इसलिए विनय ने विनयपूर्वक बिदा माँगी। परेश ने कहा—कभी कभी आप मेरे यहाँ आवेंगे तो मैं प्रसन्न हूँगा।

सड़क पर आकर विनय ने अपने घर की ओर लौटने का कुछ विशेष प्रयोजन नहीं देखा। वहाँ कोई काम न था। विनय समाचार-पत्रों में लेख दिया करता था। उसके अँगरेज़ी लेखों की सब लोग तारीफ़ करते थे किन्तु गत कई दिनों से जब वह लिखने बैठता है तब एक भी लेख उसके मस्तिष्क में नहीं आता। कुछ देर हाथ में क़लम ले कुछ सोचता है। जब कोई बात मन में नहीं बैठती तब टेबल

पर क़लम रख कर और ही बात सोचने लगता है। टेबल के समीप अधिक देर तक बैठना उसके लिए कठिन हो जाता है। मन उसका व्याकुल हो उठता है। इसीसे वह आज बिना कारण ही फिर किसी ओर चलने को उद्यत हुआ।

दो तीन क़दम आगे जाते ही उसे एक बालक का कंण्ठ-स्वर सुन पड़ा। वह "विनय बाबू, विनय बाबू," कह कर ज़ोर से पुकार रहा था।

उसने आँख उठा कर देखा, एक भाड़ा-गाड़ी की खिड़की से सिर निकाल कर सतीश चिल्ला चिल्ला कर पुकार रहा है। गाड़ी के भीतर आसन पर जो कुछ साड़ी का अंश और सादे कुरते की कोर देख पड़ी उनसे उस सवार के पहचानने में कोई कसर न रही।

भारतीय भद्र सन्तान की मर्यादा के अनुसार देर तक गाड़ी की ओर स्थिर दृष्टि से देखना विनय के लिए कठिन हो गया। इतने में वहीं गाड़ी से उतर सतीश ने दौड़ कर उसका हाथ पकड़ लिया और कहा—चलो, हमारे घर चलो।

विनय—मैं तुम्हारे घर से अभी आ रहा हूँ।

सतीश—हम तो नहीं थे, फिर चलो।

सतीश के हठ को विनय टाल न सका। वन्दी की तरह विनय का हाथ पकड़े सतीश घर के भीतर प्रवेश करते ही ज़ोर से बोल उठा—देखो बाबूजी, विनय बाबू को पकड़ लाया हूँ।

वृद्ध ने घर से बाहर हो मुसकुरा कर कहा—ज़बरदस्त के हाथ पकड़े गये हैं, अब क्या ये जल्दी छुट सकेंगे। सतीश, तू अपनी बहन को बुला ला।

विनय कमरे में आकर बैठा। उसका कलेजा धड़कने लगा। परेश ने कहा—मालूम होता है, आप थक गये हैं। सतीश बड़ा नटखट लड़का है।

सतीश ने जब अपनी बहन का हाथ पकड़े हुए कमरे में प्रवेश किया तब विनय को एक अपूर्व कोमल सुगन्ध का अनुभव हुआ। इसके बाद उसने सुना—परेश बाबू कह रहे हैं—राधा, विनय बाबू आये हैं। इनको तो तुम जानती ही हो।

विनय ने चकित की भाँति सिर उठाकर देखा, सुशीला उसे सिर नवा कर सामने कुरसी पर आ बैठी। विनय भी इस दफ़े प्रत्यभिवादन करना नहीं भूला।

सुशीला—ये सड़क पकड़े जा रहे थे। इनको देखते ही सतीश रोके न रुका। झट गाड़ी से उतर कर इनको खींच लाया। शायद आप किसी काम से कहीं जा रहे थे। (विनय की ओर देखकर) आप को किसी तरह की असुविधा तो नहीं हुई?

सुशीला विनय से साक्षात् कोई बात कहेगी, यह आशा विनय को न थी। वह सुशीला का मधुर भाषण सुन कर घबरा कर बोला—जी नहीं, कोई काम न था, यों ही घूमने जा रहा था। असुविधा क्या होगी?

सतीश ने सुशीला के कपड़े का पल्ला पकड़ कर कहा—बहिन, सन्दूक़ की कुंजी दो। मैं अपना अर्गन बाजा लाकर विनय बाबू को दिखाऊँगा।

सुशीला ने हँस कर कहा—मालूम होता है, अब यहाँ से शुरू हुआ। जिसके साथ बख़्तियार का हेलमेल होगा उसकी फिर रक्षा नहीं। अर्गन तो इनको सुनना ही होगा, और भी न मालूम कितने दुःख इन्हें झेलने होंगे। विनय बाबू, यह आपका मित्र है तो छोटा, परन्तु इसकी मित्रता का दबाव बहुत बड़ा है। नहीं कह सकती, आप सहन कर सकेंगे या नहीं।

सुशीला के इस प्रकार अकुण्ठित आलाप में स्वाभाविक रीति से योग देने का उपाय विनय की समझ में न आया। सुशीला के साथ निःसंकोच होकर बातें करने की मन में दृढ़ प्रतिज्ञा करने पर भी उसने नज़र नीची करके किसी प्रकार दबी ज़बान से जवाब दिया—जी नहीं, कुछ नहीं, आप यह—मैं—मुझे तो अच्छा ही लगता है।

सतीश अपनी बहन से कुंजी लेकर सन्दूक़ से अर्गन निकाल कर ले आया। वह तुरंत अर्गन बजा कर विनय की ओर देखने लगा।

इस प्रकार सतीश के बीच में पड़ जाने से विनय का संकोच धीरे धीरे दूर हो गया, और बीच बीच में सुशीला के साथ बात-चीत करना भी अब उसके लिए सहल हो गया।

कुछ देर पीछे लीलावती ने वहाँ आकर कहा—बाबूजी, माँ आप सबों को ऊपर के बरामदे में बुलाती हैं ।

[६]

ऊपर के बरामदे में एक टेबल उजले कपड़े से ढँकी है । टेबल के चारों तरफ़ कुरसियाँ सजी हुई हैं । रेलिंग के बाहर कार्निश के ऊपर छोटे छोटे गमलों में पत्र-बहार और विलायती फूलों के पेड़ हैं । बरामदे पर से सड़क के किनारे के शिरीष और मौलसिरी आदि वृक्षों के, बरसात के पानी से धोये हुए, पत्तों की चिकनाहट देखी जा रही है ।

सूर्यास्त होने में अभी कुछ देर है । पश्चिम आकाश से हलकी धूप सीधे बरामदे के एक प्रान्त में आ पड़ी है ।

छत के ऊपर उस समय कोई न था । कुछ ही देर में सतीश सफ़ेद-काले बालों वाले एक छोटे से कुत्ते को लेकर वहाँ आया । कुत्ते का नाम मौला था । इस कुत्ते के पास जितनी करामात थी, सतीश ने सब विनय को दिखा दी । उसने एक पैर उठा कर सलाम किया । धरती पर सिर टेक कर प्रणाम किया । एक टुकड़ा बिस्कुट देखते ही पूँछ के बल बैठ कर और दो पैर आगे बढ़ा कर भीख माँगी । इस प्रकार मौला ने जो यश प्राप्त किया उसको सतीश अपना ही यश मान कर मारे गर्व के फूले अङ्ग न समाया । किन्तु

इस यशोलाभ की ओर मौला का ध्यान बिलकुल न था, वास्तव में उसका ध्यान था उस बिस्कुट के टुकड़े की ओर।

किसी एक कमरे से बीच बीच में लड़कियों के गले की खिल-खिलाहट और कुतूहल-भरा कण्ठस्वर तथा उसके साथ एक पुरुष का मन्दस्वर भी सुन पड़ता था। इस बेतरह की हँसी और कुतूहल-भरे शब्द से विनय के मन में एक अपूर्व माधुर्य के साथ साथ कुछ ईर्ष्या का भी सञ्चार हो आया। घर के भीतर लड़कियों के कोमल कण्ठ की यह आनन्द-मिश्रित मधुर ध्वनि, जब से उसे ज्ञान हुआ है, इस तरह कभी नहीं सुनी थी। यह मधुर कल-रव उसके समीप ही हो रहा था, इससे उसका ध्यान बिलकुल उस ओर खिंच गया। सतीश उसके कान के पास क्या कह रहा था, यह अत्यन्त समीप होने पर भी उसे कुछ सुन न पड़ा।

परेश बाबू की स्त्री अपनी तीन लड़कियों के साथ छत पर आई। उसके साथ एक युवक भी था, जो उसके दूर का कोई नातेदार था।

परेश बाबू की स्त्री का नाम शिवसुन्दरी था। उसकी उम्र कम न थी, किन्तु देखने से यही जान पड़ता था कि वह बड़े यत्न से अपने रूप को सँवार कर युवती बन आई है। अधिक अवस्था तक वह दिहात की स्त्री की तरह रह कर सहसा कुछ दिनों से वर्तमान समय के साथ समान वेग से चलने के लिए व्यग्र हो पड़ी है। इसी कारण उसकी रेशमी

साड़ी बहुत सादी है और ऊँची एँड़ी का जूता खूब खट् खट् शब्द करता है। संसार में कौन वस्तु 'ग्राह्य' और कौन 'अग्राह्य' है, इसका भेद समझ कर वह सदा सतर्क रहती है। इसीलिए राधा का नाम बदल कर उसने सुशीला रख दिया है।

उसकी बड़ी बेटी का नाम लावण्यलता है। वह मोटी-सोटी और हँसमुख है। लोगों के साथ गप शप करना उसे बहुत अच्छा मालूम होता है। उसका मुँह गोल है, आँखें बड़ी बड़ी हैं। रङ्ग साँवला है। वेष-विन्यास में वह स्वभावतः कुछ उदासीन सी रहती है; किन्तु इस सम्बन्ध में उसे माता के शासनानुसार चलना पड़ता है। ऊँची एँड़ी का जूता पहिनने में उसे सुभीता नहीं जान पड़ता, तो भी बिना पहिने नहीं बनता। तीसरे पहर बाल सँवारने के समय माँ अपने हाथ से उसके मुँह में पाउडर और गालों में गुलाबी रङ्ग लगा देती है। शिवसुन्दरी ने उसे मोटी जान कर उसके लिए एक ढीला कुरता सी दिया है, जिसे पहिन कर लावण्य बाहर निकलती है। उस समय ऐसा जान पड़ता है मानो वह काले कपड़े के खोल से मढ़ी हुई धान रखने की एक गोल कोठी हो।

मँझली लड़की का नाम ललिता है। वह बड़ी बेटी के बिलकुल उलटी है। अपनी बड़ी बहन की अपेक्षा वह लम्बी है। बदन बहुत दुबला पतला और रङ्ग कुछ काला है। लोगों से

बहुत बात चीत करना नहीं चाहती। वह अपने नियम पर चलती है; स्वभाव कुछ चिड़चिड़ा सा है। थोड़े ही में उकता कर वह कड़ी बातें कह सकती है। शिवसुन्दरी उससे कुछ डरती है। इसीसे वह ललिता से कुछ कहने का साहस नहीं करती।

छोटी बेटी का नाम लीलावती है। वह दस ग्यारह वर्ष की होगी। दौड़-धूप और उपद्रव करने में वह बड़ी पक्की है। सतीश के साथ उसका वाद-विवाद, धक्का-मुक्की और मारपीट बराबर होती रहती है। विशेष कर मौला कुत्ते के स्वत्वाधिकार पर दोनों में आज तक कोई फ़ैसला नहीं हुआ है। लीलावती कहती है, मौला मेरा है और सतीश उसे अपना बताता है। कुत्ता किसे मालिक समझता है, इसका भी ठीक ठीक पता नहीं चलता। तो भी उसके व्यवहार से इतना अवश्य मालूम होता है कि वह सतीश को ज़्यादा पसन्द करता है। लीलावती उसका लाड़ प्यार मात्रा से इतना अधिक करती थी कि वह उसके लिए असह्य हो उठता था। इस कारण वह लीलावती को देखते ही किसी ओर टल जाता था। सतीश उसे बहुत न सताता था। इसलिए बालिका के आदर की अपेक्षा बालक का शासन उसे अपेक्षा कृत सह्य था।

शिवसुन्दरी को आते देख विनय ने झट उठ कर सिर नवा उसे प्रणाम किया। परेश बाबू ने कहा—इन्हीं के घर में उस दिन हम—

साड़ी बहुत सादी है और ऊँची एँड़ी का जूता खूब खट् खट् शब्द करता है। संसार में कौन वस्तु 'ग्राह्य' और कौन 'अग्राह्य' है, इसका भेद समझ कर वह सदा सतर्क रहती है। इसीलिए राधा का नाम बदल कर उसने सुशीला रख दिया है।

उसकी बड़ी बेटी का नाम लावण्यलता है। वह मोटी-सोटी और हँसमुख है। लोगों के साथ गप शप करना उसे बहुत अच्छा मालूम होता है। उसका मुँह गोल है, आँखें बड़ी बड़ी हैं। रङ्ग साँवला है। वेष-विन्यास में वह स्वभावतः कुछ उदासीन सी रहती है; किन्तु इस सम्बन्ध में उसे माता के शासनानुसार चलना पड़ता है। ऊँची एँड़ी का जूता पहिनने में उसे सुभीता नहीं जान पड़ता, तो भी बिना पहिने नहीं बनता। तीसरे पहर बाल सँवारने के समय माँ अपने हाथ से उसके मुँह में पाउडर और गालों में गुलाबी रङ्ग लगा देती है। शिवसुन्दरी ने उसे मोटी जान कर उसके लिए एक ढीला कुरता सी दिया है, जिसे पहिन कर लावण्य बाहर निकलती है। उस समय ऐसा जान पड़ता है मानो वह काले कपड़े के खोल से मढ़ी हुई धान रखने की एक गोल कोठी हो।

मँझली लड़की का नाम ललिता है। वह बड़ी बेटी के बिलकुल उलटी है। अपनी बड़ी बहन की अपेक्षा वह लम्बी है। बदन बहुत दुबला पतला और रङ्ग कुछ काला है। लोगों से

बहुत बात चीत करना नहीं चाहती । वह अपने नियम पर चलती है; स्वभाव कुछ चिड़चिड़ा सा है। थोड़े ही में उकता कर वह कड़ी बातें कह सकती है । शिवसुन्दरी उससे कुछ डरती है । इसीसे वह ललिता से कुछ कहने का साहस नहीं करती ।

छोटी बेटी का नाम लीलावती है । वह दस ग्यारह वर्ष की होगी । दौड़-धूप और उपद्रव करने में वह बड़ी पक्की है । सतीश के साथ उसका वाद-विवाद, धक्का-मुक्की और मारपीट बराबर होती रहती है । विशेष कर मौला कुत्ते के स्वत्वाधिकार पर दोनों में आज तक कोई फ़ैसला नहीं हुआ है । लीलावती कहती है, मौला मेरा है और सतीश उसे अपना बताता है । कुत्ता किसे मालिक समझता है, इसका भी ठीक ठीक पता नहीं चलता । तो भी उसके व्यवहार से इतना अवश्य मालूम होता है कि वह सतीश को ज्यादा पसन्द करता है । लीलावती उसका लाड़ प्यार मात्रा से इतना अधिक करती थी कि वह उसके लिए असह्य हो उठता था । इस कारण वह लीलावती को देखते ही किसी ओर टल जाता था । सतीश उसे बहुत न सताता था । इसलिए बालिका के आदर की अपेक्षा बालक का शासन उसे अपेक्षा कृत सह्य था ।

शिवसुन्दरी को आते देख विनय ने झट उठ कर सिर नवा उसे प्रणाम किया । परेश बाबू ने कहा—इन्हीं के घर में उस दिन हम—

शिवसुन्दरी—अहा! आपने बड़ा उपकार किया है, आप को मैं अनेक धन्यवाद देती हूँ।

यह सुन कर विनय इतना सकुच गया कि कोई समीचीन उत्तर उसके मुँह से न निकल सका।

उन लड़कियों के साथ जो युवक आया था, उसके साथ भी विनय का संभाषण हो गया। उसका नाम सुधीर है। वह कालेज में बी० ए० में पढ़ता है। चेहरा देखने में सुन्दर है। रङ्ग गोरा है, आँखों में चशमा लगा है। दाढ़ी मूँछ पर कुछ कुछ श्यामता की झलक दिखाई दे रही है। स्वभाव बड़ा ही चञ्चल है। एक जगह एक घड़ी भी स्थिरता से नहीं बैठ सकता। एक न एक काम करने के लिए व्यग्र रहता है। हमेशा लड़कियों के साथ ठट्ठा करके उन्हें चिढ़ाया करता है। लड़कियाँ भी उसे मीठी फटकार बताने से बाज़ नहीं आतीं। कभी कभी उसे डाँटती भी हैं, किन्तु इतने पर भी उसके बिना उनका काम नहीं चलता। सर्कस दिखलाने, जूलाजिकल बाग़ ले जाने, और कोई शौक़ीनी चीज़ ख़रीद लाने के लिए सुधीर सदा ही तैयार रहता है। लड़कियों के साथ सुधीर का इस प्रकार निःसंकोच-हृद्यता का भाव विनय के निकट बिलकुल नया और विस्मयकारक हुआ। पहले तो उसने ऐसे व्यवहार की मन ही मन निन्दा ही की, किन्तु उस निन्दा के साथसाथ एक ईर्ष्या का भाव भी आ मिला।

शिवसुन्दरी ने कहा—स्मरण होता है, जैसे आप को समाज में मैंने दो एक बार देखा हो।

विनय के मन में आया मानो उसकी कोई चोरी पकड़ी गई। उसने निष्प्रयोजन लज्जा का भाव दिखा कर कहा—जी हाँ, मैं कभी कभी केशव बाबू की वक्तृता सुनने जाता हूँ।

शिवसुन्दरी ने पूछा—क्या आप कालेज में पढ़ते हैं?

विनय—जी नहीं, अब तो कालेज में नहीं पढ़ता।

शिवसुन्दरी—आप ने कालेज में कहाँ तक पढ़ा है?

विनय—एम० ए० पास किया है।

इस युवक का चेहरा अपने बालक के सदृश देख शिवसुन्दरी को इस पर श्रद्धा उत्पन्न हुई। उसने एक लम्बी साँस ले परेश की ओर देख कर कहा—मेरा मदन यदि रहता तो वह भी इतने दिन में एम० ए० पास कर चुका होता।

शिवसुन्दरी की पहली सन्तान मदनमोहन नव वर्ष की उम्र में जाता रहा। किसी युवक ने कोई उच्च परीक्षा पास की है या बड़ा उहदा पाया है, अच्छी किताब लिखी है या कोई अच्छा काम किया है, यह सुन कर शिवसुन्दरी के मन में विचार आता है कि मदन जीता रहता तो उसके द्वारा भी ये सब काम ऐसे ही होते। जो हो, वह जब संसार में न रहा तब वर्तमान जन-समाज में अपनी तीनों बेटियों के गुणों का प्रचार करना ही शिवसुन्दरी का एक विशेष कर्तव्य हो गया। मेरी लड़कियाँ खूब पढ़ती-लिखती हैं, यह बात उसने

अच्छी तरह विनय को समझा दी। मेम ने उसकी बेटियों की बुद्धि और गुण के सम्बन्ध में कब क्या कहा था, यह भी विनय से छिपा न रहा। जब कन्या-पाठशाला में इनाम बाँटते समय लेफ्टिनेन्ट गवर्नर और उनकी स्त्री आई थीं तब उन कन्याओं में पारितोषिक-वस्तु देने के लिए स्कूल की सब लड़कियों में लावण्य ही चुनी गई थी और गवर्नर की स्त्री ने लावण्य की प्रशंसा में जो मीठी मीठी बातें कही थीं वे भी विनय ने सुनीं।

आख़िर शिवसुन्दरी ने लावण्य से कहा—बेटी, सिलाई के जिस काम के लिए तुमने इनाम पाया था, वह ले तो आओ।

ऊन की सिलाई किया हुआ एक तोता इस घर के सभी आत्मीय जनों के पास परिचित हो गया था। मेम की सहायता से लावण्य ने बहुत दिनों में इस तोते को बनाया था। इसके बनाने में लावण्य का ही विशेष कौशल था, यह नहीं। किन्तु नये मुलाक़ातियों को इसका दिखाना एक नियम सा हो गया था। परेश बाबू पहले इस में रोक टोक किया करते थे, किन्तु सब निष्फल होने पर अब वे कुछ नहीं बोलते। इस ऊनी निर्माण-कौशल की ओर जब विनय आँखें विस्फारित कर ध्यानपूर्वक देख रहा था तब दरवान ने आकर एक पत्र परेश बाबू के हाथ में दिया।

पत्र पढ़ कर परेश बाबू ने प्रफुल्ल हो कर कहा—बाबू को ऊपर ले आओ।

शिवसुन्दरी ने पूछा—कौन है?

परेश—मेरे बाल्यकाल के साथी कृष्णदयाल ने अपने लड़के को हमारे साथ परिचय करने को भेजा है।

विनय का हृदय एकाएक धड़क उठा और उसका चेहरा उतर गया। इसके कुछ ही देर बाद वह ज़ोर से मुट्ठी बाँध कर दृढ़ता से बैठ गया, मानो किसी प्रतिकूल पक्ष के विरुद्ध वह अपने को अटल रखने के लिए प्रस्तुत हो गया। गौरमोहन इस परिवार के लोगों को नीची नज़र से देखेगा और इन की समालोचना करेगा, इस भावना ने मानो पहले ही से विनय को कुछ उत्तेजित कर रक्खा।

[१०]

एक तश्तरी में कुछ मिठाई और चाय आदि सब सामग्री सजा कर एक नौकर के हाथ में दे सुशीला छत के ऊपर आ बैठी, उसी समय दरवान के साथ गौरमोहन भी वहाँ आया। उसका लम्बा डील-डौल, गौर वर्ण और हिन्दुस्तानी लिबास देख कर सभी विस्मित हो उठे।

गौरमोहन के माथे में गोपी-चन्दन का तिलक था। मोटे कपड़े की धोती, अँगरखा, मोटे सूत की चादर, और पैर में देशी जूता, यही सब उसके पहनावे में था। वह मानो मानवर्त्त काल के विरुद्ध एक मूर्तिमान् विद्रोह की भाँति आ

उपस्थित हुआ । उसका ऐसा भेस विनय ने भी इसके पूर्व कभी नहीं देखा था ।

आज गौरमोहन के मन में एक विरोध की आग विशेष रूप से बल रही थी । उसका कारण भी था ।

ग्रहण-स्नान के उपलक्ष्य में कोई स्टीमर कल सबेरे यात्रियों को लेकर त्रिवेणी को रवाना हुआ था । रास्ते में जहाँ जहाँ स्टीमर ठहरता था, वहाँ वहाँ अधिकाधिक स्त्रियाँ दो एक अभिभावक पुरुषों के साथ त्रिवेणी जाने के लिए जहाज़ पर सवार हो जाती थीं । जहाज़ में अधिक यात्री हो जाने के कारण, और कहीं बैठने को जगह न रहने से, लोगों में धक्का-मुक्की होने लगी । एक दूसरे को ठेलने लगा । कीचड़-भरे पैरों से, जहाज़ पर चढ़ने के तख्ते पर यात्रियों की भीड़ होने के कारण, कोई लड़खड़ा कर नदी के जल में गिरता था, किसी को ख़लासी ढकेल कर जहाज़ से बाहर कर देता था, और कोई किसी तरह जहाज़ पर चढ़ भी जाता तो अपने साथी के पिछड़ जाने से वह व्याकुल होता था । बीच बीच में क्षणिक वृष्टि आकर उन यात्रियों को भिगो देती थी । जहाज़ में उन सबों के बैठने की जगह कीचड़ से भर गई । उन सबों के चेहरे पर एक त्रास-भरी दीनता का भाव छा गया था । वे लोग ऐसे सामर्थ्य-हीन और अभागे थे कि जहाज़ के मल्लाह से लेकर कप्तान तक किसी से भी अपने दुःख में सहायता की आशा नहीं करते थे, और यह जान कर

वे चेष्टा से एक कातर भाव और भय प्रकाशित कर रहे थे। इस अवस्था में गौरमोहन यथासाध्य यात्रियों का साहाय्य कर रहा था। ऊपर फ़र्स्ट क्लास के डेक पर, एक अँगरेज़ और एक नई रोशनी के बंगाली बाबू जहाज़ का रेलिंग पकड़े परस्पर हास्यालाप करते और चुरुट का धुआँ उड़ाते हुए तमाशा देख रहे थे। बीच बीच में किसी यात्री की कोई विशेष दुर्गति देख अँगरेज़ हँस उठता था और बंगाली बाबू भी अपनी निर्दयतासूचक हँसी से उसका साथ देता था।

दो तीन स्टेशन इस प्रकार पार हो जाने पर गौरमोहन को वह दुर्दशा असह्य हो गई। उसने ऊपर आकर मेघ की तरह गरज कर कहा—धिक्कार है तुम लोगों को, ज़रा शरम तक नहीं आती! अँगरेज़ ने कड़ी दृष्टि से गौरमोहन को सिर से पैर तक देखा। बंगाली ने कहा—शरम कैसी! देश के इन पशु-समान मूर्खों के ही लिए शरम!

गौरमोहन ने मुँह लाल कर कहा—मूढ़ की अपेक्षा वह बड़ा भारी पशु है, जिसके हृदय नहीं है; जिसके मन में दया नहीं है।

बंगाली ने खिसिया कर कहा—यह तुम्हारी जगह नहीं है, यह फ़र्स्ट क्लास है, तुम नीचे जाओ।

गौर ने कहा—ठीक है, तुम्हारे साथ रहने की यह जगह कदापि मेरे योग्य नहीं। मेरी जगह इन यात्रियों के साथ

है । किन्तु मैं कहे जाता हूँ, तुम फिर मुझे अपने इस फ़र्स्ट क्लास में आने के लिए विवश मत करना ।

यह कह कर गौरमोहन सपाटे से नीचे चला गया । इस के बाद अँगरेज़ ने आराम-कुरसी के दोनों बाहुओं पर दोनों पैर रख नावेल पढ़ना आरम्भ किया । उसके सहयात्री बंगाली ने उसके साथ फिर बात चीत करने की दो एक बार चेष्टा की किन्तु अँगरेज़ ने उसकी बात पर कुछ ध्यान न दिया । बंगाली ने अपने को देश के साधारण दल से अलग प्रमाणित करने के लिए खानसामा को पुकार कर पूछा, मुर्ग़ी का अण्डा खाने के लिए मिलेगा या नहीं ? खानसामा ने कहा—नहीं, केवल रोटी, मक्खन और चाय है । यह सुन कर बंगाली ने साहब को सुना कर अँगरेज़ी में कहा—Creature comforts सम्बन्ध में जहाज़ का सब बन्दोबस्त मनमाना है ।

साहब इस पर भी कुछ न बोला । टेबल पर से उसका अख़बार उड़ कर नीचे गिर पड़ा । बाबू ने झट कुरसी से उठ कर समाचार-पत्र नीचे से उठा कर टेबल पर रख दिया । किन्तु थैंक्स (धन्यवाद) न मिला ।

चन्दननगर पहुँच कर जहाज़ से उतरते समय साहब ने सहसा गौरमोहन के पास जा अपने सिर से ज़रा टोपी उठा कर कहा—"मैं अपने निर्दय व्यवहार के लिए लज्जित हूँ । आशा करता हूँ आप क्षमा करेंगे ।" यह कह वह झटपट चला गया ।

किन्तु शिक्षित स्वदेशवासी बाबू साधारण लोगों की दुर्गति देख विदेशी के साथ मिलकर अपनी श्रेष्ठता के अभिमान से हँसता है, यह पैशाचिक लीला गौरमोहन को जलाने लगी। देश के सर्वसाधारण लोगों ने इस प्रकार अपने को सर्वथा अपमान और दुर्व्यवहार के अधीन कर रक्खा है। इन्हें पशुवत् समझने पर भी वे अपना पशुत्व स्वीकार करते हैं और सब के यहाँ यह बात स्वाभाविक और संगत समझी जाती है। इस विचार की जड़ में जो एक देशव्यापी गहरा अज्ञान भरा है, उसके लिए गौरमोहन का हृदय मानो फटने लगा। किन्तु सब की अपेक्षा अधिक खेद उसके मन में यह हुआ कि देश के इस चिरकालिक अपमान और दुर्गति को पढ़े-लिखे लोग अपने ऊपर न लेकर अपने को निष्ठुर भाव से अलग रखने में निःसंकोच हो अपनी इज्ज़त समझते हैं। इसीसे शिक्षित लोगों की पढ़ी हुई विद्या और नक़ल करने के संस्कार की एकदम उपेक्षा करने ही के लिए आज गौरमोहन माथे में गोपी-चन्दन का तिलक लगा और देशी जूता पहन छाती फुला कर ब्राह्मसमाजी के घर आया है।

विनय मन ही मन समझ गया कि गौर बाबू का आज का यह वेष साधारण नहीं, सामरिक वेष है। गौरमोहन क्या जाने क्या कर बैठे, यह सोच कर विनय के मन में कुछ भय, संकोच और विरोध का भाव उदित हुआ।

शिवसुन्दरी जब विनय के साथ बात-चीत करती थी तब

सतीश छत के एक कोने में,लट्टू घुमा कर खेल रहा था। गौर को देख कर उसका लट्टू घुमाना बन्द हो गया। वह धीरे धीरे विनय के पास खड़ा हो कर टकटकी बाँध गौरमोहन को देखने लगा और विनय के कान लग कर पूछा—क्यों यही तुम्हारे मित्र हैं ?

विनय—हाँ।

गौर ने छत पर आते ही एक बार विनय के मुँह की ओर इस तरह देखा, मानो उसे देखा ही नहीं। परेश बाबू को नमस्कार करके वह टेबल के पास से एक कुरसी खींच कुछ दूर हट कर बैठ गया। लड़कियों को यहाँ एक तरफ़ बैठी हुई देखना गौर ने मर्यादा के विरुद्ध समझा।

शिवसुन्दरी इस असभ्य के पास से लड़कियों को ले जाना चाहती थी, इसी समय परेश ने उसकी ओर देख कर कहा—इनका नाम गौरमोहन है, ये मेरे मित्र कृष्णदयाल बाबू के लड़के हैं।

तब गौर ने उनकी ओर मुँह करके प्रणाम किया। यद्यपि विनय के मुँह से प्रसंगवश सुशीला ने गौरमोहन की बात पहले ही सुनली थी तो भी इस बात का उसे विश्वास न हुआ कि यह आगत व्यक्ति विनय का मित्र होगा। गौरमोहन का वेष देखते ही सुशीला को उस पर घृणा की बुद्धि उत्पन्न हुई। अँगरेज़ी पढ़े-लिखे किसी मनुष्य में बनावटी हिन्दूपन देख कर उसे सह्य कर सकने का संस्कार या सहिष्णुता सुशीला में न थी।

परेश बाबू ने गौर से अपने बाल्यसखा कृष्णदयाल का कुशल समाचार ज्ञात किया। फिर अपनी छात्रावस्था की बात स्मरण कर बोले—उस समय कालेज में हम दोनों एक मत के थे। दोनों मनमौजी थे। हम लोग आचार व्यवहार कुछ न मानते थे—होटल में बैठ कर भर पेट खाना ही एक कर्त्तव्य कर्म समझते थे। दोनों कई दिन साँझ को गोलदिग्घी में बैठ कर मुसलमान की दूकान का कबाब खाते थे, और फिर हिन्दूसमाज का सुधार करने के उपायों की समालोचना आधी रात तक किया करते थे।

शिवसुन्दरी ने पूछा—अब वे क्या करते हैं ?

गौरमोहन—अब वे हिन्दू आचार का पालन करते हैं।

हिन्दू आचार का नाम सुनते ही शिवसुन्दरी का सर्वाङ्ग क्रोध से जल उठा। वह बोली—उन्हें लज्जा नहीं आती?

गौर ने मुसकुरा कर कहा—लज्जा करना दुर्बल स्वभाव का लक्षण है। कोई कोई बाप का परिचय देने ही में लजाते हैं।

शिव०—पहले तो वे ब्राह्म थे न ?

गौर०—मैं भी तो किसी समय ब्राह्म था।

शिव०—अब आप साकार उपासना में विश्वास करते हैं ?

गौर०—मेरे मन में ऐसा कुसंस्कार नहीं है कि मैं साकार पर बिना कारण अश्रद्धा करूँ। आकार की निन्दा करने से क्या वह छोटा हो जायगा ? आकार के रहस्य का भेद कौन पा सका है ?

वृद्ध के प्रति भक्ति न करके बातें कहता ही जा रहा था, इससे विनय के मन में बड़ी चोट लग रही थी ।

सुशीला ने कई प्याले चाय बना करके परेश बाबू के मुँह की ओर देखा । किससे वह चाय पीने का अनुरोध करे और किससे न करे, इस दुबिधा में उसका मन पड़ा था । शिवसुन्दरी गौर के मुँह की ओर देख कर सहसा बोल उठी— आप तो यह सब कुछ न खायँगे ?

गौर—जी नहीं ।

शिवसुन्दरी—क्यों ? जाति जायगी ?

गौर—जी हाँ ।

शिव०—आप जाति पाँति मानते हैं ?

गौर—जाति क्या मेरी बनाई है जो उसे न मानूँगा ? जब समाज को मानता हूँ तब जाति को भी ज़रूर मानता हूँ ।

शिवसुन्दरी—तो समाज की सभी बातें माननी ही होती हैं ?

गौर—जी हाँ, न मानना समाज तोड़ना हुआ ।

शिव०—समाज तोड़ने में दोष ही क्या है ?

गौर—जिस डाल पर सब लोग बैठे हों, उस को काट गिराने ही में क्या दोष है ?

सुशीला मन ही मन अत्यन्त क्रुद्ध कर बोली—माँ, झूठ-मूठ इन के साथ क्यों बहस कर रही हो ? ये हम लोगों के हाथ का छुआ न खायँगे ।

गौरमोहन ने सुशीला के मुँह की ओर एक बार देखा ।

सुशीला ने विनय की ओर देख कर कुछ सन्देह-मिले स्वर में कहा—क्या आप—

विनय कभी चाय न पीता था। मुसलमान की बनाई पाव-रोटी और बिस्कुट खाना भी उसने, बहुत दिन हुए, छोड़ दिया है; किन्तु आज सुशीला के हाथ की चाय कैसे न पियेगा। उसने सिर हिला कर कहा—हाँ, क्यों न पिऊँगा ! यह कह कर उसने गौरमोहन के मुँह की ओर देखा। गौरमोहन के होठों में कुछ व्यङ्ग की हँसी दिखाई दी। विनय को चाय पीने में कुछ अच्छी न लगी। किन्तु उसने पीना न छोड़ा। शिवसुन्दरी ने मन में कहा—अहा, यह विनय लड़का बड़ा अच्छा है।

तब वह गौरमोहन की ओर से मुँह फेर कर विनय की ओर सस्नेह दृष्टि से देखने लगी। यह देख कर परेश धीरे धीरे अपनी कुरसी खिसका कर गौर के पास ला उसके साथ मीठे स्वर में बात चीत करने लगे।

इसी समय सड़क से चीना-बादाम वाला गरम चीना-बादाम की आवाज़ लगाता हुआ जा रहा था। चीना-बादाम का नाम सुनते ही लीलावती ताली बजाती हुई उठ खड़ी हुई और बोली—सुधीर भैया, चीना-बादाम वाले को पुकारो।

यह सुनते ही छत के बरामदे में जा कर सतीश चीना-बादाम वाले को पुकारने लगा।

इतने में एक सज्जन और वहाँ आकर उपस्थित हुए। सब ने हरि बाबू कह कर उनसे संभाषण किया पर उनका असल

नाम हरिश्चन्द्र था। समाज में इनकी विद्वत्ता और बुद्धिमत्ता के कारण इनका विशेष यश फैला है। यद्यपि स्पष्ट रूप से कोई यह बात नहीं कहता था, तथापि इन्हीं के साथ सुशीला के ब्याह होने की भावना लोगों के मन में न जाने क्यों बँधी थी। हरि बाबू का हृदय सुशीला के प्रति आकृष्ट था, इसमें किसी को कुछ सन्देह नहीं था और इसीसे सखियाँ सुशीला के साथ हँसी किया करती थीं।

हरिश्चन्द्र स्कूल में मास्टरी करते हैं। शिवसुन्दरी उन्हें स्कूल का मास्टर जान कर उनपर कुछ विशेष श्रद्धा नहीं रखती। वह अपनी चेष्टा से बराबर दिखाती कि हरि बाबू जो उसकी किसी लड़की पर अनुराग प्रकट करने का साहस नहीं करते, सो यह अच्छा ही करते हैं। उसके भावी जामाता लोग डिपुटी मैजिस्ट्रेटी लक्ष्यवेधरूपी अत्यन्त कठिन प्रण से बँधे हैं अर्थात् वह अपने जमाई के योग्य उसीको चुनेगी जो कमसे कम डिपुटी होने की हैसियत रखता होगा।

सुशीला को हरिश्चन्द्र के आगे एक प्याला चाय रखते देख लावण्य दूर से उसके मुँह की ओर देख कुछ मुँह टेढ़ा करके हँसी। वह हँसी विनय से छिपी न रही। बहुत थोड़े समय में ही दो एक बातों में विनय की दृष्टि बड़ी तेज़ और सतर्क हो गई है। किसी वस्तु को देख कर उसके तत्वावधान में पहले वह इतना चतुर न था।

ये हरिश्चन्द्र और सुधीर इस घर की लड़कियों के साथ

बहुत दिनों से परिचित हैं और इस परिवार के साथ ऐसे मिल जुल गये हैं कि ये इन लड़कियों के बीच परस्पर इङ्गित के विषय हो पड़े हैं। यह देख कर विनय के हृदय में विधाता का अविचार गड़ने लगा।

इधर हरिश्चन्द्र के आगमन से सुशीला का मन कुछ आशान्वित हो उठा। गौरमोहन को कोई किसी तरह तर्क में हरा दे तो सुशीला का कलेजा ठंडा हो। अन्य समय हरिश्चन्द्र के मत-सम्बन्धी वाद-विवाद से वह कई दफ़े ख़फ़ा हो चुकी है किन्तु आज इन तर्क-वीर को देख कर उसने बड़ी ख़ुशी के साथ चाय और पावरोटी देकर उनका सत्कार किया।

परेश ने कहा—हरि बाबू, ये हमारे—

हरि—मैं इनको भली भाँति जानता हूँ। ये किसी समय हमारे ब्राह्मसमाज के बड़े उत्साही सभ्य थे।

यह कह कर और गौरमोहन के साथ कुछ गप शप न कर हरिश्चन्द्र ने चाय के प्याले की ओर मन लगाया।

उस समय दो एक इने गिने बंगाली सिविल सर्विस परीक्षा में उत्तीर्ण होकर इस देश में आये थे। सुधीर ने उन्हीं में से एक व्यक्ति की अभ्यर्थना की बात छेड़ी। हरि ने कहा—परीक्षा में बंगाली चाहे कितना ही पास करलें, किन्तु उनके द्वारा कोई काम न होगा।

कोई बंगाली मैजिस्ट्रेट या जज ज़िले का भार लेकर कभी

काम न चला सकेगा, इसको साबित करने के लिए हरिश्चन्द्र बंगालियों के चरित्र-सम्बन्धी नाना दोष और दुर्बलता की व्याख्या करने लगा ।

सुनते सुनते गौर की भौंहें चढ़ गईं, मुँह लाल हो गया । उसने अपने सिंह-नाद को यथासाध्य रोक कर कहा—यदि सत्य ही यह आपका मत है तो आप आराम से कुरसी पर बैठे बैठे पावरोटी किस मुँह से चबा रहे हैं ।

हरिश्चन्द्र ने भौंहें सिकोड़ कर कहा—तो आप क्या करने को कहते हैं ?

गौर—हो सके तो बंगालियों के चरित्रगत दोषों को दूर कीजिए, नहीं तो गले में फाँसी लगा कर मर जाइए । हमारी जाति के द्वारा कभी कुछ न होगा, यह बात क्या यों ही सहज कह देने की है ? यह बात कहते समय आपके गले में रोटी क्यों न अटक गई ?

हरिश्चन्द्र—सच बोलने में क्या डर है ?

गौर—आप क्रोध न करें, यदि यह बात आप यथार्थ में ही सच सच जानते तो इस प्रकार गर्वित भाव से न बोलते । आप हृदय से इस बात को झूठ जानते हुए भी किसी कारण-वश सच मान बैठे हैं, इसी से इतने शीघ्र यह बात आपके मुँह से निकल गई । हरि बाबू, झूठ पाप है, झूठी निन्दा और भी बड़ा पाप है; अपनी जाति की झूठी शिकायत से बढ़ कर तो शायद ही कोई पाप होगा ।

हरि क्रोध से अधीर हो उठा। गौर ने कहा—क्या आप ही एक अपनी समग्र जाति की अपेक्षा बड़े हैं? आप क्रोध करेंगे, और हम लोग आपके मुँह से अपने बाप-दादों की निन्दा सुनेंगे।

इसके बाद हरिश्चन्द्र को चुप हो बैठ रहना और भी कठिन हो गया। वह और भी बुलन्द आवाज़ से बंगालियों की निन्दा करने में प्रवृत्त होगया। उसने बंगाली समाज की अनेक प्रकार की कुप्रथाओं का वर्णन करके कहा कि इन कुप्रथाओं के रहते बंगाली जाति की उन्नति की कोई आशा नहीं।

गौर ने कहा—आप जिसे कुप्रथा कहते हैं वह केवल अँगरेज़ी किताब पढ़ कर कहते हैं, आप उस सम्बन्ध में स्वयं कुछ भी नहीं जानते। अँगरेज़ों की समस्त कुप्रथाओं की भी जब आप ठीक इसी तरह अवज्ञा करें तब आप इस सम्बन्ध में बात करें।

परेश बाबू ने इस प्रसंग की बातें बन्द कर देने की चेष्टा की, किन्तु क्रोध में भरा हरिश्चन्द्र निवृत्त न हुआ। इसी समय सूर्यास्त हो गया। पश्चिम आकाश में सर्वत्र लालिमा छा गई। चिड़ियों ने अपने घोंसलों का रास्ता लिया। इस जातीय समालोचना से विनय के मन में भाँति भाँति के बेसुरे तार बजने लगे। परेश अपनी सायंकालीन उपासना के लिए छत से उतर कर बाग़ के बीच एक पत्थर के बने चबूतरे पर जा बैठे।

शिवसुन्दरी का मन जैसे गौरमोहन से फिर गया था

वैसे ही वह हरिश्चन्द्र से भी कुछ विशेष प्रसन्न न थी। इन दोनों का वाद-प्रतिवाद जब उसे एकदम असह्य हो गया तब उसने पुकार कर कहा—चलो विनय बाबू, हम लोग उस कमरे में चलें।

शिवसुन्दरी का यह सस्नेह पक्षपात स्वीकार करके विनय को छत छोड़ कर उसका साथ देना पड़ा। शिवसुन्दरी ने अपनी लड़कियों को बुला लिया। सतीश शुष्क विवाद से उदास हो पहले ही कुछ चीना-बादाम लेकर मौला कुत्ते को साथ ले वहाँ से रफूचक्कर हो गया था।

अब शिवसुन्दरी विनय को अपनी बेटियों का गुण सुनाने लगी। लावण्य से कहा—बेटी उठो, तुम अपनी वह कापी ला कर विनय बाबू को दिखाओ तो।

घर के नये आगत व्यक्तियों को वह कापी दिखाने का लावण्य को अभ्यास सा हो गया था। किसी नये व्यक्ति के आते ही वह समझ जाती थी कि वह कापी दिखलानी होगी, बल्कि वह इसके लिए प्रतीक्षा करने लगती थी। आज तर्क की बातों में उलझ जाने से वह उदास हो गई थी।

विनय ने कापी खोल कर देखा, उसमें कवि मूर और लाँगफ़ेलो की अँगरेज़ी कविता लिखी थी। अक्षर खूब बना बना कर लिखे गये थे। कविताओं के शीर्षक और आरम्भ के अक्षर रोमन अक्षरों में लिखे गये थे।

यह लिपि देख कर विनय के मन में बड़ा ही आश्चर्य

हुआ । उन दिनों सूर की कविता को कापी में हाथ से लिख डालना स्त्रियों के लिए कम बहादुरी की बात न थी। विनय के मन को यथार्थ रूप से समाविष्ट देख शिवसुन्दरी ने अपनी मँझली बेटी ललिता से कहा—मेरी लक्ष्मी, बेटी ललिता, तुम्हारी वह कविता—

ललिता कठोर स्वर में बोल उठी—"नहीं माँ, यह मुझ से न होगा, मुझे ठीक ठीक याद भी तो नहीं है।" यह कह कर वह एक खिड़की के पास खड़ी हो सड़क की ओर देखने लगी।

शिवसुन्दरी ने विनय को समझा दिया, इसको सब कुछ याद है, किन्तु इसकी प्रकृति बड़ी गूढ़ है। अपने गुण को छिपाये रहती है। किसी के निकट अपनी विद्या का प्रकाश करना नहीं चाहती। यह कह कर उसने ललिता की विचित्र विद्या-बुद्धि के परिचय के प्रमाण स्वरूप दो एक घटनाएँ विस्तार-पूर्वक कह सुनाईं कि ललिता बचपन से ही ऐसी है। यह किसी के साथ बहुत बोलचाल नहीं करती। शोक के अवसर पर भी शायद किसी ने इसकी आँखों में आँसू न देखे होंगे। इस सम्बन्ध में पिता के साथ इसका सादृश्य बताया गया अर्थात् इस लड़की में यह गुण पिता के अनुरूप ही है।

अब लीला की बारी आई। उससे कुछ पढ़ने का अनुरोध करते ही वह पहले खूब ज़ोर से खिलखिला उठी, पीछे ग्रामोफ़ोन की तरह बिना कुछ अर्थ समझे "Twinkle-Twinkle little stars" कविता एक ही दम में पढ़ गई।

अब संगीत विद्या का परिचय देने का समय आया जान ललिता उस कमरे से बाहर हो गई।

बाहर की छत पर तब ख़ूब ज़ोर शोर का तर्क हो रहा था। हरिश्चन्द्र मारे क्रोध के तर्क छोड़ कर गाली देने पर उद्यत हो गया था। उसकी असहिष्णुता और क्रोधान्धता से लज्जित और क्रुद्ध हो कर सुशीला ने गौरमोहन का पक्ष ले लिया। यह भी हरिश्चन्द्र के लिए कुछ सान्त्वना या शान्तिदायक न हुआ।

सायंकालिक अन्धकार और सावन के बादलों से आकाश घिर गया। बेला-चमेली की मालाओं से सड़क को सुवासित करता हुआ फेरीवाला चला गया। सामने की सड़क पर मौलसिरी के पत्तों पर जुगनुएँ जगमगाने लगीं। पास के बाग़ीचेवाले पोखर पर गहरा अन्धकार छागया।

सन्ध्याकालिक ब्रह्मोपासना करके परेश फिर छत पर आ उपस्थित हुए। उनको देख कर गौर और हरिश्चन्द्र दोनों लज्जित हो चुप हुए। गौरमोहन उठ कर खड़ा हुआ और बोला—रात हो गई, अब मैं जाता हूँ।

विनय भी कमरे से निकल कर छत पर आया। परेश ने कहा—गौर बाबू, जब तुम्हारी इच्छा हो, यहाँ आया करो। कृष्णदयाल मेरे भाई के बराबर हैं। उनके साथ अब मेरा मत नहीं मिलता, भेट भी नहीं होती। पत्रव्यवहार भी बन्द है, किन्तु बाल्यकाल की मित्रता रक्त-मांस में मिल जाती है,

वह क्या कभी छूट सकती है ? कृष्ण बाबू के सम्बन्ध से तुम हमारे बड़े समीपी हो ।

परेश बाबू के शान्ति से भरे स्निग्ध स्वर से गौर का इतनी देर के तर्क से सन्तप्त हृदय मानो ठंडा हो गया । उसके हृदय की जलन बुझ गई । पहले आकर गौर ने परेश को कुछ विशेष श्रद्धा या भक्ति से अभिवादन न किया था । किन्तु जाते समय उसने सच्ची भक्ति के साथ उनको प्रणाम किया । चलते समय गौर ने सुशीला से कुछ भी न कहा । सुशीला ने, जो सामने खड़ी है, यह स्वीकार करना ही एक प्रकार की अशिष्टता समझी । विनय ने परेश को विनयपूर्वक प्रणाम करके सुशीला की ओर देखा और उसे नमस्कार करके कुछ लजाता हुआ झटपट गौरमोहन के पीछे हो लिया ।

हरिश्चन्द्र इस समय वहाँ न था । वह पहले ही वहाँ से टल कर कमरे के भीतर गया और टेबल के ऊपर से एक ब्रह्म संगीत की पोथी ले उसके पन्ने उलटाने लगा ।

विनय और गौर के चले जाने पर हरिश्चन्द्र फिर झट छत पर आया । उसने परेश बाबू से कहा—देखिए, सभी के साथ बहू-बेटियों को बातचीत करने देना मैं अच्छा नहीं समझता ।

सुशीला पहले ही से भीतर ही भीतर बहुत ख़फ़ा थी । इसीसे वह अपने मन को रोक न सकी, बोली—अगर बाबूजी इस नियम को मानते तब तो आपके साथ हम लोगों की बातचीत भी न हो सकती ।

हरि—बातचीत या भेंट मुलाक़ात अपने समाज के भीतर ही होना ठीक है।

परेश ने हँसकर कहा—आप पारिवारिक अन्तःपुर को और कुछ बड़ा करके एक सामाजिक अन्तःपुर बनाना चाहते हैं। किन्तु मैं समझता हूँ कि नाना मत के सज्जनों से लड़कियों का मिलना उचित ही है, इससे उनकी बुद्धि का अच्छा विकास होता है। इसमें बाधा देने से वे संसार के बहुतेरे ज्ञातव्य विषय नहीं जान सकतीं। इसमें भय या लज्जा का कोई कारण हम नहीं देखते।

हरि—भिन्न मत के लोगों के साथ बहू-बेटियाँ न मिलें, यह मैं नहीं कहता, किन्तु इन के साथ कैसा व्यवहार करना होता है, उस शिष्टता को तो ये लोग नहीं जानते।

परेश—नहीं, नहीं! यह क्या कहते हैं! आप जिसे भद्रता का अभाव कहते हैं, वह एक संकोचमात्र है। पराई बहू-बेटियों के साथ बातचीत करने में बहुत लोग सकुचते हैं। स्त्रियों के साथ हेलमेल किये बिना वह संकोच मिट नहीं सकता।

[११]

उस दिन गौरमोहन को तर्क में हरा कर सुशीला के सामने अपनी विजय-पताका उड़ाने की हरिश्चन्द्र को बड़ी इच्छा थी। शुरू में सुशीला ने भी इसकी आशा की थी।

किन्तु दैवयोग से ठीक इसका उलटा हुआ। धर्म-विश्वास और सामाजिक मत में सुशीला के साथ गौर का मेल न था, किन्तु स्वदेश के प्रति ममता और स्वजाति के लिए दुःख का अनुभव उसके लिए स्वाभाविक था। यद्यपि देश की बातों के विषय में वह कभी विशेष आलोचना नहीं करती थी तो भी उस दिन अपनी जाति की निन्दा सुन कर गौर जब एकाएक वज्रनाद कर उठा तब सुशीला के मन में उसके अनुकूल प्रतिध्वनि होने लगी। ऐसे ज़ोर से, ऐसे दृढ़ विश्वास के साथ, देश के सम्बन्ध में उसके आगे किसी ने आज तक ऐसी बात न कही थी।

इसके बाद जब हरिश्चन्द्र ने गौर और विनय के परोक्ष में सामान्य ईर्ष्या-वश उनपर अभद्रता का दोषारोपण किया तब भी सुशीला को इस अन्याय के विरुद्ध गौर और विनय का ही पक्ष लेना पड़ा।

इससे यह न समझना चाहिए कि गौर के विरुद्ध सुशीला के मन का विद्रोह एकदम शान्त हो गया। नहीं, गौर का गले पड़ा उद्धत हिन्दुत्व अब भी सुशीला के मन में आघात पहुँचा रहा था। वह एक प्रकार से यह समझ रही थी कि इस हिन्दूपन के भीतर अवश्य कुछ प्रतिकूलता का भाव है—यह साहजिक प्रशान्त नहीं है। यह अपने भक्ति-विश्वास में पर्याप्त नहीं है। यह दूसरे को दबाने के लिए सदा ही उग्र भाव से उद्यत रहता है।

उस दिन साँझ को सब बातों में, सब कामों में, भोजन

करने के समय, लीलावती से बात करते समय, सुशीला के मन में किसी तरह की एक वेदना कष्ट देने लगी। वह किसी तरह उसे दूर न कर सकी। काँटा किस जगह गड़ा है यह जानने पर काँटा निकाला जा सकता है। मन के काँटे को खोज निकालने के लिए वह रात को छत पर अकेली बैठी रही।

उसने अपने मन के अकारण ताप को उसी अन्धकार की निर्मल धारा से धो बहाने की चेष्टा की, किन्तु कोई फल न हुआ। अपने हृदय के एक अनिर्दिष्ट बोझ के लिए उसने रोना चाहा; किन्तु रुलाई न आई।

एक अपरिचित युवा माथे में तिलक लगाकर आया, या किसी ने उसे तर्क में हरा कर उसका गर्व न तोड़ा इसी लिए सुशीला इतनी देर तक खेद कर रही है। फिर उसने सोचा कि इससे बढ़कर हँसी की बात और क्या हो सकती है, इस लिए इस कारण को सर्वथा असंभव जान उसने मन से दूर कर दिया। तब उसे असल कारण याद हो आया और याद होते ही उसे बड़ी लज्जा हुई। आज तीन चार घंटे तक सुशीला उस युवक के सामने ही बैठी थी और बीच बीच में उसका पक्ष लेकर कुछ बोलती भी थी; परन्तु उस युवा ने एक बार भी उसकी ओर लक्ष्य न किया। जाते समय भी उसने सुशीला की ओर दृक्-पात न किया। इस कठोर उपेक्षा ने सुशीला के मन में गहरी चोट कर दी है, इसमें सन्देह नहीं। पराये घर की स्त्रियों के साथ मिलने-जुलने का अभ्यास न रहने से जो एक प्रकार

का संकोच उत्पन्न होता है उस संकोच का परिचय विनय के व्यवहार में पाया जाता है पर उस संकोच के भीतर कुछ नम्रता भी है । किन्तु गौर के आचरण में उस संकोच का चिह्न-मात्र भी न था। उसकी वह कठोर और प्रबल उदासीनता सह्य करना या उसको हँसी में उड़ा देना सुशीला के लिए आज क्यों ऐसा असंभव हो गया? इतनी बड़ी उपेक्षा के सामने भी उसने जो अपने को न रोक तर्क में योग दिया था, इसलिए अपनी वाचालता के कारण वह मरी जा रही थी। हरिश्चन्द्र के अयुक्त वाद से जब सुशीला एक बार अत्यन्त उत्तेजित हो उठी थी तब गौरमोहन ने उसकी ओर देखा था। उस दृष्टि में संकोच की गन्धमात्र न थी। किन्तु उस दृष्टि के भीतर क्या था यह भी जानना कठिन था। तब क्या वह मन ही मन कह रहा था—यह स्त्री बड़ी निर्लज्ज है अथवा इसको अभिमान कुछ कम नहीं है? पुरुषों के वाद-विवाद में यह बिना बुलाये योग देने आती है। अगर उसने ऐसा ही सोचा हो तो इसमें क्या आना जाना है? भले ही इसमें कुछ हानि-लाभ की बात न हो तो भी न मालूम सुशीला क्यों मन ही मन विशेष कष्ट का अनुभव करने लगी। इन सब बातों को मन से टाल देने के लिए उसने बड़ी चेष्टा की परन्तु किसी तरह वह टाल न सकी। गौर के ऊपर उसका क्रोध बढ़ने लगा। गौर को कुसंस्कार-ग्रस्त उद्धत युवा कह कर मन के सर्वतोभाव से उसने उसका निरादर करना चाहा; किन्तु उस कनक-

भूधराकार शरीर वज्र-कण्ठ पुरुष की उस निःसंकोच दृष्टि का स्मरण होते ही सुशीला मन ही मन सकुच गई। वह किसी तरह उस पुरुष-सिंह के आगे अपने गौरव की रक्षा न कर सकी।

इस प्रकार मन के साथ लड़ते-झगड़ते रात बहुत बीत गई। चिराग़ बुझाकर घर के सब लोग सोने गये। सदर दर्वाज़ा बन्द होने का शब्द सुन पड़ा। उससे ज्ञात हुआ कि दरवान ब्यालू कर के अब सोने को जा रहा है। इसी समय ललिता अपने रात के कपड़े पहिन कर छत पर आई। सुशीला से बिना कुछ कहे वह उसके पास से जा छत के एक कोने में रेलिंग पकड़ कर खड़ी हुई। सुशीला मन ही मन कुछ हँसी, वह समझ गई कि ललिता ने मुझ पर कोप किया है। ललिता के साथ आज उसके सोने की जो बात थी सो एकदम वह भूल गई। किन्तु भूल जाने की बात कहने से ललिता के निकट अपराध क्षमा नहीं हो सकता। क्योंकि भूल जाना ही उसके आगे सबसे बढ़ कर भारी दोष है। वह समय पर प्रतिज्ञा की बात याद दिला देने वाली लड़की नहीं। इतनी देर तक वह पत्थर की तरह कठोर होकर बिछौने पर पड़ी थी। जितना ही समय बीतता जाता था उतना ही उसका कोप बढ़ता जाता था। आख़िर जब क्रोध नितान्त असह्य होगया तब वह चारपाई से उठकर चुपचाप यह जनाने को आई कि मैं अब तक जाग रही हूँ।

सुशीला कुरसी से उठ धीरे धीरे ललिता के पास जाकर

उसके गले से लिपट गई और बोली—मेरी लक्ष्मी, बहिन ललिता, क्रोध न करो ।

ललिता ने उसका हाथ हटा कर कहा—नहीं, क्रोध क्यों करूँगी ? तुम बैठो न !

सुशीला ने उसका हाथ पकड़ कर खींचा और कहा—चलो बहिन, सोने चलें ।

ललिता कुछ उत्तर न दे चुप साधे खड़ी रही । आख़िर सुशीला उसको ज़बर्दस्ती खींच कर सोने के कमरे में ले गई ।

ललिता ने अनखा कर कहा—तुमने क्यों इतनी देर की ? जानती नहीं, ग्यारह बज गये । मैं बड़ी देर तक तुम्हारे आने की राह देखती रही । तुम न आई तब हार कर मैं उठी और छत पर गई । अब तो तुम सो रहोगी ।

सुशीला ने ललिता को अपनी छाती से लिपटा कर कहा—बहिन, आज मुझ से भारी अन्याय होगया । क्षमा करो ।

इस प्रकार सुशीला के अपराध स्वीकार करने पर ललिता के मन से क्रोध जाता रहा । वह एकदम विनीत होकर बोली—बड़ी बहिन, तुम इतनी देर तक अकेली बैठकर किसकी बात सोच रही थीं ? हरि बाबू की बात तो नहीं ?

सुशीला उसके गाल में धीरे से गुलचा मारकर बोली—दुर् !

हरि बाबू से ललिता की नहीं बनती थी, यहाँ तक कि उसको अन्य बहिनों की तरह हरि की बात छेड़कर सुशीला के साथ ठट्टा करना भी ललिता के लिए असाध्य था । हरि

बाबू सुशीला से ब्याह करना चाहता है, इस बात का स्मरण होने से भी उसे क्रोध हो आता था।

कुछ देर चुप रहकर ललिता फिर बोली—अच्छा, बहिन, विनय बाबू तो अच्छे जान पड़ते हैं?

सुशीला के मन का भाव जाँचने ही के अभिप्राय से शायद यह प्रश्न किया गया था।

सुशीला—हाँ, विनय बाबू अच्छे क्या, बड़े अच्छे हैं।

ललिता ने जिस आशा से यह पूछा था, वह पूर्ण रूप से फलित न हुई। तब उसने फिर कहा—अच्छा, कहो तो बहिन, गौरमोहन कैसा था? मेरे मन में तो वह अच्छा न लगा। उसका चेहरा और भेस विचित्र था। संसार के किसी पदार्थ को भी वह जी में नहीं लाता था। तुम्हें वह कैसा जान पड़ा?

सुशीला—उसके रोम रोम में हिन्दूपन भरा था।

ललिता—नहीं, नहीं, हमारे मौसा महाशय भी तो बड़े भारी हिन्दू हैं परन्तु उनकी चाल और ही प्रकार की है। इसकी चाल कैसी है यह मैं न जान सकी।

सुशीला ने हँस कर कहा—"कैसी ही हो!" यह कहते ही उसके ऊँचे चमकीले माथे पर किये हुए तिलक का स्मरण कर सुशीला को क्रोध हुआ। क्रोध करने का कारण यही था कि इस तिलक के द्वारा गौर ने माना अपने माथे पर बड़े बड़े अक्षरों में यह लिख रक्खा है कि मैं तुम लोगों से अलग हूँ।

यदि उस विभिन्न भाव के प्रचण्ड अभिमान को सुशीला मिट्टी में मिला सकती तभी उसके अङ्ग की ज्वाला मिटती।

धीरे धीरे निद्रा देवी ने दोनों को धर दबाया। आलोचना बन्द हुई। दोनों सो गईं। जब रात के दो बज गये तब सुशीला ने जागकर देखा, बाहर खूब पानी बरस रहा है। बीच बीच में उसकी मसहरी से होकर बिजली की छटा चमक जाती है। घर के कोने में जो चिराग़ रक्खा था वह बुझ गया। उस रात के सन्नाटे, गाढ़े अन्धकार और अविश्राम वृष्टि के झर् झर् शब्द से सुशीला के मन में एक प्रकार की वेदना बोध होने लगी। उसने कभी इस करवट, और कभी उस करवट होकर सोने की चेष्टा की। पास ही ललिता को गाढ़ निद्रा में निमग्न देख उसे ईर्ष्या हुई, पर किसी तरह उसको नींद न आई। आख़िर वह रूठ कर बिछौने से उठी और बाहर आई। खुली खिड़की के पास खड़ी हो कर सामने छत की ओर देखने लगी। बीच बीच में हवा के झोंके से पानी के छींटे उसके बदन पर पड़ रहे थे। घूम फिर कर फिर वही सन्ध्या समय की सब बातें उसके मन में एक एक कर आने लगीं। सूर्यास्त समय के राग से रञ्जित गौरमोहन का चमकता हुआ चेहरा स्पष्ट चित्र की भाँति उसके स्मृति-पथ पर प्रकट हो गया। गौरमोहन का कण्ठ स्वर उसे स्पष्ट सुनाई देने लगा—"आप जिन्हें अशिक्षित समझते हैं मैं उन्हीं के दल में हूँ। आप जिसे कुसंस्कार कहते हैं, मैं उसी को संस्कार कहता हूँ।

जब तक आप देश को प्रिय न समझेंगे, देश के लोगों के साथ एक जगह आकर खड़े न होंगे, जब तक उनके दुःख में सहानुभूति प्रकट न करेंगे तब तक आपके मुँह से देश की निन्दा का मैं एक अक्षर भी न सुन सकूँगा।" इसके उत्तर में हरि बाबू ने क्या कहा? उसने कहा—"ऐसा करने से देश का सुधार कैसे होगा?" गौर ने गरज कर कहा—"सुधार! सुधार दूर की बात है। सुधार से भी बढ़ कर स्वदेश-प्रेम है—स्वदेशी वस्तुओं पर श्रद्धा है। जब हम लोगों का एक मत होगा, एक विचार होगा तब समाज का सुधार आप ही आप हो जायगा। आप तो अलग होकर देश को अनेक खण्डों में बाँटना चाहते हैं। इससे देश का सुधार होना कब संभव है। आप कहते हैं, देश के लोग कुसंस्कार से जकड़े हैं अतएव हम सुसंस्कारी दल वाले अलग हो रहेंगे। मैं यह कहता हूँ कि मैं किसी की अपेक्षा श्रेष्ठ होकर किसी से अलग न हूँगा, यह मेरी बड़ी इच्छा है। इसके बाद एक होजाने पर कौन संस्कार रहेगा और कौन संस्कार न रहेगा, यह मेरा देश जाने या देश के जो विधाता हैं वे जानें।" हरि ने कहा—"देश में ऐसी कुप्रथा और कुसंस्कार छाया है जो एक होने नहीं देता।" गौर ने कहा—"यदि आप यह सोचें कि पहले उन सब प्रथाओं और संस्कारों को एक एक कर दूर कर लेंगे तब देश एक होगा, तो यह आप की समझ वैसी ही है जैसे कोई समुद्र को उलीच कर उस पार जाना चाहे। 'अपमान और अहंकार

को दूर कर के नम्र होकर सब को अपना सा समझना' इस सर्वप्रियता के सामने सैकड़ों त्रुटियाँ और अनैक्यताएँ झख मारेंगी। सभी देशों के समाजों में कुछ न कुछ त्रुटि और अपूर्णता अवश्य है किन्तु देश के लोग जब तक स्वजाति के प्रेम-सूत्र में बँधे रहते हैं तब तक वे त्रुटियाँ कुछ विशेष हानि नहीं पहुँचा सकतीं। सड़ाने का कारण हवा में है। जीवित दशा में हम उससे बचे रहते हैं किन्तु मरते ही सड़ जाते हैं। यदि आप में स्वदेशानुराग नहीं है तो आप से देश की त्रुटियों का संशोधन होना कदापि संभव नहीं। इस प्रकार समाज से विरुद्ध हो आप संशोधन करना चाहेंगे तो यह बात हम लोग सह्य न करेंगे, चाहे आप लोग हों या पादरी हों।"

हरि ने कहा—"क्यों न कीजिएगा?" गौर ने कहा—"न करने का कारण है—माँ बाप की नसीहत सह्य की जाती है किन्तु पहरे वाले नौकर की नसीहत में फल की अपेक्षा अपमान बहुत बढ़ कर है। वैसा संशोधन स्वीकार करने में मनुष्यत्व नष्ट होता है। पहले आप आत्मीय हो लें पीछे संशोधक हों, नहीं तो आप के मुँह की भली बात से भी हमारा अनिष्ट ही होगा।"

इस प्रकार गौर और हरिश्चन्द्र के बीच जो बातें हुई थीं वे एक एक कर सब सुशीला के मन में आने लगीं। और इस के साथ साथ उसे एक अनिर्दिष्ट दुःख का अनुभव भी होने लगा। थक कर सुशीला बिछौने पर लौट आई और इन चिन्ताओं को मन से दूर कर सोने की चेष्टा करने लगी पर उसे नींद न आई।

[१२]

विनय और गौरमोहन जब परेश बाबू के घर से निकल कर सड़क पर आये तब विनय ने कहा—गौर भैया, ज़रा धीरे धीरे चलो, तुम्हारे पैर मेरी अपेक्षा बहुत बड़े बड़े हैं—अपनी चाल कुछ धीमी न करोगे तो मैं तुम्हारे साथ चल न सकूँगा। कुछ ही दूर में हाँफने लगूँगा।

गौर—मैं अकेला ही जाना चाहता हूँ। आज बहुत बातें सोचनी हैं।—यह कह कर वह अपनी स्वाभाविक शीघ्र गति से तीर की तरह निकल गया।

विनय के मन में बड़ी चोट लगी। उसने आज गौर-मोहन के विरुद्ध विद्रोह कर के अपना नियम भङ्ग किया है। इस सम्बन्ध में वह गौरमोहन से तिरस्कृत होने पर प्रसन्न होता। कुछ वर्षा हो जाने पर अनेक दिनों की बन्धुता-रूपी आकाश से उमस निकल जाती।

गौर जो विनय का साथ छोड़ कर क्रोध से चला गया सो विनय ने इस क्रोध को अयुक्त नहीं समझा। इन दोनों मित्रों के बहुत दिनों के सम्बन्ध में आज एक सच्चा व्याघात उपस्थित हुआ है।

बरसात की निःशब्द रात के अन्धकार को कँपा कर मेघ रह रह कर गरज उठता था। विनय के मन में एक भारी बोझ प्रतीत होने लगा। उसे जान पड़ा, मेरा जीवन बहुत

दिनों से जिस मार्ग का आश्रयण किये चला आ रहा था आज उसे छोड़ उसने एक भिन्न पथ का अवलम्बन किया है। इस अन्धकार के भीतर आज गौर किधर गया और वह किधर चला!

दूसरे दिन सबेरे उठने पर उस का मन हलका हो गया। रात में उसने कल्पना से अपने मन की वेदना को व्यर्थ ही बहुत बढ़ा लिया था। सबेरे जब वह सोकर उठा तब उसको गौरमोहन के साथ मित्रता और परेश के परिवार के साथ बातचीत करना परस्पर-विरुद्ध कार्य न मालूम हुआ। बात कुछ ऐसी शोचनीय न थी, यह समझ कर कल रात की मनोवेदना पर आज विनय को बड़ी हँसी आई।

विनय कन्धे पर एक डुपट्टा रख कर लम्बी डग से गौरमोहन के घर आ पहुँचा। गौर उस समय नीचे के कमरे में बैठा समाचार-पत्र पढ़ रहा था। विनय जब सड़क से आ रहा था तब गौर ने खिड़की से उसे आते देख लिया था। आज विनय के आने पर भी अख़बार से उस की दृष्टि ऊपर को न उठी। विनय ने घर में आते ही बिना कुछ कहे-सुने झट गौर के हाथ से अख़बार छीन लिया।

गौर ने कहा—तुम ने भूल की, शायद मुझे पहचाना नहीं। मैं गौरमोहन—एक कुसंस्कार-भरा हिन्दू हूँ।

विनय—शायद तुम्हीं भूल कर रहे हो। मैं श्रीयुक्त विनयभूषण, उक्त गौरमोहन बाबू का कुसंस्कार से ढँका एक लघु मित्र हूँ।

गौर—किन्तु गौरमोहन ऐसा निर्लज्ज है कि वह अपने कुसंस्कार के लिए किसी के आगे कभी शरमाता नहीं।

विनय—विनय भी ठीक वैसा ही है। फ़र्क़ कुछ है तो इतना ही कि वह अपने संस्कार को लेकर किसी पर आक्रमण करने नहीं जाता।

देखते ही देखते दोनों में ख़ूब शास्त्रार्थ छिड़ गया। महल्ले भर के लोग जान गये कि आज गौर के साथ विनय का सामना हुआ है।

गौर ने कहा—तुम जो परेश बाबू के घर जाते-आते हो सो मुझ से उसे क़बूल न करने की क्या ज़रूरत थी?

विनय—जब मैं उन के घर जाता ही न था तब स्वीकार कैसे करलेता? क़बूल न करने का यही कारण है। इतने दिनों में कल पहले-पहल ही मैं उन के घर गया था।

गौर—मैं जहाँ तक समझता हूँ, तुम अभिमन्यु की तरह केवल प्रवेश करने का ही मार्ग जानते हो, निकलने का रास्ता नहीं जानते।

विनय—यह हो सकता है। शायद यह मेरा जन्म ही का स्वभाव है। मैं जिसपर श्रद्धा करता हूँ या जिसे प्यार करता हूँ उसे मैं नहीं छोड़ सकता। मेरे इस स्वभाव का परिचय तुम पा ही चुके हो।

गौर—तो अब से तुम्हारा वहाँ बराबर आना-जाना होगा?

विनय—मैं ही अकेला वहाँ जाया-आया करूँगा, ऐसी

कुछ बात नहीं। तुम में भी तो चलने की शक्ति है, तुम स्थावर पदार्थ तो हो नहीं!

गौर—मैं जाऊँगा तो आऊँगा भी। किन्तु तुम्हारा जो लक्षण देखा, उससे तुम अपने को गये ही समझो! अच्छा यह तो बताओ, गरम चाय कैसी लगी?

विनय—कुछ फीक़ी।

गौर—तब फिर?

विनय—न पीना उस की अपेक्षा और फीका लगता।

गौर—उस से समाज का पालन हुआ या केवल शिष्टता की रक्षा?

विनय—सब समय में नहीं। किन्तु देखो, गौर बाबू, समाज के साथ जहाँ हृदय का भाव नहीं मिलता, वहाँ मेरे लिए—

गौरमोहन ने अधीर होकर विनय की बात बीच ही में काट दी। उसने गरज कर कहा—तुम हृदय की बात क्या लाते हो? समाज को तुम तुच्छ दृष्टि से देखते हो, इसी लिए बात बात में तुम्हारे हृदय का भाव नहीं मिलता। किन्तु समाज को आघात देने से उसकी वेदना कहाँ तक जा पहुँचेगी, यदि इसका अनुभव तुम करते तो अपने हृदय की ऐसी जघन्य बात कहने में तुम्हें ज़रूर लज्जा होती। परेश बाबू की लड़कियों के मन में किञ्चित् चोट पहुँचाने में तुम्हें बड़ा कष्ट मालूम होता है, किन्तु जिस व्यवहार से समस्त देश को चोट लगेगी उसका तुम ख़याल नहीं करते।

विनय—अच्छा, तो मैं तुमसे सच्ची बात कहता हूँ। अगर एक प्याला चाय पीने से समस्त देश को चोट पहुँचे तो उस चोट से देश का उपकार भी होगा। उसको बचा कर चलने से देश को अत्यन्त दुर्बल और बाबू बनाना होगा।

गौर—हाँ महाशय, मैं भी इतना समझता हूँ। मुझे एक दम इतना गँवार मत समझो। किन्तु वह सब अब की बात नहीं है। रोगी लड़का जब दवा खाना नहीं चाहता तब माँ, नीरोग रहने पर भी, स्वयं औषध खाकर उसे जताना चाहती है कि मेरी और तुम्हारी एक ही अवस्था है। यह युक्ति की बात न हुई, यह हुई प्रेम की बात। यह प्रेम न रहने पर कितनी ही युक्तियाँ क्यों न हों, लड़के के साथ माता का मेल न होगा। इससे काम भी बिगड़ सकता है। मैं चाय के प्याले के विषय में विवाद नहीं करता, किन्तु देश से अलग रहना मैं किसी तरह सह्य नहीं कर सकता। चाय न पीना इसकी अपेक्षा बहुत सहज है। परेश बाबू की लड़कियों के मन में कष्ट पहुँचाना उसकी अपेक्षा और भी बहुत सामान्य है। समस्त देश के साथ एकात्म हो कर रहना ही हम लोगों की वर्तमान अवस्था में सबकी अपेक्षा एक प्रधान काम है। जब समस्त देश मिल कर एक हो जायगा तब चाय पिओगे या न पिओगे—इसकी मीमांसा दो बातों में होजायगी।

विनय—तब तो मुझे चाय का दूसरा प्याला पीने में बहुत विलम्ब है।

गौर—नहीं, बहुत विलम्ब करने की ज़रूरत नहीं। किन्तु, विनय, एक मुझी को—अकेले मुझी को क्यों, हिन्दू समाज के अनेक अप्रिय पदार्थों के साथ साथ मुझे भी छोड़ देने का समय आ गया है। नहीं तो परेश बाबू की लड़कियों के मन में चोट जो लगेगी।

इसी समय अविनाश वहाँ आ पहुँचा। वह गौरमोहन का शिष्य था। गौर के मुँह से वह जो कुछ सुनता था, उसे वह अपनी बुद्धि के द्वारा संक्षिप्त और अपनी भाषा के द्वारा विकृत करके चारों ओर लोगों में कहता फिरता था। जो लोग गौरमोहन की बात कुछ भी न समझ सकते थे, वे अविनाश की बात मज़े में समझते और उसकी प्रशंसा करते थे।

विनय के साथ अविनाश का एक अत्यन्त स्पर्धाभाव रहता था। इसीसे वह सुयोग पाते ही विनय के साथ मूर्ख की भाँति विवाद करने लग जाता था। उसकी मूर्खता पर विनय घबरा उठता था। तब गौरमोहन अविनाश का तर्क-वाद अपने ऊपर ले विनय के साथ वाग्-युद्ध में प्रवृत्त होता था। अविनाश यही समझता था कि मानो मेरी युक्ति गौरमोहन के मुँह से निकल रही है।

बीच में अविनाश के आ पड़ने से विनय को गौरमोहन के साथ वार्तालाप में बाधा हुई। इससे वह वहाँ से उठकर कोठे पर गया। आनन्दो अपने भाण्डार-घर के सामने के उसारे में बैठकर तरकारी बना रही थी।

आनन्दी ने कहा—बड़ी देर से तुम्हारे गले की आवाज़ सुन रही थी। आज इतने सबेरे आगये? जल-पान करके आये हो न?

दूसरा दिन होता तो विनय ज़रूर कहता कि नहीं, कुछ खाकर नहीं आया हूँ। और आनन्दी के सामने बैठकर उसके हाथ का दिया कुछ न कुछ अवश्य खाता। किन्तु आज उसने कहा—नहीं माँ, कुछ न खाऊँगा। खाकर घूमने निकला हूँ। आज विनय ने गौर के पास अपराध बढ़ाने का साहस न किया। परेश बाबू के साथ उसने जो सम्पर्क किया है, उसके लिए गौर ने अभी तक उसे क्षमा प्रदान नहीं किया। वह मुझे अब अपने पास से दूर रखना चाहता है, यह सोच कर विनय मन ही मन कुछ क्लेश पा रहा था। इसलिए जी बहलाने की इच्छा से वह छुरी निकाल कर आलू छीलने को बैठ गया। पन्द्रह बीस मिनट के बाद नीचे जाकर उसने देखा, अविनाश को लेकर गौर कहीं बाहर चला गया है। विनय कुछ देर तक चुपचाप गौर के कमरे में बैठा रहा। इसके बाद समाचार-पत्र हाथ में ले निरपेक्ष भाव से विज्ञापन देखने लगा। फिर वह लम्बी साँस ले वहाँ से बाहर होगया।

[१३]

दो-पहर को भोजन करने के पीछे विनय का मन फिर

गौरमोहन के पास जाने को चञ्चल हो उठा। गौर के समीप अपनी नम्रता दिखाने में विनय कभी संकोच नहीं करता था। किन्तु अपना अभिमान न रहने पर भी उसके लिए मित्रता के अभिमान का हटाना कठिन था। परेश बाबू के यहाँ पकड़ा जाने पर विनय ने गौर के प्रति अपनी इतने दिनों की निष्ठा को कुछ मलिन सा कर दिया था, इसलिए वह आप ही अपने अपराध की बात सोच रहा था, परन्तु उसके मन में यह आशा थी कि इस अपराध के कारण गौरमोहन मेरा केवल मीठा परिहास और भर्त्सना करेगा। परन्तु यह बात उसकी कल्पना में भी न आई थी कि इतने छोटे अपराध में जो वह मुझे इस प्रकार अलग कर देने की चेष्टा करेगा। घर से कुछ दूर जा कर विनय फिर लौट आया। मित्रता में असमञ्जस न हो पड़े, इस भय से वह गौर के घर न जा सका।

पढ़ने के कमरे में आकर विनय गौरमोहन को एक पत्र लिखने के लिए काग़ज़-क़लम लेकर बैठा। क़लम अच्छी थी, पर तो भी उसे ख़राब समझ कर छुरी ले धीरे धीरे उसे बनाने लगा। ऐसे समय में नीचे से किसी ने "विनय" कहकर पुकारा। विनय क़लम फेंक झटपट नीचे उतरा और बोला—महिम भाई, आइए, ऊपर आइए।

महिम ऊपर के कमरे में आकर विनय की चारपाई पर बैठे और घर के असबाब को अच्छी तरह देख कर बोले—विनय बाबू, यह नहीं कि तुम्हारे घर को मैं

न पहचानता होऊँ। बीच बीच में तुम्हारी ख़बर लेने की इच्छा भी करता हूँ किन्तु मैं जानता हूँ कि तुम आजकल के नवयुवक विद्यार्थियों में अच्छे हो, तुम्हारे यहाँ तम्बाकू पीने को न मिलेगी, इसी से बिना विशेष प्रयोजन के—

विनय को कुछ आतुर होते देख महिम ने कहा—तुम चाहते हो कि अभी बाज़ार से नया हुक्का मोल ला कर मुझे तम्बाकू पिलाओगे? नहीं, इस की ज़रूरत नहीं। तम्बाकू न होने से कोई हर्ज नहीं, परन्तु नये हुक्के पर अनाड़ी के हाथ की भरी तम्बाकू भी मेरे पसन्द की न होगी।

यह कह कर महिम ने सिरहाने से पंखा लेकर झलते झलते कहा—आज रविवार के दिन का सोना छोड़ कर जो मैं तुम्हारे पास आया हूँ सो इसका एक कारण है। मेरा एक उपकार तुम को करना ही होगा।

विनय ने पूछा—कैसा उपकार? सुनूँ भी तो।

महिम—पहले वचन दो, तब कहूँगा।

विनय—यदि मेरे द्वारा संभव हो तब तो?

महिम—यह काम एक तुम्हीं से हो सकेगा। और कुछ नहीं, तुम एक बार सिर्फ़ "हाँ" कह दो।

विनय—आप इस तरह क्यों कह रहे हैं? आप तो जानते ही हैं, मैं आप के घर का आदमी हूँ। संभव होने पर आप का काम न करूँगा, यह हो नहीं सकता।

महिम ने पाकेट से पान का डिब्बा निकाल कर उस में से

दो बीड़े विनय को दिये और बाक़ी अपने मुह में रख लिये। फिर उन्होंने पान चबाते चबाते कहा—मेरी शशिमुखी को तो तुम जानते ही हो। देखने-सुनने में वह उतनी बुरी नहीं है अर्थात् वह बाप की तरह नहीं है। उसकी अवस्था लगभग दस वर्ष की होगी। अब वह ब्याहने योग्य हुई। किस अयोग्य के हाथ वह पड़ेगी, इस चिन्ता से मुझे रात को नींद नहीं आती।

विनय—आप घबराते क्यों हैं, अभी बहुत समय है।

महिम—तुम्हारी अपनी लड़की होती तो समझते, मैं क्यों इतना घबरा रहा हूँ। वर्ष के साथ उम्र बढ़ती जाती है। वह किसी के रोके नहीं रुक सकती। परन्तु वर तो आप ही आप न आवेगा, उसके लिए खोज ढूँढ़ करनी होगी। किसी काम में जितना ही समय जाता है उतना ही जी व्याकुल होता है। मैं तुम्हारे आश्वासन से दो चार दिन धैर्य धर सकता हूँ।

विनय—मेरी तो बहुत लोगों से जान-पहचान नहीं है। कलकत्ते शहर भर में आप का घर छोड़ मैं और का घर प्राय: जानता भी नहीं। तो भी मैं सत्पात्र वर की खोज करूँगा।

महिम—शशिमुखी का शील-स्वभाव तो तुम जानते ही हो।

विनय—जी हाँ, जानता क्यों नहीं। उस को बचपन से ही देखता आता हूँ, वह तो लक्ष्मी है।

महिम—तो और बहुत दूर खोजने की ज़रूरत क्या है? मैं वह लड़की तुम्हारे ही हाथ सौंपूँगा।

विनय ने चौंक कर कहा—यह आप क्या कहते हैं?

महिम—क्यों, मैं कुछ अनुचित तो कहता ही नहीं। तुम कुल में हम से अवश्य बड़े हो; किन्तु इतना पढ़ लिख कर जो तुम पुरानी लीक पर चलोगे, कुल को मानोगे, तो पढ़ने का फल क्या हुआ?

विनय—नहीं नहीं, कुल की बात जाने दीजिए, किन्तु उम्र में तो वह—

महिम—क्या कहते हो, शशी की उम्र कम है! हिन्दू के घर की लड़की तो मेम साहबा नहीं है। समाज को एक दम उड़ा देने से तो काम न चलेगा।

महिम सहज ही छोड़नेवाले पुरुष न थे। विनय को उन्हों ने चञ्चल कर दिया। आखिर विनय ने कहा—मुझ को कुछ विचारने का समय दीजिए।

महिम—मैंने कुछ आज की रात में ही ब्याह का मुहूर्त स्थिर नहीं किया है।

विनय—तो भी घर के लोगों की राय—

महिम—हाँ, यह सही है। उन लोगों से पूछ कर ही कोई काम करना उचित है। तुम्हारे चाचा महाशय जब वर्तमान हैं तब बिना उनकी सलाह के कुछ हो नहीं सकता।

यह कह कर महिम पान का डिब्बा निःशेष कर ऐसा भाव दिखा कर चले गये मानो बात पक्की सी हो गई है।

कुछ दिन पूर्व आनन्दी ने एक बार शशिमुखी के साथ विनय के ब्याह का प्रस्ताव मामूली तौर पर उपस्थित किया था। किन्तु विनय ने उस पर ध्यान न दिया था। आज भी यह प्रस्ताव कुछ विशेष संगत नहीं जँचा तो भी इस बात ने अब की बार उसके मन में कुछ जगह करली। विनय सोचने लगा, यह विवाह होने से सम्बन्ध-सूत्र में बँध कर गौर कभी मुझको अलग न कर सकेगा। 'विवाह का सम्बन्ध हृदय के आवेग के साथ जोड़ना अँगरेज़ीपन है' यह कह कर वह इतने दिन से परिहास करता आया है। वास्तव में विवाह संसार-धर्म में परिगणित है इस लिए शशिमुखी के साथ ब्याह करना उसे असंभव न जान पड़ा। वह इतने ही से ख़ुश हुआ कि महिम का यह प्रस्ताव लेकर गोरा के साथ परामर्श करने का एक उपलक्ष मिल गया है। विनय की इच्छा हुई कि गौर इस प्रस्ताव को लेकर मुझ से कुछ कहे-सुने। विनय को इस में सन्देह न था कि यदि महिम को सहज ही सम्मति न दीजायगी तो वे गौर के द्वारा मुझसे अनुरोध कराने की चेष्टा करेंगे।

इन बातों की आलोचना करने से विनय के मन का विषाद मिट गया। तब वह गौरमोहन के घर जाने के लिए कपड़े पहिन घर से बाहर निकला। कुछ ही दूर जाते उसे

पीछे से सुन पड़ा, "विनय बाबू!" पीछे फिर कर उसने देखा, सतीश पुकार रहा है।

सतीश को साथ ले विनय फिर अपने घर को लौट आया। सतीश ने जेब से रुमाल की पोटली निकाल कर कहा—बतलाइए तो इसमें क्या है?

"बाघ का मुण्ड," "बिलाई का बच्चा" आदि अनेक असंभव वस्तुओं का नाम लेकर विनय ने सतीश को खिजा डाला। तब सतीश ने उस की नासमझी पर गर्व कर के अपना रुमाल खोल पाँच छः काले काले फल निकाल कर पूछा—अब कहिए, यह क्या है?

विनय के जो मुँह में आया बक गया। आखिर हार मानने पर सतीश ने कहा—रंगून में मेरे एक मामा रहते हैं, उन्होंने वहाँ के ये फल मेरी माँ के पास भेज दिये हैं। माँ ने उन्हीं में से पाँच फल आप के लिए भेजे हैं।

ब्रह्मदेश का मैङ्गोष्टीन फल उन दिनों कलकत्ते में सुलभ न था। इससे विनय ने उन फलों को कई बार उलट पलट कर देखा और पूछा—सतीश बाबू, यह फल कैसे खाया जाता है?

सतीश ने विनय की इस अज्ञता पर हँसकर कहा—देखो इसे छिलके समेत मत खाना, पहले छुरी से इसके छिलके को अलग कर लेना तब खाना।

सतीश स्वयं इस फल को छिलके समेत खाने की व्यर्थ

चेष्टा करके आज कुछ देर पूर्व आत्मीय जनों के आगे हास्यास्पद हुआ था—इस कारण विनय की अनभिज्ञता पर विज्ञ की तरह हँसने से उस के मन की वेदना दूर हुई ।

इसके बाद दोनों असमवयस्क मित्रों में कुछ देर तक हास्य-विनोद की बातें होने के पीछे सतीश ने कहा—विनय बाबू, माँ ने कहा है कि यदि आप को समय मिले तो एक बार हमारे घर आइएगा । आज लीला का जन्म-दिन है ।

विनय—आज! आज तो मुझे समय न मिलेगा । आज मुझे एक दूसरी जगह जाना है ।

सतीश—कहाँ ?

विनय—अपने मित्र के घर ।

सतीश—आप के वही मित्र ?

विनय—हाँ ।

विनय मित्र के घर जायँगे परन्तु हमारे घर न आयँगे, इस का कारण सतीश न समझ सका । विशेषतः विनय के इस मित्र को सतीश पसन्द न करता था । वह मित्र मानो स्कूल के हेडमास्टर को अपेक्षा भी कड़ा आदमी था । ऐसा कोई व्यक्ति ही नहीं जो उस को आर्गन सुनाकर यश लाभ करे । ऐसे निःस्पृह आदमी के पास जाने के लिए विनय ने इच्छा प्रकट की, यह बात सतीश को अच्छी न लगी । उसने कहा—नहीं विनय बाबू, आप मेरे घर चलें ।

सतीश के आगे विनय को हार माननी पड़ी । बड़ी देर

तक आगा-पीछा करके विनय, लड़के का हाथ पकड़ कर, उस सड़क की ओर चला जिस पर ७८ नम्बर वाला मकान है। ब्रह्म देश से आये हुए दुर्लभ फल का कुछ अंश विनय के पास भेजने से जो आत्मीयता प्रकट हुई है, उसी की मान-रक्षा न करना विनय को असंभव हो गया।

विनय ने परेश बाबू के घर के पास पहुँच कर देखा, हरि बाबू और कई एक अपरिचित व्यक्ति परेश बाबू के घर से आ रहे हैं। लीला के जन्म-दिन के मध्याह्न-भोजन में वे सब निमन्त्रित थे। हरि बाबू दूसरी ओर देखते हुए इस भाव से चले गये, जैसे उन्होंने विनय को देखा ही नहीं।

घर के भीतर प्रवेश करते ही विनय ने ख़ूब ज़ोर से हँसने का और चहल पहल का शब्द सुना। बात सिर्फ़ इतनी ही नहीं थी कि सुधीर ने लावण्य की चाबी चुराई है, बल्कि दराज में लावण्य के हाथ की लिखी कापी है उसी में कवियशःप्रार्थिनी की उपहास्यता का उपकरण है। यह घरेलू चोर उसे जन-समाज में उद्घाटन करेगा, यह कह कर वह लावण्य को डरवा रहा है। इस विषय में जब दोनों पक्षों में छीना-झपटी हो रही थी उसी समय रङ्गभूमि में विनय भी पहुँचा।

उस को देखते ही लावण्यलता का दल पल भर में अन्तर्द्धान हो गया। सतीश उन के कौतुक का कुछ भेद लेने के लिए उन के पीछे दौड़ा। कुछ देर बाद सुशीला ने घर में आकर कहा—माँ ने आपको बैठने के लिए कहा है, वे अभी

आती हैं। बाबू जी अनाथ बाबू के घर गये हैं, वे भी अब आते होंगे।

सुशीला ने विनय का संकोच दूर करने के अभिप्राय से गौरमोहन की बात छेड़ी। हँसकर कहा—जान पड़ता है, अब वे हमारे यहाँ फिर कभी न आवेंगे।

विनय—यह क्यों?

सुशीला ने कहा—हम लोगों को पुरुषों के सामने निकलते देख वे बहुत अचम्भे में पड़ गये हैं। पर्दे के भीतर रहकर काम करने वाली स्त्रियों को छोड़ शायद अन्य स्त्रियों पर वे श्रद्धा नहीं कर सकते।

विनय इसका उत्तर देने में कुछ ठिठक सा गया। बात का समीचीन उत्तर दे सकने पर वह ख़ुश होता, परन्तु झूठ कैसे बोले? विनय ने कहा—गौरमोहन का मत यह है कि घर के कामों में स्त्रियाँ सम्पूर्ण मन न लगावें तो उनके कर्त्तव्य की एकाग्रता नष्ट होती है।

सुशीला—तब तो स्त्री पुरुष दोनों मिलकर घर बाहर के सभी कामों को बराबर बाँट लेते तो अच्छा होता। घर में पुरुषों के रहने से क्या उनके बाहर का काम अच्छी तरह सम्पन्न नहीं होता? आप भी क्या अपने मित्र के मत में अपना मत मिला रहे हैं?

स्त्रियों के नीति-सम्बन्ध में इतने दिनों तक तो विनय गौर के मत के साथ ही साथ आ रहा था। इस विषय पर

उसने समाचार-पत्रों में कई लेख भी दिये हैं। किन्तु वह उसका मत इस समय उसके मुँह से न निकल सका। उसने कहा—देखो, असल में हम लोग इन सब बातों में अभ्यास के दास हैं। इसीलिए स्त्रियों को पुरुषों की भाँति बाहर घूमते देख मन में आघात पहुँचता है। अन्याय या अकर्त्तव्य समझ कर जो बुरा मालूम होता है, सो यह चित्त का विकार है। हम लोग इसे बलपूर्वक बुरा प्रमाणित करने की चेष्टा करते हैं। युक्ति यहाँ निमित्त मात्र है, संस्कार ही असल है।

सुशीला ने कुछ कुछ बीच में बोल कर गौरमोहन के सम्बन्ध की आलोचना को समाप्त न होने दिया। विनय भी, गौर के सम्बन्ध में जो कुछ कहने को था, भली भाँति कहने लगा। ऐसी युक्ति की बातें, ऐसा दृष्टान्त देकर, इस प्रकार उसने कभी न की थीं। गौर स्वयं भी अपने मत का इस प्रकार उपपादन कर सकता या नहीं इसमें सन्देह है। विनय की बुद्धि और वर्णन की अपूर्व उत्तेजना से सुशीला का मन प्रसन्न होने लगा और उस प्रसन्नता की झलक उसके मुँह पर दिखाई देने लगी। विनय ने कहा—देखिए, शास्त्र में लिखा है—'आत्मानं विद्धि'—अपने को जानो। विना आत्म-ज्ञान के मुक्ति होना असंभव है। मैं आप से कहता हूँ, मेरा मित्र, गौर, भारतवर्ष के उस आत्मबोध का प्रकाश स्वरूप उत्पन्न हुआ है। मैं उसको सामान्य मनुष्य नहीं कह सकता। हम लोगों का मन जब तुच्छ आकर्षण से, नई वस्तुओं के प्रलोभन से,

इधर उधर घूमता फिरता है तब यही एकमात्र कर्मवीर सारे झञ्झटों के बीच अटल भाव से खड़ा होकर उच्च स्वर से यह पुरातन मन्त्र पढ़ रहा है—'आत्मानं विद्धि ।'

यह आलोचना कुछ देर और चलती । सुशीला का मन भी सुनने में उलझ गया था, किन्तु सहसा पास के ऐक कमरे से सतीश ने चिल्ला कर पढ़ना आरम्भ किया—

बोलो ना कातर स्वरे, ना करि विचार ।
जीवन स्वपन सम, मायार संसार ॥

बेचारा सतीश घर के नये आये हुए लोगों के सामने अपनी विद्या प्रकट करने का अवकाश न पाता था । लीलावती तक अँगरेज़ी कविता पढ़कर सभा को चकित कर डालती थी, किन्तु सतीश को कभी शिवसुन्दरी कुछ पढ़ने के लिए न बुलाती थी । तिस पर भी लीला के साथ सभी विषयों में सतीश की प्रतियोगिता थी । किसी तरह लीला को छकाना सतीश के जीवन का प्रधान सुख था । विनय के सामने कल लीला की परीक्षा हो गई है । उस समय बिना बुलाये सतीश वहाँ जाकर लीला को छकाने का साहस न कर सका । छकाने की चेष्टा करने पर भी शिवसुन्दरी उसे रोक देती । इसीसे आज वह पास के कमरे में अपने मन से ख़ूब ज़ोर से चिल्ला चिल्ला कर कविता पढ़ने लगा । उसे सुन कर सुशीला अपनी हँसी को न रोक सकी ।

इसी समय लीला ने अपनी खुली हुई वेणी को पीठ पर

हिलाते हुए कमरे में प्रवेश किया और सुशीला के गले से लिपट कर उसके कान में कुछ कहा। यह मौक़ा पा सतीश दौड़ कर उसके पीछे आ खड़ा हुआ और बोला—अच्छा बताओ लीला, 'मनोयोग' माने क्या?

लीला—नहीं बताऊँगी।

सतीश—तुम जानती ही नहीं, बताओगी क्या?

विनय ने सतीश को अपने पास खींच हँस कर कहा—तुम्हीं न बताओ, मनोयोग माने क्या है?

सतीश ने गर्व के साथ सिर हिला कर कहा—मनोयोग का अर्थ है मनोनिवेश।

सुशीला ने पूछा—और मनोनिवेश से तुमने क्या समझा? आत्मीय के सिवा आत्मीय को ऐसी विपत्ति में कौन फँसा सकता है? सतीश ने इस प्रश्न को मानो सुना ही नहीं, इस भाव से वह उछलता कूदता वहाँ से चला गया।

विनय आज परेश बाबू के घर से जल्दी बिदा होकर गौरमोहन के पास जाने का विचार स्थिर करके आया था। विशेष कर गौरमोहन की बातें करते करते उसके पास जाने का उत्साह भी विनय के मन में प्रबल हो गया था। इसीसे घड़ी में चार बजते सुन कर वह झट कुरसी से उठ खड़ा हुआ।

सुशीला ने कहा—क्या आप अभी जायँगे? माँ ने आपके लिए जल-पान तैयार किया है। क्या कुछ देर बाद जाने से काम न चलेगा?

विनय के लिए यह प्रश्न नहीं, हुक्म था। वह बिना कुछ कहे फिर बैठ गया। लावण्य ने बड़ी सज-धज के साथ रेशमी साड़ी सँवारे हुए घर में आकर कहा—बहन, जल-पान का सामान तैयार है। माँ ने ऊपर बुलाया है।

सुशीला के साथ छत पर जाकर विनय जल-पान करने बैठा। शिवसुन्दरी अपनी सन्तानों का जीवन-वृत्तान्त सुनाने लगी। सुशीला को खींच कर ललिता कमरे में लेगई। लावण्य एक आराम-कुरसी पर बैठ गई और सिर नीचा कर लोहे की दो सलाइयों से कुछ बुनने लगी। उसको कभी किसी ने कहा था, बुनाई करते समय तुम्हारी कोमल उँगलियों का चलना बहुत सुन्दर मालूम होता है। तब से लोगों के सामने बिना प्रयोजन भी बुनाई करने का उसे अभ्यास सा हो गया था।

परेश आये। इधर सन्ध्या भी हो चली। आज रविवार को उपासना-मन्दिर में जाने की बात है। शिवसुन्दरी ने विनय से कहा—यदि आप को चलने में किसी तरह की बाधा न हो तो हम लोगों के साथ समाज में चलें।

इस पर विनय ने कोई आपत्ति न की। दो गाड़ियों में यथायोग्य बैठकर सब उपासना-घर को गये। लौटते समय जब सब लोग गाड़ी पर सवार होने की चेष्टा कर रहे थे तब सुशीला ने चौंक कर कहा—यह देखो, गौर बाबू जा रहे हैं।

गौरमोहन ने इस दल को देख लिया था, इसमें किसी को कुछ सन्देह नहीं रहा। परन्तु वह ऐसा भाव कर के चला

गया जैसे उसने किसी को देखा ही न हो। गौरमोहन की इस उद्धत अशिष्टता से विनय ने परेश बाबू आदि सबके निकट लज्जित हो सिर नीचा कर लिया। वह मन ही मन समझ गया कि मुझे इस ब्राह्म-दल में देख कर ही गौर विमुख हो वैसे प्रबल वेग से चला गया है। इतनी देर तक जो उसके मन में एक आनन्द का दीप जल रहा था वह एकाएक बुझ गया। सुशीला विनय के मन का भाव और उस का कारण उसी घड़ी समझ गई। विनय जैसे मित्र के साथ गौरमोहन का ऐसा अविचार और ब्राह्म-दल के प्रति उस की ऐसी अयुक्त अश्रद्धा देख कर उसके ऊपर फिर सुशीला को क्रोध हुआ। अब वह मन ही मन यह सोचने लगी कि किसी तरह गौरमोहन का गर्व चूर्ण हो।

[१४]

गौरमोहन जब दोपहर को खाने बैठा तब आनन्दी धीरे धीरे कहने लगीं—आज सबेरे विनय आया था। क्या तुम से उसकी भेट नहीं हुई?

गौरमोहन ने भोजन की थाली की ओर मुँह किये ही कहा—हाँ, हुई तो थी।

आनन्दी कुछ देर चुप बैठी रही, पीछे बोली—उससे ठहरने को कहा था, किन्तु वह उकता कर चला गया।

गौर ने कुछ जवाब न दिया। आनन्दी ने कहा—न

मालूम उसके मन में क्या कष्ट है। मैं उसको ऐसा उदास कभी न देखती थी। उसे उदास देख मेरे मन में बड़ा दुःख होता है।

गौरमोहन इस पर भी कुछ न बोला, चुपचाप खाने लगा। आनन्दी गौर को बहुत चाहती थी, इसी से मन ही मन उन से कुछ डरती भी थी। जब वह स्वयं जी खोल कर उनसे कोई बात न कहता तब आनन्दी कुछ कहने के लिए उसे तंग न करती थी। और दिन होता तो वह चुप हो रहती, कुछ न बोलती, किन्तु आज विनय के लिए उस का मन बड़ा कष्ट पा रहा था, इसी लिए बोली—देखो गोरा, तुमसे एक बात कहती हूँ, क्रोध न करना। भगवान् ने अनेक मनुष्य सिरजे हैं, परन्तु सब के लिए एक ही रास्ता नहीं खोल रक्खा है। विनय तुम को प्राणों से भी बढ़ कर मानता है, इसी से तुम्हारी सब बातें सहता है। किन्तु तुम्हारे ही पथ से उसे चलना होगा, यह कुछ बात नहीं। इस तरह की ज़बर्दस्ती करने से रस नहीं रहेगा।

गौर—माँ, थोड़ा दूध और ला दो।

बात यहीं ख़तम हो गई। गौरमोहन के भोजन करने के बाद आनन्दी अपने तख़्त पर चुप चाप बैठकर सिलाई करने लगीं। लखमिनिया घर के किसी नौकर की दुर्व्यवहार-सम्बन्धी आलोचना द्वारा आनन्दी का ध्यान अपनी ओर खींचने की वृथा चेष्टा कर नीचे चटाई पर सो गई।

गौर ने अधिक समय चिट्ठी-पत्री लिखने ही में बिता दिया। गौरमोहन मुझ पर नाराज़ है, विनय यह बात आज सबेरे देख गया है, तो भी उस नाराज़ी को मिटाने के लिए वह इस के पास न आवेगा यह हो नहीं सकता। ये बातें सोच कर गौर अपने सभी कामों में विनय के पैर की आहट सुनने के लिए कान लगाये रहा।

समय बीत चला। विनय न आया। गौर ने विनय के आने की आशा छोड़ क़लम को हाथ से यथास्थान रख कर उठना चाहा। इतने में महिम घर के भीतर आ पहुँचे। आते ही कुरसी पर बैठ कर उन्होंने कहा—गौरमोहन, शशि-मुखी के ब्याह की बात तुम ने क्या सोची है?

गौरमोहन ने यह बात कभी न सोची थी, इस लिए वह अपराधी की भाँति चुप हो रहा।

बाज़ार में लड़के का दाम किस क़दर चढ़ा है, और अपने घर की आर्थिक अवस्था कैसी है, इसकी आलोचना करके महिम ने गौर से कोई उपाय सोचने को कहा। गौरमोहन जब सोचते सोचते थक गया और उसे कोई उपाय न सूझा तब उन्होंने उसे चिन्ता-समुद्र से उद्धार करने के लिए विनय की बात चलाई। इतनी भूमिका बाँधने की कोई आवश्यकता न थी परन्तु महिम गौर को मुँह से जो चाहे कहलें पर मन ही मन उस से डरते थे।

इस प्रसङ्ग में विनय की बात चल सकती है, इस बात को

गौरमोहन ने स्वप्न में भी कभी न सोचा था। बल्कि गौर और विनय ने यह निश्चय किया था कि हम दोनों विवाह न करके देश के कार्य में जीवन व्यतीत करेंगे। इसी से गौर ने कहा—विनय ब्याह क्यों करेगा?

महिम—मालूम होता है, यह तुम्हारा हिन्दूपन का ख़याल है! तुम चाहे हज़ार चोटी रक्खो और तिलक लगाओ, परन्तु साहबपन हड्डी के भीतर से निकल ही पड़ता है। शास्त्र के मत से व्याह ब्राह्मण के लड़के का एक संस्कार है, क्या यह नहीं जानते?

महिम आज कल के लड़कों की तरह न आचार का ही उल्लंघन करते थे और न शास्त्र की आज्ञा के अनुसार चलते ही थे। होटल में खाना खाकर बहादुरी दिखलाना भी वे नापसन्द करते थे और गौरमोहन की भाँति वेद और धर्म-शास्त्र की बात लेकर सदा छेड़ छाड़ करने को भी वे एक प्रकार का पागलपन समझते थे। परन्तु "यस्मिन् देशे यदाचार:"—गौर के समीप शास्त्र की यह दुहाई देनी ही पड़ी।

यदि यह प्रस्ताव दो दिन पहले उसके आगे उठाया जाता तो वह एक दम उस पर कान न देता। आज उसने देखा, बात एकबारगी उपेक्षा के योग्य नहीं है। किसी तरह इस प्रस्ताव को लेकर विनय के घर जाने का एक बहाना तो मिला।

गौर ने अन्त में कहा—अच्छा, विनय के मन का भाव कैसा है, यह जानना चाहिए।

महिम—वह जानना न होगा। तुम्हारी बात को वह किसी तरह टाल न सकेगा। वह राज़ी हो गया है। तुम्हारे कहने भर की देरी है।

उसी दिन साँझ को गौरमोहन विनय के घर गया। आँधी की तरह उस के घर में घुस कर उसने देखा, घर में कोई नहीं है। दरवान को बुला कर पूछने से मालूम हुआ, बाबू ७८ नंबर वाले मकान में गये हैं।

परेश बाबू के घर जाने की बात सुनकर ब्राह्म समाज के विरुद्ध गौरमोहन का हृदय एक दम विष से व्याप्त हो गया। वह मन में भारी विद्रोह का बोझ लेकर परेश बाबू के घर की ओर लपका। उसने यही निश्चय कर रक्खा था कि आज वहाँ जाकर वह ऐसी ऐसी बातें बोलेगा जो सुन कर उन ब्राह्म समाजियों के छक्के छुटेंगे और विनय भी कुछ समझेगा।

परेश बाबू के घर जाकर सुना, कोई घर पर नहीं है, सब लोग उपासना-मन्दिर को गये हैं। एक बार उसके मन में सन्देह हुआ कि विनय वहाँ न जाकर शायद इस वक़्त मेरे ही घर गया हो। तो भी वह अपने घर की ओर न लौट कर अपनी स्वाभाविक तीव्र गति से मन्दिर की ही ओर गया। फाटक के पास जा कर देखा, शिवसुन्दरी के पीछे पीछे विनय गाड़ी पर चढ़ने को जा रहा है। गौरमोहन को विनय की इस चाल पर बड़ा रञ्ज हुआ। वह मन ही मन कहने लगा, देखो तो, आम सडक पर पराये घर की स्त्रियां के साथ गाडी में बैठ कर

निर्लज्ज की भाँति घूमता है! मूढ़! नाग-पाश में इसी तरह फँसना होता है! इतना जल्द! इतनी सुगमता से! अब तेरे साथ मित्रता की रक्षा में कल्याण नहीं; जो तेरे जी में आवे कर। गौरमोहन जिस वेग से आया था उसी वेग से चला गया। विनय गाड़ी में बैठा सड़क की ओर देखता रह गया।

शिवसुन्दरी यह समझ कर कि आचार्य का उपदेश उस के मन में काम कर गया है, कुछ न बोली।

[१५]

गौरमोहन मन्दिर से रात को घर आकर अँधेरी छत के ऊपर घूमने लगा।

महिम अपना स्थूल शरीर ले छत पर आकर हाँफते हुए बोले—मनुष्य के जब डैने नहीं हैं, तब उसने इतना बड़ा तिमंज़िला मकान क्यों बनाया? धरती पर का मनुष्य होकर आकाश में रहने की चेष्टा करे तो कोई आकाश-विहारी देवता नहीं सह सकता। हाँ, विनय के पास गये थे?

गौरमोहन ने इसका उचित उत्तर न देकर कहा—विनय के साथ शशिमुखी का ब्याह न हो सकेगा।

महिम—क्यों, क्या इस में विनय की सम्मति नहीं है?

गौर—जी नहीं, मेरी सम्मति नहीं है।

महिम ने हाथ घुमा कर कहा—फिर यह एक नया बखेड़ा

देखता हूँ। तुम्हारी सम्मति नहीं है। न होने का कुछ कारण भी तो सुनूँ?

गौर—मैं भली भाँति जानता हूँ, विनय को हम लोगों के समाज में पकड़ रखना कठिन होगा। उसके साथ हमारे घर की लड़की का ब्याह न हो सकेगा।

महिम—सैकड़ों, हज़ारों हिन्दू देखे हैं पर ऐसा तो कहीं नहीं देखा। तुमने तो काशी के आचारियों को भी जीत लिया। तुम्हारे आचार से तो यही देख पड़ता है कि किसी दिन तुम मुझ से कहोगे, मैंने स्वप्न में देखा है कि तुम किरिस्तान हो गये हो सो उसका प्रायश्चित्त करो। गाय का गोबर और गङ्गा-जल पान कर तब जाति में मिल सकोगे।

बहुत वाद विवाद के अनन्तर महिम ने कहा—हम लड़की को मूर्ख के हाथ नहीं दे सकते। जो लड़का लिखा-पढ़ा होगा, जिसकी बुद्धि अच्छी होगी वह कभी कभी शास्त्र की बातों को ज़रा सा लाँघेगा ही! इसके लिए तुम उससे शास्त्रार्थ करो, उसे गाली दो! किन्तु उसका ब्याह रोक कर बीच में विघ्न रूप होकर मेरी लड़की को दण्ड मत दो। तुम्हारे सब विचार उलटे हैं।

महिम यों बड़बड़ाते हुए नीचे उतर आये और आनन्दी से कहा—माँ, तुम अपने गोरा को रोको।

आनन्दी ने घबराकर पूछा—एँ! क्या हुआ है?

महिम—मैंने विनय के साथ शशिमुखी के ब्याह की बात-

चीत एक तरह से पक्की करली थी । और इस प्रस्ताव पर गौरमोहन को भी राज़ी कर लिया था । परन्तु रातही भर में गौर ने सिद्धान्त कर लिया कि विनय पक्का हिन्दू नहीं है । मनु-पराशर के साथ कहीं कहीं उसका मत नहीं मिलता, इस से गौर वक्रतुण्ड हो बैठा है । उसका मुँह फुलाना सहज नहीं है । जब वह टेढ़ा होता है तब उसका टेढ़ापन तुम जानती ही हो । यदि कलियुग के जनक प्रण करते कि 'कुटिल गौर के सीधा होने पर मैं सीता का दान करूँगा' तो श्री रामचन्द्र जी हार मान कर चले जाते, यह मैं बाज़ी लगाकर कह सकता हूँ । मनु-पराशर के नीचे दुनिया भर में वह एकमात्र तुम्हीं को मानता है । अब यदि तुम कोई रास्ता निकाल दो तो लड़की का ब्याह हो जाय । ऐसा वर ढूँढ़ने से भी न मिलेगा ।

यह कह कर महिम ने गौर के साथ आज छत पर जो बातचीत हुई थी सब विस्तारपूर्वक कह सुनाई । विनय के साथ गोरा का विरोध दिनों दिन बढ़ता जाता है, यह जानकर आनन्दी के मन में अत्यन्त दुःख हुआ । वह एक दम उद्विग्न हो गई ।

आनन्दी ने ऊपर जाकर देखा, गौरमोहन छत पर घूमना बन्द करके कमरे के भीतर आराम-कुरसी पर बैठा पाँव पसारे हुए एक किताब पढ़ रहा है । आनन्दी उसके पास एक कुरसी पर जा बैठी । गौरमोहन ने पाँव मोड़कर आनन्दी के मुँह की ओर देखा ।

आनन्दी ने कहा—बेटा गौर, मेरी एक बात मानो, विनय के साथ झगड़ा मत करो। मैं तुम दोनों को बराबर समझती हूँ। तुम दोनों परस्पर भाई का सा व्यवहार रक्खो। तुम दोनों में वैमनस्य होने से मैं अत्यन्त दुखी हूँगी।

गौर—यदि भाई प्रेम बन्धन काट कर भागना चाहे तो मैं उसके पीछे दौड़कर अपने समय को व्यर्थ नष्ट न करूँगा।

आनन्दी—मैं नहीं जानती कि तुम दोनों में क्या अनबन होगई है, किन्तु विनय बन्धन काटकर तुम से अलग होना चाहता है इस बात पर यदि तुम विश्वास करते हो तो फिर तुम्हारी मित्रता कहाँ रही?

गौर—माँ, मैं सीधे चलना पसन्द करता हूँ। दो नावों पर पाँव रखकर चलने का जिसका स्वभाव है उसे मेरी नाव से पाँव हटा लेना पड़ेगा—इस से मुझ को कष्ट हो या उसी को कष्ट हो।

आनन्दी—अच्छा, बतलाओ, क्या हुआ है, ब्राह्मो के घर वह जाता-आता है उसका यही अपराध है न?

गौर—ऐसी बहुत सी बातें हैं।

आनन्दी—भले ही हों, पर मैं तुमसे एक बात कहती हूँ। सब बातों में तुम्हारी इतनी ज़िद रहती है कि तुम जिस विषय को पकड़ते हो उसे किसी तरह भी छोड़ नहीं सकते। किन्तु विनय की बेर तुम अपने इस नियम से क्यों विचलित हो जाते हो? तुम्हारा अविनाश यदि तुम से अलग होना चाहता तो

क्या तुम सहज ही उसे छोड़ देते? तुम्हारा मित्र होने ही से क्या वह तुम्हारे सब की अपेक्षा छोटा है?

गौरमोहन चुप होकर सोचने लगा। आनन्दी की इस बात से उस के मन में कुछ चेत हो आया। इतनी देर तक विनय के प्रति उसने जिस व्यवहार की बात सोची थी वह आनन्दी के उपदेश से अयुक्त जान पड़ी। उसके मन में उलटी हवा बहने लगी। उसने अपने मन के सिद्धान्त को बदल डालना चाहा। वह विनय के अयुक्त आचरण से क्रुद्ध होकर मित्रता के विरुद्ध उसे दण्ड देने को उद्यत हुआ था, परन्तु अब उसने जाना कि विनय को बाँध रखने के लिए मित्रता ही यथेष्ट है; और प्रकार की चेष्टा करना प्रेम का निरादर करना होगा।

आनन्दी ने गौरमोहन के मुख और नेत्रों के भाव से ज्यों ही जाना कि मेरे कथन का प्रभाव गोरा के मन पर अवश्य कुछ पड़ा है, त्यों ही वह और कुछ न कहकर जाने को उद्यत हुई। गौरमोहन भी झट उठ खड़ा हुआ और खूँटी पर से डुपट्टा उतार कर उसने कन्धे पर रक्खा।

आनन्दी ने पूछा—कहाँ जाते हो?

गौर—मैं विनय के घर जाता हूँ।

आनन्दी—भोजन तैयार है, खाकर जाओ।

गौर—मैं विनय को पकड़ लाता हूँ, वह भी यहीं खायगा।

आनन्दी इस पर और कुछ न कह कर नीचे की ओर चली। सीढ़ी पर किसी के आने की आहट पाकर वह ठहर गई और बोली विनय तो यह आ रहा है।

इतने में विनय वहाँ आ पहुँचा। आनन्दी की आँखों में आँसू उमड़ आये। वह विनय की पीठ पर हाथ रख कर बोली—विनय तुम कहीं खाकर तो नहीं आये हो?

विनय—नहीं, माँ।

आनन्दी—तुम को यहीं खाना होगा।

विनय ने एक बार गौरमोहन के मुँह की ओर देखा। गौर ने कहा—तुम बहुत दिन जिओगे, अभी तुम्हारी ही चर्चा होती थी। देखो, मैं तुम्हारे ही यहाँ जा रहा था।

आनन्दी के हृदय का बोझ हलका हो गया। वह झटपट नीचे चली गई।

दोनों मित्र घर में आ कर बैठे। गौरमोहन ने कुछ इधर उधर की बात चला कर कहा—जानते हो, हमारे दल के लड़कों के लिए एक बहुत अच्छा जिमनास्टिक-मास्टर आया है। वह भली भाँति शिक्षा देता है।

मन के भीतर की असल बात को अब भी दोनों में किसी ने बाहर करने का साहस न किया।

दोनों मित्र जब भोजन करने को बैठे तब आनन्दी उन दोनों की बातचीत से समझ गई कि अब भी उन दोनों का मनमुटाव नहीं मिटा है, भीतर का पर्दा नहीं उठा है। उसने

कहा—विनय, रात बहुत बीत गई है, तुम आज यहीं सो रहो। मैं तुम्हारे घर पर ख़बर भेज देती हूँ।

विनय ने सचकित दृष्टि से गौरमोहन के मुँह की ओर देख कर कहा—भुक्त्वा राजवदाचरेत्—खा कर तुरन्त रास्ता चलना ठीक नहीं। इसलिए यहीं सो रहना अच्छा है।

भोजन करके दोनों मित्र छत के ऊपर आकर एक चटाई पर बैठे। भादों का महीना है। शुक्ल पक्ष की चाँदनी की छटा चारों ओर छिटक रही है। सफ़ेद पतला बादल मलमल की चादर की भाँति बीच बीच में चन्द्रमा को आवृत कर धीरे धीरे एक ओर से दूसरी ओर चला जाता है। चारों ओर भाँति भाँति के छोटे बड़े कितने ही मकान नज़र आ रहे हैं जो एक प्रकार का अपूर्व कौतुक सा जान पड़ता है।

गिर्जाघर की घड़ी में ग्यारह बजने का शब्द सुन पड़ा। बर्फ़वाला अपनी आख़िरी आवाज़ लगा कर चला गया। गाड़ी आने जाने की घर्घराहट धीरे धीरे मन्द हो पड़ी। गौरमोहन के महल्ले में अब लोगों के जागने का चिह्न दिखाई नहीं देता। केवल पड़ोसी के अस्तबल में रह रह कर घोड़े की टाप का शब्द सुन पड़ता है और कहीं कहीं गलियों से कुत्तों के भूँकने की आवाज़ आ रही है।

दोनों मित्र कुछ देर चुप बैठ कर प्रकृति की शोभा देखते रहे। पीछे विनय ने धीरे धीरे अपने हृदय का कपाट खोला। उसने कहा—सुनो गौर बाबू, मेरा हृदय बोझ से दबा जा

रहा है। मैं जानता हूँ कि इन सब बातों में तुम मुझसे सहमत नहीं हो, तुम ये सब बातें मुझ से सुनना नहीं चाहते, परन्तु बिना तुम से कहे चित्त को विश्राम नहीं मिलेगा। मैं भला बुरा कुछ भी नहीं जानता। पुस्तकों में कितनी ही बातें पढ़ी हैं और इतने दिनों से मन में यही धारणा थी कि मैं सब जानता हूँ। परन्तु यह मेरी समझ भूल से भरी थी। चित्र में पानी देखने से मैं समझता था कि पानी में तैरना बड़ा सुगम है, किन्तु आज सच्चे पानी के भीतर पैठ कर मैं क्षण भर में समझ गया कि यह हँसी खेल नहीं है।

यह कह कर विनय अपने जीवन की इस विचित्र घटना को बड़ी धीरता से गौर के सामने प्रकट करने लगा।

वह कहने लगा—आजकल मेरे लिए दिन-रात में कुछ अन्तर नहीं है, समस्त आकाश-मण्डल में मानों रत्ती भर जगह कहीं खाली नहीं है। सारा आकाश मानों किसी एक कठिन पदार्थ से भर गया है। मधु मास में मधु का छत्ता जैसे मधु से भर कर फटना चाहता है, वही दशा मेरी है। आज सभी पदार्थ एक अपूर्व भाव से मेरे सामने प्रतीयमान हो रहे हैं। मैं नहीं जानता था कि संसार की सभी वस्तुओं को मैं इतना प्यार करता हूँ, आकाश ऐसा विचित्र होता है, प्रकाश ऐसा अपूर्व होता है। रास्ते के अपरिचित पथिक का प्रवाह भी ऐसी गम्भीरता से सत्य होता है। मेरा जी चाहता है, सबके लिए मैं कुछ करूँ; मैं अपनी

सम्पूर्ण शक्ति को आकाश के सूर्य की भाँति संसार की एक चिरस्थायी वस्तु बना डालूँ।

विनय किसी व्यक्ति-विशेष के प्रसङ्ग में यह सब बातें कह रहा है, यह स्पष्ट रूप से समझ में नहीं आता। मानों वह किसी का नाम मुँह पर नहीं ला सकता। संकेत से भी नाम सूचित करने में वह कुण्ठित हो पड़ता है। वह जिस मानसिक भाव की आलोचना कर रहा है, इसके लिए मानों वह किसी के निकट अपने अपराध का अनुभव कर रहा है। इसे वह एक प्रकार का अन्याय और किसी के प्रति गुप्त अपमान करना समझता है। किन्तु आज इस निःशब्द रात में, निःस्तब्ध आकाश में, सूनी जगह में, मित्र के पास बैठ कर वह इस अन्याय को किसी तरह छिपा न सका।

"अहा! वह मुख क्या है मानों निष्कलङ्क पूर्ण चन्द्र है। उसके निर्मल प्राणों की आभा उसके भाल की कोमलता में क्या ही मनोहर भाव से विकसित हो रही है। मुसकुराते ही उसका चेहरा कमल सा खिल उठता है। उस मुख के सौन्दर्य की उपमा चन्द्रमा से दूँ या कमल से! उसकी वह चिकुर-राशि, उसके वे दोनों कटीले नेत्र! उसकी वह सीधी चितवन चित्त को चुराये लेती है। मानों वह मधुर मूर्त्ति मेरी आँखों के सामने खड़ी है, मानों वह मुझ से बातें कर रही है।" विनय अपने जीवन को और युवत्व को धन्य मान रहा है। इस नूतन आनन्द से उसका हृदय रह रह कर फूल उठता

है। संसार के अधिकांश लोग जिसे न देखकर ही जीवन को बिता डालते हैं, उसे विनय इस तरह आँखों के सामने मूर्त्तिमान् देख सकता है इससे बढ़कर आश्चर्य की बात और क्या हो सकती है ?

किन्तु यह कैसा पागलपन है ! कैसा अन्याय है। जो हो, पर यह अब किसी तरह मन में रोका नहीं जा सकता। इस प्रेम-प्रवाह का यदि कोई किनारा बता दे तो अच्छा है। नहीं तो यदि किसी ने उसमें ढकेल दिया, किसी तरह उसके भीतर धँस पड़ा तो फिर बाहर निकलने का उपाय क्या है !

प्रेम पयोनिधि में धँसि कै हँसिकै कढ़िबो हँसी खेल नहीं फिर।

कठिन तो यह कि उसमें से बाहर होने की इच्छा भी नहीं होती। इतने दिनों के समस्त संस्कार और सारी मर्यादा को खो देना ही मानों जीवन का सार्थक परिणाम जान पड़ता है।

गौरमोहन चुप चाप सुनने लगा। इस छत पर, ऐसे सन्नाटे की चाँदनी रात में, और कितने ही दिन इन दोनों में कितनी ही बातें हो गई हैं। साहित्य, काव्यालाप, और लोक-चरित्र की कितनी ही आलोचना हुई है; समाज की कितनी ही आलोचना और भविष्यत् जीवन-यात्रा के सम्बन्ध में कितने ही संकल्प हुए हैं; परन्तु ऐसी बात इस के पूर्व किसी दिन न हुई थी। मनुष्य हृदय का ऐसा एक सत्य पदार्थ, ऐसा एक प्रबल प्रकाश, इस प्रकार गौरमोहन के सामने कभी नहीं पड़ा

था । इन व्यापारों को वह कवि का चमत्कार समझ कर इतने दिन तक सम्पूर्ण रूप से उन की उपेक्षा करता आया है। किन्तु आज इन्हें प्रत्यक्ष देख वह किसी तरह अस्वीकार न कर सका । इतना ही नहीं, इसके प्रबल वेग ने उसके मन को चञ्चल कर दिया । उसके सारे शरीर में रोमाञ्च हो आया । एक छिपी हुई शक्ति उसकी नस नस में बिजली की तरह दौड़ गई । उस की जवानी के एक अज्ञात अंश का पर्दा कुछ देर के लिए हट गया और उस—इतने दिन की बन्द—कोठरी के भीतर इस शरत्कालिक निशीथ-चन्द्रिका ने प्रवेश करके एक अपूर्व माया का विस्तार कर दिया ।

चन्द्रमा किस समय पच्छिम की ओर झुका, किस समय छतों से नीचे उतर गया यह इन दोनों ने नहीं जाना । देखते देखते पूरब ओर आसमान में सफ़ेदी छागई । तब विनय का जी कुछ हलका हुआ और मन में कुछ लज्जा हुई । वह कुछ देर चुप रह कर बोला—मेरी ये बातें तुम्हारे समीप बड़ी तुच्छ हैं, तुम मन ही मन मेरी निन्दा करते होगे; किन्तु तुम्हीं कहो मैं क्या करूँ, मैं ने तुम से कभी कोई बात छिपाई नहीं, आज भी कुछ नहीं छिपाया । तुम समझो या न समझो ।

गौरमोहन ने कहा—विनय, मैं नहीं कह सकता कि मैं इन बातों को ठीक ठीक समझ गया । दो दिन पहले तुम भी इन्हें नहीं समझते थे । इतनी बड़ी उम्र में आज तक ये आवेग और आवेश बड़े ही तुच्छ जँचते थे, इस बात को भी

मैं अस्वीकार नहीं कर सकता। इस से मैं अब यह नहीं कह सकता कि यथार्थ में ही यह इतना तुच्छ विषय है। मैं ने इस की शक्ति और गम्भीरता को कभी प्रत्यक्ष नहीं देखा, इसी कारण यह मेरे पास अपदार्थ की भाँति मिथ्या प्रतीत होता था। किन्तु तुम्हारे इतने बड़े अनुभव को मैं झूठ कैसे कहूँ? असल बात यह है कि जो व्यक्ति जिस मण्डली के भीतर है, उस मण्डली के बाहर का सत्य पदार्थ यदि उस की दृष्टि में छोटा न जान पड़े तो उस से उसकी मण्डली का कोई काम नहीं हो सकता; वह कोई काम कर ही नहीं सकता। इसी लिए ईश्वर ने दूर की वस्तु मनुष्य की दृष्टि में छोटी कर दी है। सम्पूर्ण सत्य को समान दिखा कर वह लोगों को महाविपत्ति में डालना नहीं चाहता। हम लोगों को कोई एक दिशा निर्दिष्ट कर उस ओर जाना ही होगा। एक साथ सब ओर दौड़ने की लालच छोड़नी होगी। नहीं तो—"एकै साधे सब सधे सब साधे सब जाय"—की कहावत चरितार्थ होगी। किसी एक मार्ग का अवलम्बन करना ही ठीक है। नहीं तो सत्य की प्राप्ति न होगी। तुम जिस जगह खड़े होकर आज सत्य की जिस मूर्त्ति को आँखों देख रहे हो, मैं उस मूर्त्ति का अभिवादन करने के लिए वहाँ तक न पहुँच सकूँगा। इस से मैं अपने जीवन के सत्य को भी खो डालूँगा। इस ओर सत्य और उस ओर असत्य।

विनय—सत्य तुम्हारी ओर, और असत्य मेरी ओर।

मैं अपने को पूर्ण करना चाहता हूँ और तुम अपना जीवन उत्सर्ग करने के लिए खड़े हो।

गौरमोहन ने कुछ तीव्र होकर कहा—विनय, तुम बात बात में काव्य मत करो। तुम्हारी बातें सुन कर मैं यह स्पष्ट समझ गया हूँ कि तुम आज अपने जीवन में एक प्रबल सत्य के सामने मुँह करके खड़े हुए हो, उस के साथ कपट चल नहीं सकता। सत्य की रक्षा करने से उस के पास आत्म-समर्पण करना ही होगा। इस में अन्यथा हो नहीं सकता। मैं जिस समाज के भीतर हूँ, उस समाज के सत्य को मैं भी एक दिन इसी तरह प्रत्यक्ष देखूँ, यही मेरी इच्छा है। तुम इतने दिन तक काव्य में पढ़े हुए प्रेम के परिचय से ही तृप्त थे—मैं भी पुस्तकों में उल्लिखित स्वदेश-प्रेम को ही जानता हूँ। आज प्रेम जब तुम्हारे पास प्रत्यक्ष हुआ तब तुम समझ सके हो कि पुस्तकों में पठित विषय की अपेक्षा यह कितना सत्य है। इसने तुम्हारे समस्त चराचर जगत् को अधिकार में कर लिया है, तुम इस हाथ से अब उद्धार नहीं पा सकते। इसके अधिकार से बाहर जाने की अब तुम्हें कोई जगह नहीं। स्वदेश-प्रेम जिस दिन मेरे सामने इस प्रकार पूरे तौर से प्रत्यक्ष होगा उस दिन मेरी भी यही गति होगी, मैं भी इसी तरह संसार को एक और ही रूप में देखूँगा। उस दिन वह मेरे धन-प्राण, मेरे रक्त-मांस, मेरे आकाश-विकाश और मेरे जो कुछ हैं, सभी को अनायास ही अपनी ओर खींच लेगा। स्वदेश की

वह सत्यमूर्त्ति क्या ही आश्चर्यस्वरूप है! उसके आनन्द और विषाद दोनों बड़े ही प्रबल प्रचण्ड हैं, जो बाढ़ के तीव्र वेग की भाँति जीवन-मृत्यु को बात की बात में पार कर जाते हैं। तुम्हारी बात सुनकर आज मन ही मन में उनका कुछ कुछ अनुभव कर सका हूँ। तुम्हारे जीवन की इस अभिज्ञता ने मेरे जीवन को चोट पहुँचाई है। तुम ने जो अनुभव किया है, वह मैं किसी दिन समझ सकूँगा या नहीं यह मैं नहीं जानता किन्तु मैं जो पाना चाहता हूँ उसके स्वाद का कुछ अनुभव मानों तुम्हारे अन्तःकरण के ही द्वारा मैंने किया है।

यह कहता हुआ गौरमोहन चटाई से उठ कर छत पर टहलने लगा। पूर्व दिशा की उषःकालिक स्वच्छता उसके पास मानों एक प्राकृतिक वाक्य की भाँति प्रकट हुई। मानों पुराने तपोवन का एक वेदमन्त्र उसके सामने प्रत्यक्ष हुआ। उसका सम्पूर्ण शरीर कंटकित हो गया। कुछ देर तक वह ठिठक कर खड़ा हो रहा। क्षण भर के लिए उसे ऐसा लगा मानों उसके ब्रह्म-रन्ध्र को भेद कर एक ज्योतिर्लेखा, सूक्ष्म मृणाल की तरह, उठ कर ज्योतिर्मय शतदल में—समस्त आकाश में—परिव्याप्त होकर विकसित हो गई। उसके प्राण, समस्त चेतना और सारी शक्ति सब मानों इससे एकाएक परम आनन्द में निःशेष होगये।

कुछ देर पीछे जब वह प्रकृतिस्थ हुआ तब सहसा बोल उठा—विनय, तुम्हें इस प्रेम को भी लाँघ कर मेरा साथ देना

होगा। मैं कहता हूँ कि वहाँ उलझने से काम न चलेगा। मुझे जो महाशक्ति अपनी ओर बुला रही है, वह कितनी बड़ी प्रभावशालिनी है, और कितनी सत्य है, यह किसी दिन मैं तुमको दिखाऊँगा। मेरे मन में आज बड़ा हर्ष हो रहा है। मैं अब तुम को किसी के हाथ में जाने न दूँगा। अब मैं तुम्हें छोड़ नहीं सकता।

विनय चटाई छोड़ कर गौर के पास आ खड़ा हुआ। गौरमोहन ने उसे एक अपूर्व उत्साह के साथ दोनों हाथों से आलिङ्गन कर कहा—विनय बाबू, हम तुम दोनों एक साथ जिएँगे-मरेंगे; हम दोनों एक होकर रहेंगे। हम दोनों को कोई जुदा नहीं कर सकेगा, कोई बाधा न दे सकेगा।

गोरा के इस गम्भीर उत्साह का वेग विनय के हृदय में भी तरङ्गित होने लगा;—उसने अपने आप को बिना कुछ कहे-सुने गौर के आकर्षण में छोड़ दिया।

गौरमोहन और विनय दोनों पास ही पास चुपचाप घूमने लगे। पूर्व आकाश में रक्तिमा छा गई। गौरमोहन ने कहा—भाई, मैं अपनी देवी को जहाँ देख रहा हूँ, वह सौन्दर्य के बीच की जगह नहीं है। वहाँ तो दुर्भिक्ष और दरिद्रता का निवास है, वहाँ केवल कष्ट और अपमान भरा है। वहाँ गीत गाकर और फूल चढ़ाकर पूजा करने से क्या होगा? वहाँ प्राण देकर पूजा करनी होगी। देवी की आराधना के लिए बलिदान की आवश्यकता है। आत्म-समर्पण को ही मैं सब से बढ़कर पूजा का उपकरण

समझता हूँ। इस प्रकार की पूजा में मुझे जितना हर्ष होता है उतना और किसी में नहीं। वहाँ सुख के द्वारा भूलने की कोई सामग्री नहीं। वहाँ अपनी शक्ति भर जागना होगा—सब कुछ देना होगा। वहाँ माधुर्य का लेश नहीं, वहाँ एक दुर्जय दुःसह साहस का आविर्भाव है। इसके भीतर एक ऐसा कठिन झङ्कार है जिस से हाथ में एक साथ सातों सुर बोल उठते हैं और तार टूट कर गिर पड़ते हैं। इस के स्मरण मात्र से मेरे हृदय में उल्लास जाग उठता है। मेरे मन में होता है, यह आनन्द ही पुरुष का आनन्द है—यही जीवन का ताण्डवनृत्य है। पुरातन प्रलय-यज्ञ की अग्नि-शिखा के ऊपर नई अद्‌भुतमूर्त्ति देखने ही के लिए पुरुषार्थ-साधन की आवश्यकता है। रक्तिमा-भरे आकाशक्षेत्र में एक बन्धनरहित ज्योतिर्मय भविष्यत् को मैं देख रहा हूँ। देखो, मेरे हृदय के भीतर कौन डमरू बजा रहा है।—यह कह कर गौरमोहन ने विनय का हाथ ले कर अपनी छाती के ऊपर दबा रक्खा।

विनय ने कहा—मैं तुम्हारे ही साथ चलूँगा। किन्तु मैं तुम से कहता हूँ कि मुझे कभी किसी ओर बहकने मत देना। तुम जिधर जाओ, उधर मुझे भी विधाता की तरह निर्दय हो कर खींचे लिये चलो। हमारा तुम्हारा—दोनों का मार्ग एकही होगा—किन्तु मेरी और तुम्हारी शक्ति तो बराबर नहीं है।

गौर—हम लोगों की प्रकृति में भेद है, किन्तु एक महान्

आनन्द से हम अपनी भिन्न प्रकृति को एक कर देंगे। तुम में और हम में जो प्रेम है वह सामान्य प्रेम है, इसकी अपेक्षा जो बड़ा प्रेम है, उस के द्वारा हम तुम दोनों मिल कर एक हो जायँगे। वह अखण्ड प्रेम जब तक सत्य रूप में परिणत न होगा तब तक हम दोनों के बीच पग पग में अनेक आघात-संघात, विरोध-विच्छेद होते ही रहेंगे। इसके बाद एक दिन हम लोग सब भूल कर, अपनी विभिन्नता और अपनी मित्रता को भी भूलकर, एक बहुत बड़े आत्मत्याग के भीतर अटल बल से मिल कर खड़े हो सकेंगे। वह निविड़ आनन्द ही हम लोगों की मित्रता का अन्तिम परिणाम होगा।

विनय ने गौरमोहन का हाथ पकड़ कर कहा—यही हो।

गौर—उतने दिन तक मैं तुमको अनेक कष्ट दूँगा। मेरे सब अत्याचार तुमको सहने पड़ेंगे। हम लोग क्या अपनी मित्रता को जीवन के अन्तिम लक्ष्य तक न निभा सकेंगे? जैसे होगा, उसे बचाकर चलेंगे, कभी उसका अनादर न करेंगे। इतने पर भी यदि मित्रता न रहेगी तो उपाय क्या है, किन्तु यदि बच रहे तो वह अवश्य एक दिन सफल होगी।

इसी समय दोनों ने किसी के पैरों की आहट से चौंक कर पीछे की ओर देखा, आनन्दी छत के ऊपर आई है। उसने दोनों के हाथ पकड़ कमरे की ओर खीं कर कहा—चलो, सोने को चलो, रात भर जागते रहे हो, अब भी जाकर सो जाओ।

दोनों ने कहा—माँ, अब नींद न आवेगी ।

"आवेगी ज़रूर" यह कहकर आनन्दी बरजोरी दोनों को कमरे के भीतर ले आई और दोनों को बिछौने पर पास ही पास सुलाकर कमरे का द्वार बन्द कर दिया और दोनों के सिरहाने बैठ कर पंखा झलने लगी ।

विनय ने कहा—माँ, तुम यहाँ बैठकर पंखा झलोगी तो हमें नींद न आवेगी ।

आनन्दी—देखूँगी कैसे नींद नहीं आती है। मेरे चले जाने पर फिर तुम दोनों बातें करना आरम्भ करोगे, मेरे रहने से वह न होगा ।

कुछ देर में दोनों सो रहे । आनन्दी धीरे धीरे से कमरे से बाहर हो गई । सीढ़ी पर से उतरते समय देखा, महिम ऊपर आ रहे हैं । आनन्दी ने कहा—अभी लौटो, कल वे दोनों सारी रात जागते रहे हैं। मैं अभी उन्हें सुलाकर चली आ रही हूँ ।

महिम—वाह ! इसीका नाम मित्रता है ! ब्याह की बात कुछ चली थी, जानती हो ?

आनन्दी—नहीं जानती ।

महिम—मालूम होता है, कुछ ठीक हो गया है । कब नींद टूटेगी ? शीघ्र ब्याह न होने से अनेक विघ्न उपस्थित होंगे ।

आनन्दी ने हँसकर कहा—उन दोनों को भली भाँति सोने दो । विघ्न न होगा । आज दिन में ही नींद टूटेगी ।

[१६]

शिवसुन्दरी ने कहा—"आप सुशीला का ब्याह कहीं करेंगे या नहीं ?"

परेश बाबू ने अपने स्वाभाविक शान्त, गम्भीर भाव से कुछ देर तक पकी दाढ़ी पर हाथ फेरा, पीछे कोमल-स्वर में कहा—कहीं वर मिले भी तो।

शिवसुन्दरी—क्यों, हरि बाबू के साथ उसके ब्याह की बात तो ठीक हुई है। हम सब कब से यह बात जानते हैं—सुशीला भी जानती है।

परेश—मैं जहाँ तक जानता हूँ, राधा हरि बाबू को हृदय से नहीं चाहती।

शिवसुन्दरी—यह सब मुझे अच्छा नहीं लगता। सुशीला को मैं अपनी लड़कियों से कभी भिन्न करके नहीं देखती। इसी कारण मैं यह कहने का साहस करती हूँ कि वे भी तो कुछ ऐसे वैसे नहीं हैं। हरि बाबू के सदृश विद्वान्, धार्मिक पुरुष अगर उसे चाहते हैं तो क्या यह उस के लिए कम सौभाग्य की बात है? यह सुयोग क्या हाथ से जाने देने योग्य है? आप जो कहें, मेरी लावण्य तो देखने में उससे कहीं अच्छी है, किन्तु मैं आपसे कहे देती हूँ कि हम जिसे पसन्द करेंगी वह उसी के साथ ब्याह करेगी; कभी "नहीं" न

कहेगी। आप यदि सुशीला के दिमाग़ को आसमान पर चढ़ा दें तो फिर उसके लिए वर मिलना कठिन होगा।

परेश इस पर कुछ न बोले। शिवसुन्दरी के साथ वह कभी विवाद न करते थे। विशेष कर सुशीला के सम्बन्ध में।

सतीश को जनमा कर जब सुशीला की माँ मर गई तब सुशीला सात वर्ष की थी। उस का पिता रामशरण हवलदार, स्त्री की मृत्यु के अनन्तर, ब्राह्म समाज में जा मिला। आख़िर, लोगों के अत्याचार से तङ्ग आकर, वह ढाका चला गया। वह जब वहाँ के डाकघर में काम करता था तब परेश बाबू के साथ उसकी प्रगाढ़ मैत्री हुई। सुशीला तब से परेश को अपने पिता के समान मानने लगी।

रामशरण अचानक मर गया। उसके पास जो कुछ जमा-जथा थी, वह अपने बेटे और बेटी को बाँट देने का भार परेश बाबू को दे गया था। तब से सतीश और सुशीला दोनों परेश बाबू के घर रहने लगे।

पाठक पहले ही जान चुके हैं, हरि बाबू बड़ा उत्साही ब्राह्म था। ब्राह्म समाज के सभी काम उसके हाथ में थे। वह रात्रि-पाठशाला का शिक्षक, समाचार-पत्र का सम्पादक और स्त्री-विद्यालय का मन्त्री था। किसी भी काम में उस की शिथिलता नहीं पाई जाती थी। सभी के मन में यही आशा थी कि यही युवक एक दिन ब्राह्म समाज का ऊँचा आसन ग्रहण करेगा। विशेष कर अँगरेज़ी भाषा में हरि बाबू के अधिकार

और दर्शन शास्त्र में उसकी पारदर्शिता के सम्बन्ध में उसका यश विद्यालय के छात्रों के द्वारा ब्राह्म सामाज के बाहर भी दूर दूर तक फैल गया था।

इन सब गुणों के कारण अन्यान्य ब्राह्मो की भाँति सुशीला भी हरि बाबू पर विशेष श्रद्धा रखती थी। ढाके से कलकत्ते आते समय हरि बाबू के साथ परिचय होने के लिए उसके मन में विशेष उत्सुकता भी उत्पन्न हुई थी।

आखिर प्रसिद्ध हरिश्चन्द्र बाबू के साथ केवल परिचय ही होकर नहीं रहा किन्तु, थोड़ेही दिनों में, सुशीला के प्रति अपने हृदय का अनुराग दिखलाने मे हरि बाबू ने कुछ संकोच न किया। स्पष्ट रूप से उसने सुशीला के निकट प्रेम भले ही प्रकट न किया हो, किन्तु सुशीला का अभाव-मोचन, उसकी त्रुटि का संशोधन, उसका उत्साह-वर्द्धन तथा उसकी उन्नति-साधन करने के लिए वह इस प्रकार साकांक्ष रहता था कि सभी ने यह समझ लिया कि वह इस लड़की को विशेष रूप से अपनी उपयुक्त संगिनी बनाना चाहता है।

सुशीला ने जब जाना कि मैं ने प्रसिद्ध हरि बाबू के चित्त पर विजय प्राप्त की है तब वह मन में कुछ कुछ भक्ति के साथ गर्व का अनुभव करने लगी।

लड़की वाले की ओर से कोई प्रस्ताव उपस्थित न होने पर भी हरि बाबू के ही साथ सुशीला का ब्याह होना जब सभी ने स्थिर किया था तब सुशीला ने भी मन ही मन उस में योग

दिया था। सुशीला की एक विशेष उत्कण्ठा का विषय यह हो गया था कि हरि बाबू ने ब्राह्म समाज के जिस हित-साधन के लिए अपना जीवन उत्सर्ग किया है, उस हित-साधन में उसके उपयुक्त मैं किस प्रकार कार्य कर सकूँगी और उसके प्रत्येक कार्य में साहाय्य दे सकूँगी। विवाह की यह कल्पना उसके लिए भय, आवेग और कठिन उत्तरदायित्व-ज्ञान द्वारा बने हुए पत्थर के दुर्ग की भाँति अभेद्य मालूम होने लगी। वह केवल सुख से रहने का क़िला नहीं है, वह तो युद्ध करने के ही लिए रचा गया है। उस क़िले पर अधिकार करना सहज नहीं है।

इसी अवस्था में यदि विवाह होजाता तो किसी तरह कन्यापक्ष वाले इस ब्याह को सौभाग्य ही मानते। किन्तु हरि बाबू अपने उत्सर्ग किये हुए महान् जीवन की ज़िम्मेवारी को इतनी ऊँची दृष्टि से देखता था कि केवल प्रेम से आकृष्ट होकर ब्याह करना उसने अपने लिए अयोग्य समझा। इस विवाह से ब्राह्म समाज का कहाँ तक लाभ पहुँचेगा, यह भली भाँति बिना सोचे वह इस कार्य में प्रवृत्त न हो सका। इस कारण वह प्रेम की दृष्टि से नहीं, बल्कि ब्राह्म समाज की दृष्टि से सुशीला की परीक्षा करने लगा।

इस प्रकार परीक्षा करते समय परीक्षा देनी भी पड़ती है। हरि बाबू परेशचन्द्र के घर में सुपरिचित हो गया। उसे अपने घर के लोग हरि बाबू कहते थे; यहाँ भी लोग उसे इसी नाम से पुकारने लगे। अब वह इस घर में केवल अँगरेज़ी विद्या का

भाण्डार, तत्त्वज्ञान का आधार और ब्राह्म समाज के मङ्गल का अवतार न समझा जाकर मनुष्य रूप में ही समझा गया। अब वह केवल श्रद्धा और सम्मान का अधिकारी न रह कर अच्छे बुरे की समालोचना का विषय भी हो गया। उसकी बात से कभी कोई प्रसन्न होता था और कभी अप्रसन्न भी।

आश्चर्य का विषय यह है कि हरि बाबू के जिस भाव ने पहले दूर से सुशीला की भक्ति आकर्षित की थी, वह भाव निकटस्थ होकर उसे आघात करने लगा। ब्राह्मसमाज में जो कुछ सत्य, मङ्गल और मनोरम है उसके अभिभावक होकर हरि बाबू ने उस की रक्षा का भार लिया इस कारण उक्त पदार्थ अत्यन्त असंगत रूप में छोटे से देख पड़ने लगे। सत्य के साथ मनुष्य का यथार्थ सम्बन्ध भक्ति का ही सम्बन्ध है। इस से मनुष्य स्वभावतः नम्र हो जाता है। जहाँ भक्ति का सम्बन्ध नहीं है, वहाँ लोग अपने को बहुत बड़ा देखते हैं। जहाँ अहङ्कार का उदय हुआ वहाँ अपनी क्षुद्रता बृहत् आकार में दिखाई देने लगती है। सुशीला यहाँ परेश बाबू और हरिश्चन्द्र के अन्तर की आलोचना मनही मन बिना किये न रह सकी। परेश बाबू के शान्ति-परिपूर्ण मुख की निर्मल शोभा देखने से सत्य का वह महत्व लक्षित होता है जिसे कि वे हृदय में धारण करते हैं; किन्तु हरि बाबू में और ही बात है—उसका ब्राह्मत्व, उग्ररूप से, प्रकट होने के लिए और सब कुछ छिपा कर क्या बातचीत और क्या काम काज सभी के द्वार बुरे तौर पर प्रकाशित हो जाता है।

हरि बाबू ब्राह्मसमाज के कल्याण पर लक्ष्य करके विचार करते समय जब परेश बाबू को भी बिना अपराधी बनाये नहीं छोड़ता था तब सुशीला चुटीली नागिन की भाँति ऐंठने लग जाती थी। उन दिनों वङ्गदेश के अँगरेज़ी शिक्षित समाज में भगवद्गीता की चर्चा न थी किन्तु परेश बाबू सुशीला को सुना कर कभी कभी गीता पढ़ते थे। महाभारत भी उन्होंने सम्पूर्ण पढ़कर सुशीला को सुनाया था। हरि बाबू को यह अच्छा नहीं लगता था। इन ग्रन्थों को वह ब्राह्मसमाज से उठा देने का पक्षपाती था। वह आप भी इन ग्रन्थों को नहीं पढ़ता था। रामायण, महाभारत और भगवद्गीता को वह हिन्दुओं की निज की सामग्री जान उन्हें अलग रखना चाहता था। धर्म-शास्त्रों के बीच उसे एकमात्र बाइबल पर निष्ठा थी। परेश बाबू अपनी शास्त्र-चर्चा और सामान्य सामान्य विषयों में ब्राह्म-अब्राह्म की सीमा-रक्षा करके नहीं चलते थे, इससे हरि के अङ्ग में मानों काँटे गड़ते थे। परेश के आचरण में प्रकट या गुप्त रीति से कोई किसी प्रकार का दोषारोपण करे, इस औद्धत्य को सुशीला कभी सह नहीं सकती थी। इस प्रकार का उजड्डपन प्रकाशित होने ही से हरि सुशीला की दृष्टि से उतर गया।

हरि बाबू के साम्प्रदायिक उत्साह के अत्याचार और हृदय के संकीर्ण विचार तथा नीरसता के कारण यद्यपि सुशीला का मन भीतर ही भीतर दिनों दिन उस पर से विमुख होता जाता था तथापि हरि बाबू से ब्याह होने के

सम्बन्ध में उस के मन में कोई तर्क-वितर्क या सन्देह न था। धर्म-समाज-सम्बन्धी कारख़ानों में जो लोग अपने ऊपर ख़ूब मोटे मोटे अक्षरों में "यतो धर्मस्ततो जयः" लिखा करते हैं उन की धार्मिकता पर अन्यान्य लोग भी क्रमशः श्रद्धा करने लग जाते हैं, यहाँ तक कि परेश बाबू भी हरिश्चन्द्र के दावे को मन ही मन अग्राह्य नहीं करते थे। सभी लोग हरि बाबू को ब्राह्मसमाज का एक होनहार अवलम्ब स्वरूप जानते थे। वे (परेश) भी विरुद्ध विचार न करके उसका साथ देते थे। इस कारण हरि बाबू के सदृश विशिष्ट जन के लिए सुशीला उपयुक्त होगी या नहीं, यही उन की चिन्ता का विषय था। सुशीला के लिए हरि बाबू कहाँ तक उपादेय होगा, इस पर वे कभी ध्यान न देते थे।

इस विवाह के प्रस्ताव पर जैसे और लोग सुशीला की बात सोचना आवश्यक नहीं समझते थे वैसे सुशीला भी अपनी बात सोचना अनावश्यक समझती थी। ब्राह्म समाज के लोगों की भाँति उस ने भी अपने मन में धारणा कर ली थी कि हरि बाबू जिस दिन कहेंगे—मैं इस लड़की को ग्रहण करने को तैयार हूँ, उसी दिन मैं विवाह-रूप अपने महत् कर्तव्य को स्वीकार कर लूँगी।

ऐसा ही भाव चला आ रहा था। इसी अवसर में उस दिन गौरमोहन का पक्ष लेकर हरि बाबू के साथ जो सशीला के दो चार तीव्र वाक्यों का आदान प्रदान हो गया था

उसका स्वर सुन कर ही परेश बाबू के मन में सन्देह उपजा कि सुशीला को प्राय: पूर्ण रूप से हरि बाबू पर श्रद्धा और भक्ति नहीं है। शायद दोनों के स्वभाव में मेल न होने का कोई कारण होगा। इसी लिए शिवसुन्दरी जब उन से सुशीला के ब्याह की बात कह रही थी तब परेश पहले की तरह उस में ज़ोर न दे सके। उसी दिन शिवसुन्दरी ने सुशीला को एकान्त में बुला कर कहा—"तुमने अपने बाबूजी को चिन्तित कर दिया है।"

यह सुनकर सुशीला चौंक उठी। उसके लिए इस से बढ़ कर कष्ट का विषय हो नहीं सकता था कि मैं भूल कर भी परेश बाबू के उद्वेग का कारण होऊँ। उसने डर कर पूछा—मैंने क्या किया है?

शिवसुन्दरी—क्या जानूँ बेटी! उनके मन में यह सन्देह उपजा है कि तुम हरि बाबू को नहीं चाहती। ब्राह्म समाज के सभी लोग जानते हैं कि हरि बाबू के साथ तुम्हारा ब्याह एक तरह से स्थिर हो गया है। इस अवस्था में यदि तुम—

सुशीला—मैंने तो इस विषय में कभी किसी से कुछ नहीं कहा-सुना है।

सुशीला के चकित होने का कारण था। वह हरि बाबू के व्यवहार से बराबर रुष्ट होती आई है सही किन्तु वैवाहिक प्रस्ताव के विरुद्ध वह कभी कोई बात मन में नहीं लाई। कारण यह था कि विवाह के सम्बन्ध में सुख-दु:ख की जो बातें विचारणीय हैं, उन्हें वह नहीं जानती थी।

सोचते सोचते उसे यह बात याद हो आई कि उस दिन परेश बाबू के सामने ही मैंने हरि बाबू के प्रति स्पष्ट रूप से क्रोध प्रकट किया था। इसी से वे उद्विग्न हुए हैं। यह सोच कर उसके हृदय में चोट लगी। ऐसी असंयतशीलता उस ने पहले कभी प्रकाश न की थी। उसने मनही मन संकल्प किया कि अब आगे मैं कभी ऐसा न करूँगी।

आज हरि बाबू के आते ही शिवसुन्दरी ने उन्हें ओट में लेजाकर कहा—हरि बाबू, आप मेरी सुशीला के साथ ब्याह करेंगे, यह बात सभी कहते हैं, किन्तु आप के मुँह से मैंने कभी कोई बात नहीं सुनी। यदि सचमुच आप का ऐसा ही अभिप्राय हो तो साफ़ साफ़ क्यों नहीं कहते?

हरि बाबू अब विलम्ब न कर सके। अब वे सुशीला को किसी तरह बन्दी कर लेने ही से निश्चिन्त होंगे। उस की भक्ति और ब्राह्मसमाज की हितचिन्तना के सम्बन्ध में योग्यता की परीक्षा पीछे भी हो सकेगी। हरि बाबू ने शिवसुन्दरी से कहा—यह कहने की अभी आवश्यकता नहीं थी इसी से नहीं कहा। मैं सुशीला के अट्ठारहवें वर्ष की प्रतीक्षा कर रहा था।

शिवसुं०—यह आप की अत्युक्ति है। हम तो स्त्रियों के लिए चौदह वर्ष की आयु को ही यथेष्ट समझती हैं।

उस दिन चाय पानी की टेबल के समीप परेश बाबू सुशीला का भाव देख कर आश्चर्यान्वित हो गये। हरि बाबू की और दिन सुशीला इतनी ख़ातिर न करती थी। आज

जब हरि बाबू जाने लगे तब उसने उनको लावण्यलता की एक नई शिल्पकला का परिचय देने के बहाने कुछ देर और बैठने का अनुरोध किया।

परेश बाबू का मन निश्चिन्त हुआ। उन्होंने अपने पहले ख़याल को ग़लत समझा। बल्कि वे अपनी भूल पर मन ही मन हँसे। उन्होंने सोचा, शायद इन दोनों में कोई आन्तरिक प्रणय-कलह हुआ था, जो अब मिट गया है।

उसी दिन बिदा होते समय हरि बाबू ने परेश के पास विवाह का प्रस्ताव उपस्थित किया। उन्होंने जनाया—अब हम सम्बन्ध में विलम्ब करना नहीं चाहते।

परेश बाबू ने कुछ आश्चर्ययुक्त होकर कहा—किन्तु आप तो अट्ठारह वर्ष से कम उम्र में लड़की का ब्याह होना अनुचित बताते हैं; बल्कि इस बात को आप ने अख़बार में भी प्रकाशित किया है।

हरि—सुशीला के सम्बन्ध में यह बात नहीं चलेगी। क्योंकि उस के मन का जैसा कुछ भाव देखा जाता है, वैसा बड़ी उम्र की लड़की का भी कहीं देखने में नहीं आता।

परेश बाबू ने शान्तिपूर्वक किन्तु दृढ़ता के साथ कहा—हाँ, यह हो सकता है परन्तु जब कोई विशेष आवश्यकता नहीं देखी जाती तब आप के मतानुसार राधा रानी की पूर्ण अवस्था होने तक ब्याह की अपेक्षा करना ही उचित है।

हरि बाबू अपनी मानसिक दुर्बलता पर लज्जित होकर

बोले—जी हाँ, यह अवश्य उचित है। मेरी इच्छा सिर्फ इतनी ही है कि एक दिन सब को बुलाकर ईश्वर का नाम ले व्याह की बात पक्की कर ली जाय।

परेश—हाँ, यह हो सकता है।

[१७]

दो तीन घंटे सोने के बाद नींद टूटने पर जब गौरमोहन ने देखा कि पास ही विनय सो रहा है तब उसका हृदय आनन्द से परिपूर्ण हो गया। स्वप्न में किसी एक प्रिय वस्तु को खो कर जागने पर देखा जाय कि वह खो नहीं गई है तो उस समय जैसा आनन्द जान पड़ता है वैसा ही गौर को भी हुआ। विनय को तज देने से गौरमोहन का जीवन कितना निर्बल हो जाता, इसका अनुभव आज वह निद्रा-भङ्ग के अनन्तर विनय को पास में देख कर कर सका। इस आनन्द के आवेश में चञ्चल हो गौरमोहन ने विनय को हाथ से हिला कर जगा दिया और कहा—चलो, आज एक काम है।

गौरमोहन का प्रतिदिन सबेरे का एक नियमित काम था। वह अड़ोस पड़ोस के छोटे लोगों के घर जाता-आता था। उन लोगों का उपकार करने या उन्हें उपदेश देने के लिए नहीं, वरन् उन सबों से केवल भेंट करने ही के लिए वह जाता था। शिक्षित दल में उसका इस प्रकार जाने-आने का व्यवहार न

था। गौरमोहन को वे लोग बाबाजी कहते और हाथ में हुक्का देकर उसका आदर करते थे। केवल उन लोगों का आतिथ्य ग्रहण करने ही के लिए गौर ने ज़बर्दस्ती तम्बाकू पीने की आदत लगा ली थी।

इस दल में गौर का सर्वप्रधान भक्त नन्द था। नन्द बढ़ई का बेटा था। बाईस वर्ष की उसकी उम्र थी। वह अपने बाप की दूकान में लकड़ी के सन्दूक बनाया करता था। शिकारियों के दल में नन्द की तरह बन्दूक का अचूक निशाना किसी का न था। क्रिकेट के खेल में भी वह अद्वितीय था।

गौरमोहन ने अपने आखेट और क्रिकेट के खेलनेवाले दल में भद्र छात्रों के साथ इन बढ़ई और लुहार के लड़कों को मिला लिया था। इस मिले हुए दल में नन्द सब प्रकार के खेल और व्यायाम में सब से बढ़ा चढ़ा था। कोई कोई कुलीन छात्र उस से डाह रखते थे; किन्तु गौरमोहन के दबाव से सभी उस को अपने दल का सरदार मानते थे।

इसी नन्द के पैर पर, कई दिन हुए, रुखानी गिर पड़ने से घाव हो गया था जिस से वह क्रीड़ास्थल में न जा सकता था। विनय के सम्बन्ध में गौर का मन कई दिनों से विकल था अतः वह अपने उन साथियों के घर न जा सकता था। आज सबेरे ही विनय को साथ ले वह बढ़ई के टोले में जा पहुँचा।

नन्द के दोमंज़िले खुले घर के फाटक के पास आते ही उसे भीतर से स्त्रियों के रोने का शब्द सुन पड़ा। नन्द का बाप या और कोई बन्धु-बान्धव घर पर न था। पास ही एक तम्बाकू की दुकान थी। उस दूकानदार ने आकर कहा—नन्द आज सबेरे मर गया, सब लोग उसे दाह करने के लिए ले गये हैं।

नन्द मर गया! ऐसा स्वस्थ, ऐसा हट्टा कट्टा जवान, ऐसा तेज, ऐसी शक्ति, ऐसा प्रौढ़ हृदय, इतनी थोड़ी उम्र—वही नन्द आज सबेरे मर गया है। गौर के मारे बदन में सन्नाटा छा गया। वह पत्थर की मूर्त्ति की भाँति खड़ा रहा। नन्द एक साधारण बढ़ई का लड़का था। उसके अभाव में उसके प्रेमियों को कुछ काल के लिए संसार सूना सा मालूम होना असंभव नहीं है। उस की मृत्यु पर शोक करने वालों की संख्या अवश्य कम होगी; किन्तु आज गौर-मोहन की दशा विचित्र हो गई है। उसे नन्द की मृत्यु बिलकुल असंगत और असंभव मालूम हुई है। गौर ने उसे बड़ा ही दिलेर देखा था, वह यथार्थ में एक प्रौढ़ हृदय का मनुष्य था—इतने लोग जीते हैं किन्तु नन्द का सा दृढ़ जीवन कहीं देखने में नहीं आता।

उसकी मृत्यु कैसे हुई? इस बात के पूछने पर मालूम हुआ कि उसे पक्षाघात रोग होगया था। नन्द के पिता ने डाकृर को बुलाना चाहा, किन्तु नन्द की माँ ने ज़ोर बाँध

कर कहा कि बेटे को भूत लगा है। भूत झाड़ने वाला ओझा सारी रात उस के पास बैठ कर झाड़ फूँक और मार पीट करता रहा। पर भूत ऐसा प्रबल था कि वह उसे पकड़ कर ले ही गया। बीमारी के आरम्भ में गौरमोहन को ख़बर देने के लिए नन्द ने एक बार अनुरोध किया था। किन्तु इस भय से कि वह आकर डाक्टरी मत से इलाज करने के लिए ज़िद करेगा, नन्द की माँ ने किसी तरह गौर के पास ख़बर न भेजने दी।

वहाँ से लौटते समय विनय ने कहा—कैसी मूर्खता है। रोग क्या और इलाज क्या!

गौर—इस मूर्खता की बात को एक ओर रख कर और अपने को इस के बाहर समझ कर तुम शान्ति लाभ न करो। यह मूर्खता कितनी बड़ी है, और इस की सज़ा क्या है, इसे यदि तुम स्पष्ट रूप से देख सकते तो इतनी सी एक आक्षेप की बात कहकर इस व्यापार को अपने पास से अलग कर डालने की चेष्टा न करते।

मन की उत्तेजना के साथ गौरमोहन की गति क्रमशः बढ़ने लगी। विनय उस की बात का कोई उत्तर न दे कर उस के साथ साथ लम्बी डगों से चलने लगा।

गौर कुछ देर चुप चाप चल कर सहसा बोला—नहीं, यह न होगा कि मैं इस विषय को सहज ही सह लूँ। यह जो भूत का ओझा आकर मेरे नन्द को मार गया है, उसकी सख़्त चोट मेरे कलेजे में लगी है—मेरे समस्त देश को

लगी है। मैं इन कामों को साधारण समझ कर उपेक्षा नहीं कर सकता। इससे देश का विशेष अनिष्ट होने की संभावना है।

विनय इस पर भी जब कुछ न बोला तब गौर ने गरज कर कहा—विनय, तुम जो मन में सोच रहे हो वह मैं बखूबी समझ गया हूँ। तुम सोच रहे हो, इस का प्रतीकार नहीं है, या इसके प्रतीकार का समय उपस्थित होने में अभी बहुत विलम्ब है। किन्तु मैं ऐसा नहीं सोचता! यदि सोचता तो मैं जी न सकता। जो कुछ मेरे देश को दुखी कर रहा है उसका प्रतीकार ज़रूर है, चाहे वह कितना ही क्लिष्ट या प्रबल क्यों न हो। और एक मात्र हमी लोगों के हाथ में उसका प्रतीकार है यह विश्वास मेरे मन में खूब दृढ़ है। इसी कारण मैं चारों ओर के इतने दुःख, दुर्गति और अपमान को सहन कर रहा हूँ।

विनय—इतनी बड़ी देश-व्यापिनी दुर्गति के आगे विश्वास को खड़ा रख सकने के लिए मेरा साहस नहीं होता।

गौर—दुर्गति या दुःख चिरस्थायी रह सके, इसे मैं किसी तरह नहीं मान सकता—सारे ब्रह्माण्ड की ज्ञान-शक्ति और प्राण-शक्ति उसे भीतर या बाहर से केवल आघात पहुँचा रही है। विनय, मैं तुमसे बराबर कहता आता हूँ कि मेरा देश मुक्त होगा ही, इस बात को तुम कभी स्वप्न में भी असम्भव न समझो। इस बात पर दृढ़ विश्वास रख कर ही हमें

सदा सावधान रहना होगा। भारतवर्ष स्वाधीन होने के लिए भविष्य में किसी दिन लड़ाई करेगा इसी पर निर्भर हो कर तुम निश्चिन्त बैठे हो। मैं कहता हूँ, लड़ाई आरम्भ हो गई है, पल पल पर उद्योग चल रहा है। इस समय यदि तुम हाथ पर हाथ रख कर बैठे रहो तो इससे बढ़ कर कायरता और हो ही क्या सकती है?

विनय—देखो गौर बाबू, तुम से मेरा एक मत-भेद है। मैं यह देखता हूँ कि हमारे देश में जहाँ तहाँ जो काम बराबर हो रहा है और जो बहुत दिनों से होता आया है उसे तुम रोज़ रोज़ नई दृष्टि से देख रहे हो। हम अपने श्वास प्रश्वास को जिस तरह भूले हुए हैं वैसे ही इन सबों को भी। इनसे हम न किसी तरह की आशा करते हैं और न निराशा ही। इनसे न हमको हर्ष है न विषाद। समय बड़ी उदासीनता के साथ बीता जा रहा है; चारों ओर के घेरे में पड़ कर हम न अपनी बात सोच सकते हैं और न अपने देश की ही।

एकाएक गौरमोहन का मुँह लाल हो गया, कपार की शिरायें तन गईं। वह बड़े वेग से एक जोड़ी गाड़ी के पीछे दौड़ चला और अपने वज्र-नाद से सड़क के सब लोगों को चकित करके बोला—"गाड़ी को रोको!" एक मोटा सा बाबू घड़ी चेन लगाये गाड़ी हाँकता जा रहा था। उसने एक बार पीछे फिर कर देखा। एक आदमी को दौड़ते हुए आते

देख वह दोनों तेज़ घोड़ों को चाबुक मार कर क्षण भर में अदृश्य हो गया।

एक बूढ़ा मुसलमान सिर पर एक टोकरे में फल, तरकारी, अंडा, रोटी और मक्खन आदि खाद्य-सामग्री लिये किसी अँगरेज़ मालिक की पाकशाला को जा रहा था। चेन-चश्माधारी बाबू ने उसको गाड़ी के सामने से हट जाने के लिए ज़ोर से पुकार कर कहा था। उसको वृद्ध ने न सुना, गाड़ी उसके ऊपर होकर चली जाती, परन्तु एक आदमी ने झट उसका हाथ पकड़ कर अपनी ओर खींच लिया। किसी तरह उसके प्राण बच गये। किन्तु टोकरा उसके सिर पर से गिर पड़ा और उसमें की सभी चीजें इधर उधर लुढ़क गईं। बाबू ने क्रुद्ध हो कर कोचबक्स से घूम उसे डैम सुअर कह कर गाली दी और तड़ से उसके मुँह पर एक चाबुक जमा दिया और घोड़ों की रास ढीली कर दी। चाबुक की चोट से उसके कपार पर लोहू निकल आया। बुड्ढे ने अल्ला कह कर लम्बी साँस ली और जो चीजें खराब न हुई थीं, उन्हें चुन कर वह टोकरे में रखने लगा। गौरमोहन आगे न बढ़, बिखरी हुई चीज़ों को बटोर कर उसके टोकरे में रखने को उद्यत हुआ। मुसलमान खानसामा ने सज्जन पथिक के इस व्यवहार से अत्यन्त संकुचित होकर कहा—बाबू, आप क्यों तकलीफ़ कर रहे हैं? ये चीज़ें तो ख़राब हो गईं, अब ये किसी काम में न आयेंगी। गौरमोहन भी इस काम को अनावश्यक

समझता था और वह यह भी जानता था कि जिसको मदद दी जा रही है वह सकुचा जा रहा है। यथार्थ में साहाय्य के ख़याल से ऐसे काम का मूल्य अधिक नहीं है किन्तु एक भद्र मनुष्य ने जिसका अनुचित अपमान किया है उस अपमानित व्यक्ति के साथ एक भद्र मनुष्य सहानुभूति प्रकट कर के उसके अपमान का कुछ अंश अपने ऊपर लेना चाहता है, यह बात रास्ते के लोग न समझ सकते। टोकरा भर जाने पर गौर ने उससे कहा—जो चीज़ तुम्हारी नुक्सान हो गई है उसका दाम तुम्हें मालिक से न मिलेगा। इसलिए तुम मेरे घर चलो, मैं पूरा दाम देकर तुम से ये सब चीज़ें मोल ले लूँगा। किन्तु एक बात तुमसे कहता हूँ, बिना कुछ कहे सुने तुमने जो चुप चाप अपमान सह लिया है, इसके लिए तुमको अल्ला माफ़ न करेगा।

मुसलमान—जो क़सूरवार होगा उसीको अल्ला सज़ा देगा, मुझे क्यों देगा?

गौर—जो अन्याय सहता है वह भी दोषी है। क्योंकि अन्याय सहने ही से संसार में अन्याय की सृष्टि होती है। अन्याय न सहने से कोई किसीके ऊपर अनुचित व्यवहार न कर सकेगा। मेरी बात का मतलब न समझो तो भी इतना याद रक्खो कि सहिष्णुता गुण नहीं है, उसे एक प्रकार का दोष ही समझो, सहनशील लोग दुष्टों की संख्या बढ़ाते हैं। तुम्हारे मुहम्मद साहब इस बात को जानते थे, इसी से वे सहनशील बनकर धर्म का प्रचार नहीं करते थे।

वहाँ से गौरमोहन का घर नज़दीक न था, इस लिए वह वृद्ध मुसलमान को विनय के घर ले गया। विनय की टेबल के पास, दराज़ के सामने, खड़े होकर उसने विनय से कहा—रुपया निकालो।

विनय—तुम इतने व्यग्र क्यों होते हो? बैठो, मैं अभी देता हूँ। यह कह कर विनय चाबी खोजने लगा, पर चाबी न मिली। गौर ने कुंजी का इन्तज़ार न कर झट बन्द दराज़ को ज़ोर से खींचा। ताला टूट जाने से दराज़ बाहर निकल आया।

दराज़ खुलते ही उसमें रक्खे हुए परेश बाबू के घर के सब लोगों के पूरे चित्र पर सब से पहले उसकी नज़र गई। यह चित्र विनय ने अपने छोटे मित्र सतीश के द्वारा प्राप्त किया था।

रुपया लेकर गौर ने उस मुसलमान को दे बिदा किया, किन्तु फ़ोटो के सम्बन्ध में कुछ न कहा। गौर को इस विषय में चुप रहते देख विनय ने भी उसका कोई ज़िक्र न किया। चित्र के सम्बन्ध में दो चार बातें हो जातीं तो विनय का मन स्वस्थ होजाता।

गौर एकाएक बोल उठा—अच्छा, मैं चलता हूँ।

विनय—वाह! तुम अकेले जाओगे! माँ ने मुझको तुम्हारे ही यहाँ खाने को बुलाया है, इसलिए मैं भी तुम्हारे साथ चलता हूँ।

दोनों घर से बाहर हुए। रास्ते में गौरमोहन अब की

बार कुछ न बोला । दराज़ के चित्र ने उस को सहसा स्मरण करा दिया कि विनय के मन की एक प्रबल धारा ऐसे गुप्त मार्ग से बह रही है जिसके साथ गौर के जीवन का कोई सम्पर्क नहीं है ।

गौर के चुप होजाने का कारण विनय की समझ मे आगया । किन्तु इस नीरवता के घेरे को अपने आप तोड़ने में उसे सङ्कोच होने लगा । गौरमोहन का मन जिस जगह आकर रुकता है वहाँ सच्चा व्यवधान है—इसका अनुभव विनय को भी हुआ ।

घर के पास आते ही उन्होंने देखा कि महिम फाटक के पास खड़े खड़े रास्ते की ओर देख रहे हैं । दोनों मित्रों को एक साथ देख उन्होंने कहा—क्या मामला है ? कल तो तुम दोनों सारी रात जागते रहे । मैं सोच रहा था, शायद तुम दोनों सड़क के किनारे कहीं सो गये होगे । दिन तो बहुत चढ़ आया । जाओ, विनय बाबू, तुम नहा लो ।

विनय को ताकीद कर नहाने को भेज महिम ने गौर को एक तरफ़ ले जाकर पूछा—जो बात मैंने तुमसे कही थी, उसे एक बार फिर सोच देखो । यदि विनय को तुम अनाचारी जान कर नकारते हो तो आज कल के बाज़ार में नैष्ठिक हिन्दू वर तुम्हें कहाँ मिलेगा ? उसके केवल नैष्ठिक होने ही से तो काम न चलेगा, उसे पढ़ा लिखा भी तो होना चाहिए । अँगरेज़ी पढ़ा लिखा हिन्दू-बालक आचारनिष्ठ न होने पर

यद्यपि हिन्दू-धर्म के मत से प्रशस्त नहीं है, तो भी आज कल के लिए वैसा अग्राह्य भी नहीं है। अगर तुम्हारी लड़की होती तो इस विषय में मेरे साथ तुम्हारे मत का ठीक मेल हो जाता।

गोर—अच्छा तो हर्ज क्या है! विनय भी इसमें कोई उज्र न करेगा।

महिम—मेरी बात सुनो। विनय की आपत्ति के लिए कौन सोचता है, डर तो तुम्हारी ही आपत्ति का है। तुम्हारे उज्र का कोई जवाब नहीं। तुम एक बार अपने मुँह से विनय को समझाओ—मैं और कुछ नहीं चाहता। इसका फल चाहे जो हो।

गोर—अच्छा।

महिम ने मन में कहा—तो अब मैं हलवाई की दूकान में पकवान की और ग्वाले की दूकान में दही दूध की फ़र्मायश दे सकता हूँ।

गोर ने मौक़ा पाकर विनय से कहा—शशिमुखी के साथ तुम्हारे ब्याह के लिए दादा जी (महिम) बहुत ज़ोर देते हैं। अब तुम क्या कहते हो?

विनय—तुम पहले अपने मन की बात कहो।

गोर—मैं तो कहता हूँ, हानि क्या है!

विनय—पहले तो तुम हानि ही समझते थे! हम तुम दोनों में कोई ब्याह न करेगा, यह सिद्धान्त एक तरह से स्थिर हो गया था न!

गौर—अब यह सिद्धान्त हुआ कि तुम व्याह करोगे, मैं न करूँगा।

विनय—यह क्यों, एक तीर्थ के यात्रियों का भिन्न फल क्यों?

गौर—पृथक् फल होने के ही भय से यह व्यवस्था की जाती है। विधाता किसी किसी मनुष्य को स्वभावतः ख़ूब भारग्रस्त बना करके सिरजते हैं, और किसीको बिना कुछ भार दिये ही उत्पन्न करते हैं। ये दोनों जब साथ साथ चलते हैं तब बोझ बराबर बाँट लिया जाता है। तुम विवाह करने पर जब कुछ दायग्रस्त होगे तब तुम को और हम को बराबर चाल से चलना होगा।

विनय ने मुस्करा कर कहा—यदि यही मतलब है तो मेरे ही ऊपर कुछ अधिक भार रहने दो।

गौर—सच कहो, तुमको अधिक भार लेने में कोई उज़्र तो न होगा?

विनय—तुम जो कहोगे वही होगा।

गौरमोहन ने इस विवाह के प्रस्ताव पर क्यों उत्साह प्रकाश किया है, यह विनय समझ गया। पीछे विनय कहीं परेश बाबू के घर विवाह न कर ले, यही सन्देह गौर के मन में हुआ है। यह समझ कर विनय मन ही मन हँसा। मध्याह्न भोजन के अनन्तर सोकर दोनों ने रात के जागने की कसर निकाल ली। उस दिन दोनों मित्रों में और कोई

विशेष वार्तालाप न हुआ। जगत् के ऊपर सायंकालिक अन्धकार का पर्दा पड़ने पर जब प्रेमिक जनों के मन का पर्दा उठ जाता है ठीक उसी समय विनय छत के ऊपर बैठ कर सीधे आकाश की ओर देख कर बोला—गौर बाबू, मैं तुमसे एक बात कहना चाहता हूँ। मेरी समझ में हमारे स्वदेश-प्रेम में एक बहुत बड़ी त्रुटि है। हम भारतवर्ष को आधे रूप में देखते हैं।

गौर—कैसे ?

विनय—हम लोग भारतवर्ष को केवल पुरुषों का ही देश देखते हैं, स्त्रियों का कहीं कुछ अधिकार नहीं देखते।

गौर—तुम अँगरेज़ों की तरह स्त्रियों को घर-बाहर, जल-स्थल, हाट-बाट, आहार-विहार आदि सभी कामों में सर्वत्र देखना चाहते हो। उससे यही फल होगा कि पुरुष की अपेक्षा स्त्री का ही अधिकार अधिक देखने में आवेगा। इससे फिर तुम्हारी दृष्टि में असमञ्जस दोष बना ही रहेगा।

विनय—नहीं नहीं, मेरी बात को इस तरह ठट्ठे में उड़ा देने से काम न चलेगा। मैं अँगरेज़ों की तरह देखूँ या न देखूँ यह बात तुम क्यों छेड़ते हो। मैं तुमसे सच कहता हूँ कि हम लोग स्त्रियों के उचित अधिकार पर भी कभी ध्यान नहीं देते। मानो यह ध्यान देने का कोई विषय ही नहीं है। तुम्हारे ही कथन से मैं कह सकता हूँ कि हम स्त्रियों के सम्बन्ध में कभी कुछ नहीं सोचते। तुम देश को मानो स्त्री-शून्य जानते

हो। इस तरह का जानना कभी यथार्थ नहीं कहा जा सकता।

गौर—मैं जब अपनी माँ को देखता हूँ, और उसे जानता हूँ तब मैं अपने देश की समस्त स्त्रियों को उसी जगह पाता हूँ और जानता हूँ।

विनय—यह बात तुमने अपना पक्ष प्रबल करने के लिए कुछ बना कर कह दी है। घर के कामों में लगे हुए घर के पुरुषों या स्त्रियों को अत्यन्त परिचित भाव से देखने को हम यथार्थ देखना नहीं कहते। मैं जानता हूँ कि अँगरेज़ों के समाज के साथ किसी बात की तुलना करने से तुम बिगड़ उठोगे, मैं यह नहीं चाहता। मैं ठीक ठीक नहीं कह सकता कि समाज में किस परिमाण से और कैसे भाव से हमारे देश की स्त्रियों के चलने से उसकी मर्यादा भङ्ग नहीं हो सकती, किन्तु यह स्वीकार करना ही होगा कि स्त्रियों के पर्देनशीन होने के कारण हमारा देश हमारे लिए आधा सत्य हो गया है। हम लोगों का हृदय पूर्ण प्रेम और पूर्ण शक्ति का परिचय नहीं दे सकता।

गौर—दिन और रात, समय के ये जैसे दो हिस्से हैं, वैसे ही पुरुष और स्त्री भी समाज के दो अंश हैं। समाज की स्वाभाविक अवस्था में स्त्रियाँ रात की ही भाँति प्रच्छन्न रहती हैं—उनके सभी काम गुप्त होते हैं। जहाँ समाज की अवस्था अस्वाभाविक है, वहाँ रात को ज़बर्दस्ती दिन बना डालते हैं।

वहाँ गैस जला कर कल चलाई जाती है, और रोशनी में सारी रात नाच-गान होता है—इससे फल क्या हुआ! फल यही हुआ कि रात का जो स्वाभाविक गूढ़ कार्य है वह नष्ट हो जाता है। परिश्रम बढ़ जाने से कष्ट होता है, क्षति-पूर्ण होना कठिन हो पड़ता है। मनुष्य पागल हो उठता है। यदि हम लोग स्त्रियों को भी उसी तरह प्रकाश-क्षेत्र में खींच ले आवें तो उनके पर्दे के भीतर के काम की व्यवस्था नष्ट हो जायगी, उससे समाज का स्वास्थ्य और शान्ति-भङ्ग होती है। समाज में एक प्रकार की उन्मत्तता प्रवेश करती है। उस उन्मत्तता को लोग शक्ति समझने लग जाते हैं, किन्तु वह शक्ति वास्तव में वृद्धि के लिए नहीं, विनाश ही के लिए होती है। स्त्री पुरुष दोनों समाज-शक्ति के दो किनारे हैं। पुरुष व्यक्त और स्त्री अव्यक्त है। इस अव्यक्त शक्ति को यदि व्यक्त करने की चेष्टा की जाय तो समस्त मूल धन खर्च हो जाने पर समाज का दिवाला निकला ही समझो। इसी लिए मैं कहता हूँ कि यदि पुरुष यज्ञ-भूमि में और स्त्रियाँ भाण्डार-घर में रहें तो स्त्रियों की अदृश्य अवस्था में भी यज्ञ सम्पन्न होगा ही। सम्पूर्ण शक्ति को एक ही ओर एक ही जगह, एक ही तरह जो खर्च करना चाहते हैं वे पागल हैं।

विनय—तुम जो कहते हो उसका मैं प्रतिवाद करना नहीं चाहता। किन्तु मैंने जो कहा है उसका प्रतिवाद तुम भी न करो—सच बात तो—

गौर—इस विषय पर अब बहस करोगे तो बात बहुत बढ़ जायगी। मैं क़बूल करता हूँ कि तुम स्त्रियों के सम्बन्ध में जितने तजरबेकार होगये हो उतना मैं नहीं हुआ हूँ—इसलिए तुम जो अनुभव कर रहे हो वह मुझे भी अनुभव कराने की चेष्टा करना कभी सफल न होगा। अतएव इस सम्बन्ध में मेरा और तुम्हारा मतभेद रहेगा ही, इसे मान लो।

गौरमोहन ने बात को उड़ा दिया, किन्तु बीज को उड़ा देने पर भी वह ज़मीन में जा पड़ता है और समय पाकर अङ्कुरित होता है। अब तक गौर ने अपने जीवन के हाते से स्त्रियों को एकबारगी हटा रक्खा था—उसे वह किसी तरह का अभाव या क्षति कहकर स्वप्न में भी कभी नहीं विचारता था। आज विनय की अवस्था का परिवर्तन देख संसार मे स्त्री-जाति की विशेष सत्ता और प्रभाव का कुछ कुछ अनुभव उसके मन में होने लगा। किन्तु इस प्रभाव का प्रयोजन क्या है, इसे वह किसी तरह स्थिर नहीं कर सकता था, इसी से विनय के साथ इस विषय पर बहस करना उसे अच्छा न लगता था। विषय को वह अस्वीकार भी नहीं कर सकता था और स्वीकार भी नहीं; इसी लिए वह इस विषय को आलोचना के बाहर रखना चाहता था।

रात को जब विनय अपने घर जाने के लिए तैयार हुआ तब आनन्दी ने उसे बुलाकर कहा—शशिमुखी के साथ तुम्हारे ब्याह की बात पक्की हो गई है न?

विनय ने सकुच कर कहा—हाँ, माँ,—गौर बाबू इस शुभ कार्य के बिचौनिया हैं।

आनन्दी ने कहा—शशिमुखी है तो अच्छी लड़की पर तुम लड़कपन मत कर बैठना। मैं तुम्हारे हृदय की बात जानती हूँ। तुम दुमना हो रहे हो, इसलिए इस काम को जल्द कर लेना चाहते हो। अब भी विचार कर देखने का समय है। तुम अब लड़के नहीं हो, संकोच में पड़कर बिना अपनी इच्छा के कोई काम करना ठीक नहीं।—यह कह कर उसने विनय की पीठ पर हाथ फेर दिया। विनय कुछ उत्तर न दे कर चुपचाप धीरे धीरे चला गया।

[१८]

विनय आनन्दी की इन बातों को सोचते सोचते घर गया। आनन्दी की कही हुई एक बात भी आज तक विनय के पास कभी अनादृत नहीं हुई। उस रात को उसके हृदय पर एक भारी बोझ सा जान पड़ा।

दूसरे दिन सबेरे उठकर मानों उसने एक बन्धन से मुक्त होने का भाव अनुभव किया। उसे यह सोचकर बड़ा हर्ष हुआ कि मैं ने गौरमोहन को एक बहुत बड़ा मूल्य देकर बन्धुत्व ऋण को चुका दिया है। शशिमुखी के साथ व्याह करने को राज़ी होकर उसने जीवन-व्यापी एक बन्धन स्वीकार किया

है, इससे अब उसको अपने दूसरी ओर के बन्धन को ढीला करने का अधिकार हुआ है। विनय समाज छोड़कर ब्राह्म परिवार में विवाह करने को लुब्ध हुआ है, गौरमोहन ने जो उसके प्रति यह अत्यन्त अयुक्त मन्देह किया था इस झूठ सन्देह के पास उसने शशिमुखी के ब्याह को हमेशा के लिए जामिन रख कर अपने को छुड़वा लिया। इस के बाद वह परेश बाबू के घर निःसंकोच हो जब तब जाने लगा।

अपने घर विनय का जाना-आना जिन्हें बुरा न लगता था, उनके घरवालों में हिल मिल जाना विनय के लिए कुछ भी कठिन न था। उसने ज्योंही अपने मन से गौरमोहन की ओर का संकोच दूर कर दिया त्योंही कुछ ही दिन में परेश बाबू के घर के सभी लोगों के लिए वह मानों पुराना आत्मीय सा हो गया।

केवल ललिता के मन में यह सन्देह कुछ दिनों तक ज़रूर था कि सुशीला का मन शायद कुछ विनय की ओर झुका है, इससे उसका मन कई दिन तक विनय के विरुद्ध लड़ने को तैयार हो जाता था। परन्तु जब उसे यह बात भली भाँति मालूम हो गई कि सुशीला का उसपर आन्तरिक प्रेम नहीं है तब उसके मन का विद्रोह दूर हुआ और उसके जी का बोझ हलका पड़ जाने से उसे बहुत आराम मालूम हुआ। अब विनय बाबू को एक असाधारण सज्जन मानने में उसे कोई बाधा न रही।

हरि बाबू भी विनय के व्यवहार से असन्तुष्ट न हुआ।

उसे यह बात अब विशेष रूप से स्वीकार करनी पड़ी कि विनय को शिष्टता का ज्ञान है, गौरमोहन को यह नहीं है। यही इस स्वीकृति का संकेत था।

विनय कभी हरिश्चन्द्र के सामने सामाजिक विषय पर कोई विवाद खड़ा करना नहीं चाहता था। सुशीला भी यही चाहती थी कि हरि बाबू के साथ विनय का वादानुवाद न हो। इसी कारण चाय पीते समय विनय के द्वारा कभी शान्ति-भङ्ग न होने पाती थी।

किन्तु हरि बाबू के परोक्ष में सुशीला स्वयं चेष्टा करके विनय को अपने सामाजिक मत की आलोचना में प्रवृत्त करती थी। गौरमोहन और विनय के सदृश शिक्षित लोग किस प्रकार देश के प्राचीन कुसंस्कारों का समर्थन कर सकते हैं, यह जानने का कुतूहल किसी तरह उसका कम न होता था। गौर और विनय को यदि वह न जानती होती तो किसी के द्वारा इन मतों के स्वीकृत होने पर वह कोई बात न सुन कर उस व्यक्ति को उपेक्षा की दृष्टि से देखती। किन्तु गौर को जब से उसने देखा है तब से वह किसी तरह अश्रद्धा करके उसको मन से दूर नहीं कर सकती थी। इसीसे सुयोग पाते ही घूम फिर कर वह विनय के साथ गौरमोहन के मत और उसके जीवन की आलोचना आरम्भ करती और प्रश्न पर प्रश्न करके विनय के पेट की बात निकाल लेती थी। परेश बाबू सुशीला को सब सम्प्रदायों का मत सुनने देना उसकी सुशिक्षा का उपाय समझते

थे । इसलिए वे इन मतमतान्तर की बातों में कभी किसी तरह की शङ्का नहीं करते थे और न उसमें बाधा ही डालते थे ।

एक दिन सुशीला ने विनय से पूछा—अच्छा यह तो बताइए कि गौरमोहन बाबू सचमुच ही जाति-भेद मानते हैं या केवल देशानुराग दिखाने के लिए ऐसा करते हैं ?

विनय—क्या आप सोपान के श्रेणी-विभाग को नहीं मानतीं ? उसमें भी तो नीच ऊँच की व्यवस्था है ।

सुशीला—नीचे से ऊपर चढ़ना होता है, इसलिए उसे मानती हूँ, नहीं तो मानने की आवश्यकता न थी । समान भूमि में सीढ़ी न मानने से भी काम चलता है ।

विनय—आपका यह कहना ठीक है, हम लोगों का समाज एक सीढ़ी (ज़ीना) है । सीढ़ी का जो उद्देश्य है, वही यहाँ भी है, अर्थात् नीचे से ऊपर को जाना । इस सीढ़ी के साथ मनुष्य-जीवन के परिणाम का दृढ़ सम्बन्ध है । यदि मैं समाज या संसार को परिणाम का कारण जानता तो फिर किसी विभाग-व्यवस्था का प्रयोजन न था । तब तो यूरोपीय समाज की भाँति प्रत्येक मनुष्य दूसरे की अपेक्षा अधिक अधिकार प्राप्त करने के लिए दंगा फ़साद करता ।

सुशीला—मैं आपकी बात को बखूबी नहीं समझती । मेरा प्रश्न यह है कि जिस उद्देश्य से समाज में वर्ण-भेद प्रचलित होना आप बताते हैं, वह उद्देश्य आपने कहाँ तक सफल होते देखा है, बताइए ।

विनय—पृथिवी में सफलता की सूरत देख पाना बड़ा कठिन है। भारतवर्ष ने जिस जाति-भेद के बल से सामाजिक समस्या का एक महत्व-पूर्ण उत्तर दिया था, वह अब भी लुप्त नहीं हुआ है। वह अब भी संसार में वर्त्तमान है। यूरोप भी सामाजिक समस्या का कोई समीचीन उत्तर नहीं दे सकता। वहाँ केवल धक्का-मुक्की, हाथा-पाई होती है। भारतवर्ष का यह उत्तर मानव-समाज में अब भी सफलता के लिए प्रतीक्षा किये हुए है।

सुशीला ने सकुच कर पूछा—आप क्रोध न करके सच सच कहें। आप ये सब बातें क्या गौरमोहन बाबू की प्रतिध्वनि की भाँति बोल रहे हैं, या इन बातों पर आपको पूर्ण विश्वास है?

विनय ने हँस कर कहा—मैं आपसे सच कहता हूँ। गौर बाबू की भाँति सब बातों पर मेरा पूर्ण विश्वास नहीं है। जब मैं जाति-भेद के नियम और समाज-गत दूषणों को देखता हूँ, तब मेरे मन में अनेक सन्देह उत्पन्न होते हैं। किन्तु गौरमोहन कहता है, बड़े को छोटा देखने ही से सन्देह उत्पन्न होता है। पेड़ की टूटी डाल और सूखे पत्ते को ही पेड़ की चरम अवस्था मान लेना बुद्धि का दोष है। टूटी डाल की प्रशंसा करने को मैं नहीं कहता। किन्तु जिस वृक्ष की वह शाखा है उसे देखो और उसका तात्पर्य समझने की चेष्टा करो।

सुशीला—पेड़ के सूखे पत्तों की बात जाने दीजिए, उनसे कुछ मतलब नहीं, परन्तु पेड़ का फल तो देखना होगा। जाति-भेद का फल हमारे देश के लिए कैसा है?

विनय—जिसे आप जाति-भेद का फल कहती हैं वह अवस्था का फल है, केवल जाति-भेद का ही नहीं। हिलते हुए दाँत से किसी वस्तु को काटते समय जो दर्द मालूम होता है, वह दाँत का अपराध नहीं, हिलते हुए दाँत का अपराध है। जब दाँत दृढ़ था तब कष्ट मालूम न होता था, वही कमज़ोर होने पर दर्द पैदा करता है, यह उसकी अवस्था की बात हुई। अनेक कारणों से हमारे समाज में अनेक विकार और दुर्बलता घुस गई है, इस लिए हम लोगों ने भारतवर्ष के उद्देश्य को सफल तो किया नहीं, उलटा विकृत कर दिया है। इसी हेतु गौरमोहन बारबार कहता है—स्वस्थ होओ, सबल होओ।

सुशीला—अच्छा तो आप ब्राह्मण वर्ण को नर-देवता या गुरु मानने के लिए कहते हैं? क्या आप इस पर पूरा विश्वास करते हैं कि ब्राह्मण के पैर की धूल से मनुष्य पवित्र होता है?

विनय—संसार में सम्मान की बहुत सी सामग्री हमारे ही द्वारा सिरजी गई है। ब्राह्मण को यदि यथार्थ भाव से ब्राह्मण बना सकें तो यह क्या समाज के लिए सामान्य लाभ है! हम लोग यदि नर-देवता चाहें, यदि हृदय से बुद्धिपूर्वक उसका अन्वेषण करें तो उसे अवश्य पावेंगे—और यदि मूर्ख की भाँति उसकी चाह करें तो जो कपट देवता नाना प्रकार के दुष्कर्म करते हैं और हमारे सिर पर चरण-रज रखना ही जिनकी जीविका का प्रधान साधन है उनकी संख्या को बढ़ाकर पृथ्वी का भार बढ़ाना है।

सुशीला— आपका वह नर-देवता कहीं है भी ?

विनय—है क्यों नहीं, गुठली के भीतर जैसे वृक्ष है वैसे ही वह है। भारतवर्ष के आन्तरिक अभिप्राय और प्रयोजन के भीतर छिपा हुआ है। अन्य देश वेलिङ्गटन के सदृश सेनापति, न्यूटन के समान वैज्ञानिक, रथचाइल्ड के जैसा करोड़पती चाहता है और हमारा देश ब्राह्मण को चाहता है। कोई सिर्फ़ गले में जनेऊ डाल लेने ही से ब्राह्मण नहीं हो सकता। जो भय न करे, लोभ न करे, दुःख को जीत ले, अयुक्त क्रोध को मन में टिकने न दे, अभाव पर लक्ष्य न करे, जिसकी चित्तवृत्ति परब्रह्म की भावना में लगी रहे, जो धर्म पर अटल रहे, जो शान्त रूप हो, और जो निर्लिप्त हो, उस ब्राह्मण को भारतवर्ष चाहता है। उस ब्राह्मण को सच्चे रूप में पाने ही से भारतवर्ष स्वाधीन होगा। हम अपनी ही अयोग्यता के कारण राजा के सामने सिर झुकाते हैं और अत्याचारी का बन्धन गले में पहिरते हैं। जब हम भीरु हैं तब हमारा सिर क्यों न झुकेगा ? अपने लोभ-जाल में हम आपही फँसे हैं, अपनी मूढ़ता के हम आप ही दासानुदास हो रहे हैं—ब्राह्मण तपस्या करें; वे उस भय से, लोभ से और अज्ञानता से हमें छुड़ावें—हम उनसे युद्ध नहीं चाहते, वाणिज्य नहीं चाहते और उनसे कोई अन्य काम भी लेना नहीं चाहते। वे केवल अपने कर्तव्य का पालन करें हम यही चाहते हैं।

परेश बाबू इतनी देर तक चुपचाप सुन रहे थे। उन्होंने धीरे

धीरे कहा—मैं भारतवर्ष को जिस स्वरूप में देखता हूँ उसे मैं कह नहीं सकता और भारतवर्ष ने क्या चाहा था और किसी दिन उसे उसने पाया था या नहीं, यह भी मैं ठीक ठीक नहीं जानता। किन्तु जो दिन हाथ से निकल गया है, वह दिन फिर क्या कभी हाथ आ सकता है? वर्तमान में जो साध्य है, वही हमारे साधन का विषय है। बीते हुए समय की ओर दोनों हाथ बढ़ाने से समय नष्ट करने के सिवा और क्या होगा?

विनय—आप जैसे कह रहे हैं, उस तरह मैं भी इस बात को मन में सोच चुका हूँ और कई बार कह भी चुका हूँ। गौर बाबू कहते हैं कि हम अतीत को अतीत कह कर उसकी उपेक्षा कर बैठे हैं इससे क्या वह उपेक्ष्य हो सकता है? सत्य तो कभी अतीत हो ही नहीं सकता।

सुशीला—आप जिस ढंग से ये बातें कह रहे हैं, उस ढंग से कहना जन-साधारण नहीं जानते, इसलिए आपके मत को समस्त देश का मत स्वीकार करने में संशय होता है।

विनय—हमारे देश में साधारणतः जो लोग अपने को परम हिन्दू मान कर अभिमान करते हैं, उस दल का मनुष्य आप मेरे मित्र गौर को न समझिएगा। वह हिन्दू-धर्म को हृदय से एक बहुत बड़े गौरव का पदार्थ समझता है, हिन्दू-धर्म को बड़ी ऊँची दृष्टि से देखता है। वह कभी यह नहीं समझता कि हिन्दू-धर्म केवल जी बहलाने ही के लिए प्रचलित हुआ है। ज़रा सी छुआ-छूत हो जाने से वह अपने को अशुद्ध समझता है।

सुशीला—तब तो मालूम होता है कि वे ख़ूब सावधानी से छुआ-छूत मान कर चलते होंगे।

विनय—उसकी यह सावधानी एक विचित्र ही प्रकार की है। यदि उस से पूछो तो वह यही कहता है कि हाँ, मैं ये सभी बातें मानता हूँ, छूने से या विधर्मी के हाथ का छूआ खाने से जाति जाती है—पाप होता है। इसे वह निर्भ्रान्तिपूर्वक सत्य मानता है। किन्तु मेरी समझ में यह उसकी हठधर्मिता है। ये मामूली बातें जितनी ही असङ्गत हैं उतनाही वह मानों सब को सुनाकर ज़ोर से कहता है। मतलब यह कि वर्तमान हिन्दू-धर्म की साधारण बात को अस्वीकार करने से कहीं मूर्ख लोग हिन्दू-धर्म के महत्त्वपूर्ण व्यवहारों का भी निरादर न करने लग जायँ, और जो लोग हिन्दू-धर्म पर अश्रद्धा करते हैं, वे इसे अपनी जीत न मानने लग जायँ, इसी से वह कुछ विचार न कर सभी बातों को मान कर चलना चाहता है—मेरे पास भी इस सम्बन्ध में वह कोई शैथिल्य प्रकट करना नहीं चाहता।

परेश बाबू—ब्राह्मसमाज मे भी ऐसे बहुत आदमी हैं। वे हिन्दूमत-सम्बन्धी सभी सम्पर्क को बिना कुछ सोचे विचारे इस लिए छोड़ना चाहते हैं कि कहीं बाहर का कोई आदमी यह न समझे कि ब्राह्म लोग हिन्दूधर्म की कुप्रथा को भी मानते हैं। ये सब लोग संसार में सीधे भाव से नहीं चल सकते—ये लोग या तो प्रपञ्च करते हैं या ज़ोर दिखाते हैं।

सत्य को ये दुर्बल समझते हैं, अव्यवहार को ही सुव्यवहार समझते हैं। सत्य को बल से या कौशल से रक्षित करना ही मानों ये कर्त्तव्य का अङ्ग समझते हैं। मैं अपने ऊपर सत्य को निर्भर करता हूँ, सत्य के ऊपर अपने को निर्भर नहीं करता,—इस तरह जिनकी धारणा है, वे लोग यथार्थ में कपटी हैं। मैं ईश्वर से सदा यही प्रार्थना करता हूँ कि मैं चाहे ब्राह्म-सभा में होऊँ चाहे हिन्दुओं के देवी-मण्डप में, किन्तु मैं सर्वत्र ही सिर झुकाये, बड़ी सुगमता के साथ, बिना विद्रोह के सत्य को प्रणाम कर सकूँ। बाहर की कोई बाधा उस सत्य के अभिवादन में मुझे रोक न सके।

यह कह कर परेश बाबू कुछ देर के लिए आँखें मूँद कर ध्यानस्थ हो रहे। परेश बाबू ने जो कोमल स्वर में ये बातें कहीं, उन्हें सुन कर सुशीला और ललिता के चेहरे पर एक आनन्द-परिपूर्ण भक्ति की छटा उद्दीप्त हो उठी। विनय चुप हो रहा। वह भी मन ही मन जानता था कि गौरमोहन में एक बहुत बड़ी ज़बरदस्ती है। सत्यवादियों के वचन, मन और कर्म में जो एक सहज, सरल और शान्ति रहनी चाहिए वह गौर में सदा नहीं पाई जाती। परेश बाबू की बात सुन कर यह बात उसके मन में पूरे तौर से खटक गई।

सुशीला जब रात को अपनी चारपाई पर सोने गई तब ललिता उसके बिछौने पर एक तरफ़ आ बैठी। सुशीला समझ गई कि ललिता के मन में कोई बात खटक

रही है। बात विनय के सम्बन्ध की है, यह भी उसे मालूम हो गया।

इसलिए सुशीला ने आप ही कहा—विनय की बातें मुझे बहुत प्यारी मालूम होती हैं।

ललिता—वे बात बात में गौर बाबू का नाम लेते हैं, उनके स्वभाव की आलोचना करते हैं, इसीसे तुम को उनकी बातें अच्छी लगती हैं।

सुशीला ने इस बात का मर्म समझ कर भी न समझने का भाव दिखाया। वह सरलतापूर्वक बोली—हाँ, सच है। उनके मुँह से गौर बाबू की बातें सुनकर मुझे बड़ी ख़ुशी होती है। मानों वे मुझे प्रत्यक्ष देख पड़ते हैं।

ललिता—मुझे तो उनकी एक बात भी अच्छी नहीं लगती—सुन कर क्रोध होता है।

सुशीला आश्चर्य में आकर बोली—क्यों?

ललिता—दिन रात गौर, गौर, गौर, सुनते-सुनते जी ऊब गया। माना कि उनके मित्र गौर बाबू एक भारी आदमी हैं। हैं तो हैं। आख़िर हैं तो वे भी आदमी ही।

सुशीला ने हँस कर कहा—यह तो सही है, किन्तु तुम अपने क्रोध का कारण बताओ।

ललिता—उनके मित्र ने उन्हें इस तरह धर दबाया है कि वे विवश होकर अपना मन्तव्य कुछ प्रकट नहीं कर सकते। सिंह के बच्चे को कोई गोद में बिठा कर प्यार

करे तो ऐसी अवस्था में प्यार करनेवाले के ऊपर मेरा क्रोध रोके न रुकेगा और सिंह के बच्चे के ऊपर भी मेरी श्रद्धा नहीं रहेगी।

ललिता की बात का रङ्ग ढङ्ग देख सुशीला कुछ न कह कर हँसने लगी।

ललिता ने कहा—बहन, तुम हँसती हो, मैं तुमसे सच सच कहती हूँ। मुझे यदि कोई इस तरह दबाने की चेष्टा करता तो मैं उसे कभी बरदाश्त न कर सकती। और लोग चाहे जो समझें, पर तुम यही समझो कि तुम कभी मुझ पर दबाव डालना नहीं चाहती हो—तुम्हारा स्वभाव ही वैसा नहीं है,—इसीलिए मैं तुमको इतना चाहती हूँ। तुम्हें अपने प्यार की पात्री समझती हूँ। तुमने बाबूजी से यह शिक्षा पाई है, और वे भी किसी की बात में दखल नहीं देते। वे सबकी सुनते हैं और मन की कहते हैं।

इस घर में सुशीला और ललिता परेश बाबू की बड़ी भक्त थीं। बाबूजी का नाम लेते ही मानों उन दोनों के हृदय भक्ति से उमँग उठते थे।

सुशीला ने कहा—बाबूजी की बराबरी कौन कर सकता है? किन्तु तुम चाहे जो कहो, विनय बाबू बात बड़े ढङ्ग से कहते हैं, उनके बोलने का चमत्कार चित्त को चुरा लेता है।

ललिता—वे उनकी अपने मन की बातें नहीं हैं, इसी लिए वे इतना चमत्कार करके बोलते हैं। यदि वे अपने मन

की बातें कहते तो वे और भी अधिक रोचक होतीं। तब यह न मालूम होता कि वे सोच सोच कर, गढ़ गढ़ कर, बातें करते हैं। चमत्कार-भरी बातों से मुझे सीधी सादी मन की बातें सुनने में ही बहुत अच्छी मालूम होती हैं।

सुशीला—तो तुम रिस क्यों करती हो? गौरमोहन बाबू की बात तो इनकी अपनी ही बात हो गई है।

ललिता—अगर ऐसा है तो और भी अच्छा है! क्या ईश्वर ने बुद्धि दी है दूसरे की बातों को अपने दिमाग़ में भरने और उनकी व्याख्या करने के लिए? और मुँह दिया है दूसरे की बात को ख़ूब बढ़ा चढ़ा कर बोलने और चमत्कार दिखाने के लिए? मैं ऐसी चमत्कार की बातें पसन्द नहीं करती।

सुशीला—किन्तु तुम यह क्यों नहीं समझती कि विनय बाबू गौरमोहन को प्यार करते हैं—उनके साथ इन का मन मिला हुआ है।

ललिता तुरन्त बोल उठी—नहीं नहीं, सर्वथा मेल नहीं है। गौरमोहन की बात मानकर चलने का इन्हें अभ्यास सा हो गया है। इसे दासत्व कह सकते हैं, प्रेम नहीं। वे ज़बर्दस्ती यह समझना चाहते हैं कि हमारे साथ उनका मत-भेद नहीं है। प्रेम रहने से मत का मिलान न होने पर भी, एक दूसरे की बात मान सकता है। जान बूझ कर भी लोग अपने को प्रेमी के हाथ सौंप देते हैं। परन्तु यहाँ तो ऐसा नहीं है। हो सकता है, ये गौरमोहन बाबू को प्रेम के

कारण मान रहे हैं, परन्तु वे इस बात को किसी तरह स्वीकार नहीं कर सकते कि हम प्रेमवश होकर गौर की हाँ में हाँ मिला रहे हैं। यह तो विनय बाबू की बात सुनने ही से स्पष्ट जान पड़ता है। अच्छा, तुम्हीं कहो बहन, तुम क्या समझती हो?

सुशीला ने ललिता की भाँति इस बात को कभी इस प्रकार सोच कर न देखा था। कारण यह कि गौरमोहन को पूरे तौर से जानने ही के लिए उसका कुतूहल बढ़ा था। विनय को स्वतन्त्र रूप में देखने के लिए उसको कुछ आग्रह न था। सुशीला ने ललिता के प्रश्न का स्पष्ट उत्तर न देकर कहा—अच्छा, तुम्हारी ही बात मान ली गई। तो अब क्या करना होगा सो बताओ।

ललिता—मैं चाहती हूँ कि विनय बाबू को मित्र के अधीनतारूपी बन्धन से छुड़ाकर स्वाधीन कर देती।

सुशीला—एक बार चेष्टा करके देखो न।

ललिता—मेरे प्रयत्न से न होगा, तुम्हारा कुछ मन होने ही से यह हो सकता है।

सुशीला यद्यपि जानती थी कि विनय मुझ पर अनुरक्त है तथापि उसने ललिता की बात को हँसी में उड़ा देने की चेष्टा की।

ललिता ने कहा—गौरमोहन की अनुमति पाये बिना भी वे जो तुम्हारे पास इस तरह हाज़िरी देने आते हैं, इसी से मैं उन्हें चाहती हूँ। उनकी अवस्था में कोई दूसरा होता

तो ब्राह्म स्त्रियों की निर्लज्जता पर गाली देकर नाटक लिखता। उनका मन अब भी उस दोष से बचा हुआ है। वे तुमको चाहते हैं और बाबू जी पर भक्ति रखते हैं, यही उसका प्रमाण है। विनय बाबू को उनके असली भाव पर खड़ा कर देना ठीक होगा। वे जो अपने मन का भाव दबा कर दूसरे के पक्ष का अनुमोदन करते हैं, यह उनके हृदय की दुर्बलता है। वे जो केवल गौर बाबू का ही गुणानुवाद करते रहते हैं यह मुझे असह्य मालूम होता है।

इसी समय बहन, बहन, करता हुआ सतीश घर के भीतर आया। विनय आज उसे क़िले के मैदान में सर्कस दिखाने ले गया था। यद्यपि रात बहुत जा चुकी थी तो भी वह अपने इस पहले पहल सर्कस देखने के उत्साह को प्रकट किये बिना रोक न सका। उसने सर्कस का वर्णन करके कहा—विनय बाबू को मैं आज यहाँ तक ले आया था। वे फाटक के भीतर आकर फिर लौट गये। उन्होंने कहा, कल आवेंगे। बहन, मैंने उनसे कहा है कि एक दिन तुम सब को भी वे सर्कस दिखा लावें।

ललिता ने पूछा—इस पर उन्होंने क्या कहा?

सतीश—उन्होंने कहा कि स्त्रियाँ बाघ को देख कर डरेंगी। मैं तो बाघ से ज़रा भी नहीं डरा।—यह कह कर सतीश अपने पौरुष पर गर्व करके छाती तान कर बैठ गया।

ललिता—तुम्हारे मित्र विनय बाबू का साहस कितना बड़ा

है, सो मैं जान चुकी हूँ। नहीं बहन, हम लोगों को साथ ले कर उन्हें सर्कस दिखाने के लिए ले जाना ही होगा।

सतीश—कल तो दिन में ही सर्कस होगा।

ललिता—तब तो और अच्छा होगा। हम दिन में ही जायँगी।

दूसरे दिन विनय बाबू के आते ही ललिता बोल उठी—यह देखो, ठीक समय पर ही विनय बाबू आ गये हैं। चलो, अब काम बन गया।

विनय—कहाँ जाना होगा ?

ललिता—सर्कस देखने।

अयँ! सर्कस देखने! दिन में शामियाने के भीतर, हज़ारों लोगों के सामने, स्त्रियों को लेकर सर्कस में जाना! विनय बेचारा हतबुद्धि होगया।

ललिता—हम लोगों को साथ ले जाने से शायद गौर-मोहन बाबू नाराज़ होंगे ?

ललिता की इस व्यङ्ग-भरी बात से विनय कुछ चकित हो उठा।

ललिता ने फिर कहा—स्त्रियों को सर्कस में लेजाने के सम्बन्ध में गौरमोहन बाबू की क्या कुछ राय है ?

विनय—ज़रूर है।

ललिता—अच्छा, उनकी इस राय को आप भली भाँति समझा कर कहिए। मैं बहन को बुला लाती हूँ, वह भी सुनेगी।

विनय इस बात का मर्म समझ कर हँसा। ललिता ने कहा—विनय बाबू, आप हँसते क्यों हैं? आपने कल सतीश से कहा था कि स्त्रियाँ बाघ देख कर डरती हैं। तो शायद आप किसी से भी नहीं डरते?

इस प्रकार हास-परिहास होने के बाद विनय उस दिन स्त्रियों को लेकर सर्कस देखने गया। उसने सिर्फ़ यही नहीं किया, प्रत्युत उसके साथ साथ वह अपने मन की बातों को भी सोचता रहा। गौरमोहन के साथ उसका कैसा सम्बन्ध है, ललिता और परेश बाबू की लड़कियों के समीप वह कैसे भाव से देखा जा रहा है, इन बातों की उधेड़-बुन बार बार उसके मन में होने लगी।

इसके अनन्तर दूसरे दिन जब विनय से ललिता की भेंट हुई, उसने मन में कुतूहल का भाव छिपा कर पूछा—कहिए, विनय बाबू, आपने गौरमोहन बाबू से सर्कस की चर्चा तो ज़रूर की होगी?

इस प्रश्न की गहरी चोट विनय के मन में लगी। लाचार होकर उसे कहना पड़ा—नहीं, अभी तक तो नहीं की है।

लावण्यलता ने घर में आकर कहा—विनय बाबू, इधर आइए।

ललिता—कहाँ ले जाओगी? सर्कस में?

लावण्य—आज सर्कस कहाँ है? क्या तुम्हारे लिए रोज़ही सर्कस होगा? मैं बुलाने आई हूँ अपने रुमाल के

चारों किनारों पर पेंन्सिल से एक सीधी लकीर खिंचवाने को मैं सिलाई करूँगी। विनय बाबू बहुत सुन्दर लकीर खींचते हैं

लावण्य विनय को बुला ले गई।

[१९]

सबेरे के पहर गौरमोहन कोई लेख लिख रहा था। विनय ने एकाएक उसके पास आकर अव्यवस्थित भाव से कहा—मैं उस दिन परेश बाबू की लड़कियों को सर्कस दिखाने ले गया था।

गौर लिखते ही लिखते बोला—हाँ, सुना है।

विनय ने विस्मित होकर कहा—तुमने किससे सुना?

गौर—अविनाश से। वह भी उस दिन सर्कस देखने गया था।

वह और कुछ न कह कर चुपचाप लिखने लगा। गौरमोहन ने पहले ही यह सुन लिया, सो भी अविनाश के मुँह से, इसलिए उसमें टीका-टिप्पणी का कोई अभाव न रहा होगा। इससे, चिरसंस्कार-वश विनय के मन में विशेष संकोच हुआ। सर्कस में जाने की यह बात इस प्रकार जनसमाज में प्रकट न होती तो वह ख़ुश होता।

इसी समय उसे स्मरण हो आया कि कल रात को देर तक जागते रह कर वह मन ही मन ललिता से झगड़ता रहा

है। ललिता समझती है कि गौर को विनय उतना ही मान कर चलता है जितना कि विद्यार्थी अपने मास्टर को। ऐसा अन्याय करके भी एक मनुष्य दूसरे को ठीक ठीक नहीं समझ सकता। गौर और विनय की एक आत्मा है—घनिष्ठ मित्रता है—असाधारण गुण के कारण गौर पर उसकी भक्ति है सही किन्तु इसी लिए ललिता ने जो कुछ समझ रक्खा है वह गौर और विनय दोनों के साथ अन्याय है। न तो विनय ही नाबालिग़ है और न गौर ही उसका अभिभावक (वली) है।

गौरमोहन ने लिखने में मन लगाया। विनय ललिता के दो-तीन तीखे प्रश्नों का मन ही मन स्मरण करने लगा। वह सहज ही उन प्रश्नों को मन से न हटा सका।

सोचते ही सोचते विनय के मन में विद्रोह ने सिर उठाया। सर्कस देखने गये तो क्या हुआ? अविनाश कौन है, जो उन बातों के विषय में गौरमोहन के साथ आलोचना करने आता है! अथवा गौरमोहन ही मेरी गति-विधि के सम्बन्ध में उस अकार्य-भाजन के साथ क्यों बातें करता है? क्या मैं गौरमोहन का नौकर हूँ या उसका क़ैदी हूँ, जो उसकी आज्ञा के अनुसार चलूँगा? मैं किसीसे मिलूँगा, किसीके साथ बातचीत करूँगा, या कहीं जाऊँगा तो क्या मुझे गौर को इन बातों की कैफ़ियत देनी होगी! मित्रता में यह भारी उपद्रव उठ खड़ा हुआ।

विनय यदि अपनी भीरुता को इस प्रकार अपने भीतर

स्पष्ट रूप से न देख पाता तो उसे गौरमोहन और अविनाश के ऊपर इतना क्रोध न होता। गौर के पास वह कोई बात क्षण भर के लिए भी छिपा नहीं सकता, इसलिए वह आज मन ही मन गौर को ही अपराधी बनाने की चेष्टा कर रहा है। गौर ने ही उसे पर-वश बना रक्खा है। मित्रत्व में ऐसी पर-वशता क्यों? सर्कस जाने की बात के लिए यदि गौरमोहन विनय को दो एक खरी-खोटी बातें सुनाता तो इससे भी मित्रत्वभाव की समता जान कर विनय को सान्त्वना मिलती। किन्तु गौरमोहन गम्भीर भाव से बहुत बड़े विचारक का रूप धारण कर मौन द्वारा विनय का अपमान कर रहा है इससे, ललिता की बात काँटे की तरह उसके मन में चुभने लगी।

इतने में महिम ने हाथ में हुक्का लिये घर के भीतर प्रवेश किया। पानों की डिबिया से एक बीड़ा पान विनय के हाथ में देकर कहा—विनय, इधर तो सब ठीक है। अब तुम्हारे चचा के हाथ की चिट्ठी आने भर की देर है। वह मिलते ही मैं निश्चिन्त हो जाऊँगा। तुमने तो उनको पत्र लिख ही दिया होगा?

इस विवाह की चर्चा आज विनय को बहुत बुरी लगी, परन्तु वह जानता था कि इसमें महिम का कोई दोष नहीं है। उनको वचन दे दिया गया है। किन्तु वचन देने के भीतर उसने अपनी एक हीनता समझी। आनन्दी ने तो उसे एक प्रकार से रोका था—उसका स्वयं भी इस विवाह के प्रति

कुछ विशेष झुकाव न था। तो यह बात इस प्रकार झट पट पक्की क्योंकर हो गई? गौरमोहन ने जल्दी की है, यह भी नहीं कहा जा सकता। विनय यदि किसी तरह अस्वीकृति का भाव दिखाता तो गौर इसके लिए हठ करता, यह भी संभव नहीं, किन्तु तोभी—इसी तोभी के ऊपर फिर ललिता की व्यङ्गोक्ति आकर विनय के मन को दुखाने लगी, मानों वह उसके हृदय के भीतर नश्तर का काम करने लगी। उस दिन की ऐसी कोई विशेष घटना न थी, किन्तु बहुत दिन के प्रभुत्व की बात सोच कर ही विनय की यह अवस्था हो रही है। वह केवल घनिष्ठ प्रेम और नितान्त भलमनसी के कारण गौरमोहन की झिड़की और हुकूमत सहने को अभ्यस्त सा हो गया है। इस कारण यह प्रभुत्व का सम्बन्ध ही मित्रता के सिर पर चढ़ बैठा है। इतने दिन तक विनय ने इसका अनुभव नहीं किया था, किन्तु अब अनुभव करने ही से क्या हो सकता है? अब इसे अस्वीकार करते भी तो नहीं बनता। तो क्या शशिमुखी के साथ ब्याह करना ही होगा?

विनय ने कहा—जी नहीं, चाचा जी के पास तो अभी तक चिट्ठी नहीं भेजी।

महिम—यह मेरी ही भूल है। यह चिट्ठी तो तुम्हारे लिखने की नहीं है—यह मैं ही लिखूँगा। उनका नाम और पूरा पता क्या है?

विनय—आप घबराते क्यों हैं? आश्विन या कार्त्तिक में

तो विवाह हो नहीं सकेगा। रहा अगहन—सो उसमें भी एक बाधा है। मेरे वंश में, बहुत समय पहले, अगहन में न मालूम कब किस को क्या दुर्घटना हुई थी। तब से मेरे कुल में अगहन में विवाह आदि कोई शुभकर्म नहीं होता।

महिम ने हाथ का हुक्का घर के कोने में रख कर कहा—विनय, तुम लोग यदि ये बातें मानोगे तो इतना पढ़ लिख कर क्या किया? एक तो इस मनहूस देश में शुभ मुहूर्त खोजने से भी नहीं मिलता। इस पर फिर घर घर (प्राइवेट) पत्रा खोल कर बैठने से संसार का काम कैसे चलेगा?

विनय—अच्छा तो आप भादों या आश्विन को ही क्यों निषिद्ध मानते हैं?

महिम—कौन कहता है कि मैं मानता हूँ! कभी नहीं। परन्तु मैं करूँ क्या। इस देश में भगवान् को न मानने से कोई हर्ज नहीं किन्तु भादों, आश्विन, शनि, बृहस्पति, तिथि और नक्षत्र न मानने से कोई घर में भी न रहने देगा। फिर भी मैं जो कहता हूँ कि मैं नहीं मानता सो ठीक है; किन्तु कोई काम करते समय मुहूर्त ठीक न होने से मन अप्रसन्न हो जाता है। देश की बिगड़ी हवा से जैसे मलेरिया होता है, वैसे ही यह डर भी। इसे मैं किसी तरह दूर नहीं कर सकता।

विनय—मेरे वंश में भी अगहन का डर कोई न मिटा सकेगा। और लोग मान भी सकते हैं, परन्तु मेरी चाची किसी तरह राज़ी न होंगी।

इस तरह उस दिन विनय ने किसी ढंग से विवाह की बात को टाल दिया।

विनय की बातों के रङ्ग ढङ्ग से गौर समझ गया कि इस के मन में कुछ भावान्तर उपस्थित हुआ है। कुछ दिन से विनय इधर ही उधर घूमता था, कभी दिखाई भी न देता था। गौर को यह भी पता लग गया था कि विनय अब पहले की अपेक्षा परेश बाबू के घर अधिक जाने-आने लगा है। उस पर भी आज इस विवाह के प्रस्ताव में फन्दा काट कर उसके निकल जाने की चेष्टा देख गौरमोहन के मन में सन्देह उत्पन्न हुआ।

गौर ने अपना लिखना छोड़ सिर उठाकर कहा—विनय, एक बार जब तुम भाई साहब को वचन दे चुके हो तब क्यों इनको दुबिधा में डाल कर नाहक़ कष्ट दे रहे हो ?

विनय सहसा असहिष्णु होकर बोला—मैंने वचन दिया है—या ज़बरदस्ती मुझ से वचन ले लिया गया है ?

विनय का यह आकस्मिक विद्रोह-भाव देखकर गौर विस्मित हुआ। उसने कड़े होकर कहा—किसने तुमसे ज़बरदस्ती वचन कहलाया है ?

विनय—तुमने।

गौर—मैंने ! तुम्हारे साथ इस सम्बन्ध में मेरी दो एक बातों से अधिक बात-चीत नहीं हुई। इसीको तुम वचन कहलाना कहते हो !

वस्तुत: विनय के पास कोई विशेष प्रमाण न था—गौर

जो कहता है, वही सत्य है । बात-चीत बहुत थोड़ी हुई थी और उसमें कोई ऐसे आग्रह का भाव न था जिसे ज़बर्दस्ती कहा जाय। तो भी यह बात सच है कि गौर ने विनय के पेट से उसकी सम्मति मानों लूट कर बाहर निकाल ली थी । जिस मुक़द्दमे का बाहरी सबूत कम है, उस मुक़द्दमे में मनुष्य का क्षोभ भी कुछ अधिक होता है। इसीसे विनय ने कुछ लड़खड़ाती हुई ज़बान से कहा—ज़बरदस्ती कहलाने के लिए बहुत बातों की ज़रूरत नहीं होती ।

गौरमोहन ने कुरसी से खड़े होकर कहा—लो, अपनी बात फेर लो। यह बात इतनी बेशक़ीमत नहीं कि मैं इसे तुमसे माँग कर या ज़बरदस्ती लूँ ।

पास के कमरे में महिम थे । गौर ने उच्चस्वर से पुकारा—भाई साहब ।

महिम हड़बड़ा कर दौड़े आये। गौर ने कहा—मैं शुरू से ही कहता आया हूँ कि शशिमुखी के साथ विनय का विवाह न होगा । मेरा विचार नहीं होता ।

महिम—हाँ, कहा तो था ! तुम्हारे सिवा और कोई ऐसी बात कह नहीं सकता । दूसरा कोई भाई होता तो भतीजी के विवाह के प्रस्ताव में पहले ही से उत्साह दिखाता ।

गौर—आपने मेरे द्वारा विनय से अनुरोध क्यों कराया ?

महिम—सोचा था, उससे काम हो जायगा, और कोई कारण नहीं ।

गौर ने आँखें लाल कर के कहा—मैं इन सब बातों में नहीं रहता। विवाह की बिचवानी करना मेरा काम नहीं। मेरा काम कुछ और है।

यह कह कर गौरमोहन घर से चला गया, महिम हत-बुद्धि से खड़े हो रहे। इसके कुछ कहने के पहले ही विनय भी घर से चलता हुआ। महिम कोने में से हुक्का उठा कर चुपचाप बैठ गये और पीने लगे।

गौरमोहन के साथ इसके पहले विनय के कई बार झगड़े हो गये हैं किन्तु ऐसे प्रचण्ड दावानल की तरह झगड़ा कभी नहीं हुआ। विनय अपनी करतूत पर पहले क्षुब्ध हो रहा, किन्तु पीछे घर जाने पर उसके हृदय में बाण बिधने लगा। 'घड़ी भर के भीतर ही मैंने गौरमोहन को कितनी बड़ी चोट पहुँचाई है,' इसका स्मरण करके उसे बहुत पश्चात्ताप हुआ। खाना, पीना और सोना उस दिन उसे कुछ न रुचा। विशेष कर इस घटना में गौर को दोष देना नितान्त अनुचित और असङ्गत हुआ है, यही उसको सन्तप्त करने लगा। वह अपने को बार बार धिक्कार देकर बोला—अन्याय! घोर अन्याय!! घोरतर अन्याय!!!

दो बजे दिन को आनन्दी सब को खिला पिला कर और आप भी खाकर जब सिलाई करने को बैठी थी तब अचानक विनय उसके पास आकर बैठा। आज सबेरे की कितनी ही बातें आनन्दी ने महिम से सुनी थीं। भोजन के समय गौर-

मोहन के मुँह का गंभीर भाव देख कर भी वह ताड़ गई थी कि आज कुछ खटपट ज़रूर हुई है ।

विनय ने आतेही कहा—माँ, मैंने अन्याय किया है। शशिमुखी के साथ ब्याह के सम्बन्ध में मैंने आज सबेरे गौर से जो कुछ कहा है उसका कोई अर्थ नहीं ।

आनन्दी ने कहा—एक जगह रहने से आपस में कभी कभी अनबन होही जाती है । मन के भीतर किसी व्यथा का बोझ होने से वह इसी तरह बाहर निकल पड़ता है । यह अच्छा ही हुआ । मन का मैल निकल जाना ही अच्छा है । इस झगड़े की बात दो दिन बाद तुम भी भूल जाओगे, गोरा भी भूल जायगा ।

विनय—किन्तु माँ, शशिमुखी के साथ ब्याह करने में मुझे कोई उज्र नहीं है, यही मैं तुमसे कहने आया हूँ ।

आनन्दी—पहले इस झगड़े को मिटालो; जब तक झगड़े की बात नहीं मिटती तब तक फिर दूसरे झञ्झट में मत पड़ो । ब्याह गुड़िया का खेल तो है नहीं, यह सम्बन्ध सदा के लिए होगा । झगड़ा तो दो दिन का है ।

विनय ने इस बात को न माना । वह इस प्रस्ताव को लेकर गौरमोहन के पास न जा सका, परन्तु महिम से जाकर बोला—विवाह के प्रस्ताव में कोई बाधा नहीं—माघ महीने में यह कार्य हो जायगा । चाचा जी की इसमें असम्मति न होगी, यह भार मैं अपने ऊपर लेता हूँ ।

महिम ने कहा—तो फल-दान हो जाय ।

विनय—अच्छा, यह आप गौर मोहन से सलाह लेकर करें ।

महिम—फिर गौरमोहन से सलाह लेने को कहते हो ?

विनय—उससे सलाह लेनी ही होगी । बिना उससे सलाह लिये काम न चलेगा ।

महिम—"न चलेगा, तब तो आखिर सलाह लेनी ही होगी । किन्तु"—यह कह कर उन्होंने डिब्बे से पान निकाल कर मुँह में रक्खा ।

[२०]

महिम ने उस दिन गौर से कुछ न कहा । वे दूसरे दिन उस के कमरे में गये । उन्होंने सोचा था, गौर को फिर राज़ी करने में बहुत कहना-सुनना पड़ेगा । किन्तु उन्होंने जैसे ही आकर कहा कि विनय कल साँझ को आकर विवाह के सम्बन्ध में पक्का वचन दे गया है और फल-दान के विषय में तुमसे सलाह लेने को कहा है, त्योंही गौरमोहन ने अपनी सम्मति प्रकट की—कहा, अच्छा, तो फल-दान हो जाय ।

महिम ने अचम्भित होकर कहा—अभी तो कहते हो, अच्छा, पीछे फिर कहीं लड़ न बैठना ।

गौर—मैंने रोकने के अभिप्राय से तो झगड़ा किया नहीं है । अनुरोध का ही झगड़ा है ।

महिम—इसी लिए हम तुमसे हाथ जोड़ कर यह विनय करते हैं कि न तुम इसमें बाधा दो और न अनुरोध ही करो। न तो हमें कुरु-पक्ष की नारायणी सेना की ही ज़रूरत है और न पाण्डव-पक्ष के नारायण की ही। मैं अकेला जो कर सकूँगा वही अच्छा होगा। मैंने भूल की थी जो तुमसे अनुरोध करने को कहा था। पहले मैं यह न जानता था कि तुम्हारी सहायता भी उलटी होती है। जो हो, यह जो कार्य हो रहा है इसमें तुम्हारी इच्छा तो है?

गौर—जी हाँ, इच्छा है।

महिम—यही चाहिए। तुम इस विषय में अब कुछ उद्योग न करना।

गौरमोहन ने अब समझा कि विनय को दूर से खींच रखना कठिन होगा। जो आशङ्का की जगह है वहीं पहरा देना चाहिए। उसने मन में सोचा कि यदि मैं परेश बाबू के घर बराबर जाया-आया करूँ तो विनय को घर के भीतर रख सकूँगा।

उसी दिन अर्थात् झगड़े के दूसरे दिन, तीसरे पहर को, गौरमोहन विनय के घर आ पहुँचा। विनय को यह आशा न थी कि गौर आज ही आवेगा। इस कारण उसके मन में ख़ुशी के साथ साथ आश्चर्य भी हुआ।

इससे भी बढ़ कर आश्चर्य का विषय यह था कि आने के साथ ही गौरमोहन ने परेश बाबू की लड़कियों की चर्चा छेड़

दी । फिर उस पर चमत्कार यह कि उसमें आक्षेप की किञ्चित्-मात्र गन्ध न थी । यह आलोचना विनय को उत्तेजित करने के लिए यथेष्ट थी, किसी विशेष चेष्टा की आवश्यकता न हुई ।

दोनों मित्रों में उस दिन घूम फिर कर परेश बाबू की लड़कियों के विषय में वार्तालाप होते होते रात हो गई ।"

गौरमोहन अकेला घर लौटते समय रास्ते में इन सब बातों को मनही मन सोचने लगा और घर आ कर जब तक उसे बिछौने पर जा कर नींद न आई तब तक वह परेश बाबू की लड़कियों की बात को मन से दूर न कर सका । गौरमोहन के जीवन में यह आज नई घटना है । इसके पहले आज तक कभी उसके मन में स्त्रियों की बात ने स्थान न पाया था । अनेक सांसारिक व्यवहारों में यह भी एक चिन्ता का विषय है, इसे विनय ने इस दफ़े प्रमाणित कर दिया । यह बात अब किसी तरह उड़ाई नहीं जा सकती । या तो इसकी रक्षा करनी होगी या इसके विरुद्ध युद्ध करना होगा ।

दूसरे दिन विनय ने जब गौर से कहा—परेश बाबू के घर एक बार चलो न, बहुत दिनों से नहीं गये हो; वे बराबर तुम्हारी बात पूछा करते हैं तब गौरमोहन बिना कुछ उज्र किये जाने को राज़ी हो गया । सिर्फ़ राज़ी ही नहीं हुआ, उसके साथ कुछ उत्सुकता भी थी । पहले सुशीला और परेश बाबू की कन्याओं के स्थिति-सम्बन्ध में वह बिलकुल उदासीन था, किन्तु अब उसके मन में एक नये कुतूहल का भाव उत्पन्न हुआ है ।

विनय के चित्त को वे कैसे इस तरह अपनी ओर खींच रही हैं यह जानने के लिए उसके मन में विशेष आग्रह हुआ।

जब दोनों परेश बाबू के घर पहुँचे तब साँझ हो गई थी। छत के ऊपर वाले कमरे में दिया जला कर हरि अपना एक अँगरेज़ी लेख परेश बाबू को सुना रहा था। यहाँ परेश बाबू एक उपलक्षमात्र थे, असल में सुशीला को सुनाना ही उस का उद्देश्य था। आँखों पर रोशनी न आने देने के लिए सुशीला मुँह के सामने ताड़ का पंखा किये टेबल से कुछ दूर एक तरफ़ चुप बैठी थी। वह अपने स्वाभाविक वाध्यभाव से निबन्ध सुनने के लिए विशेष चेष्टा कर रही थी, किन्तु रह रह कर उसका मन हठात् दूसरी ओर चला जाता था।

इसी समय नौकर ने आकर जब गौरमोहन और विनय के आने की ख़बर दी तब सुशीला एकाएक चौंक उठी। वह कुरसी से उठ खड़ी हुई। उसे चले जाने का उपक्रम करते देख परेश बाबू ने कहा—राधा, कहाँ जाती हो? बैठो, और कोई नहीं है, हमारे विनय और गौर आरहे हैं।

सुशीला सकुच कर फिर बैठ गई। हरिश्चन्द्र के लम्बे अँगरेज़ी लेख के पाठ में व्याघात पहुँचने से सुशीला का जी हलका हुआ। गौरमोहन के आने की बात सुन कर उसके मन में किसी प्रकार का उल्लास न हुआ हो सो नहीं, किन्तु हरि बाबू के सामने गौरमोहन के आने से उसके मन में एक तरह की बेचैनी और संकोच मालूम होने लगा—दोनों में पीछे

झगड़ा न हो, यह सोच कर या अन्य किसी कारण से, यह कहना कठिन है ।

गौर का नाम सुनते ही हरि बाबू का मन उदास सा हो गया । गौर के अभिवादन का किसी तरह प्रत्यभिवादन कर वह मुँह लटकाये बैठा रहा । हरिश्चन्द्र को देखते ही उसके साथ वाग्-युद्ध करने के लिए गौरमोहन का जी फड़क उठा ।

शिवसुन्दरी अपनी तीनों लड़कियों को लेकर कहीं नेवते में गई थी । तय हो गया था कि साँझ को परेश बाबू जा कर उन सबों को ले आवेंगे । परेश बाबू के जाने का समय हो गया है । ऐसे समय में गौरमोहन और विनय के आ जाने से उनके जाने में बाधा हुई । किन्तु अब अधिक विलम्ब करना उचित न समझ कर वे सुशीला और हरिश्चन्द्र के कान में कह गये—तुम इनके साथ कुछ देर बैठो; जहाँ तक होगा मैं शीघ्र ही आता हूँ ।

देखते ही देखते गौरमोहन और हरि बाबू के बीच भारी शास्त्रार्थ छिड़ गया । जिस विषय पर तर्क चला था वह यह था;—कलकत्ते के निकटवर्ती किसी ज़िले के मैजिस्ट्रेट ब्रैडला साहब से परेश बाबू की ढाके में भेंट हुई थी । परेश बाबू की स्त्री और लड़कियाँ पर्दे का लिहाज़ न रख कर बाहर निकलती थीं, इससे ख़ुश होकर साहब और मेम दोनों उनकी बड़ी ख़ातिर करते थे । साहब अपने जन्म-दिन को हरसाल कृषि-प्रदर्शिनी का मेला कराते थे । इस दफ़े शिवसुन्दरी ने ब्रैडला

साहब की मेम से भेंट करके उसके आगे अँगरेज़ी काव्य-साहित्य में अपनी लड़कियों की विशेष योग्यता का वर्णन किया। यह सुन कर मेम साहिबा ने कहा—'अब की बार के मेले में छोटे लाट साहब सस्त्रीक आवेंगे। आप की लड़कियाँ यदि उनके सामने एक-आध छोटा सा कोई अँगरेज़ी नाटक खेलें तो बड़ा अच्छा हो।' इस प्रस्ताव पर शिवसुन्दरी अत्यन्त उत्साहित हो उठी। आज वह अपनी लड़कियों के अभ्यास (Rehearsal) की जाँच कराने के लिए किसी मित्र के घर गई है। इस मेले में गौरमोहन आवेगा या नहीं? यह पूछने पर गौर कुछ अनावश्यक उग्रता के साथ बोला—"नहीं।" इस प्रसङ्ग पर, इस देश के अँगरेज़ों और बङ्गालियों के बीच क्या सम्बन्ध है और परस्पर सामाजिक सम्मेलन में कौन सी बाधा है, इस विषय पर दोनों में प्रचण्ड वितण्डावाद उपस्थित हुआ।

हरि ने कहा—बङ्गालियों का ही दोष है। हम लोगों में इतने कुसंस्कार और कुप्रथायें हैं कि हम लोग अँगरेज़ के साथ मिलने योग्य नहीं रहे।

गौरमोहन—अगर यही सच है तो उस अयोग्यता के रहते भी अँगरेज़ के साथ मिलने के लिए लार टपकाते फिरना हमारे लिए बड़ी लज्जा का विषय है।

हरि—किन्तु जो योग्य हैं वे अँगरेज़ों के यहाँ यथेष्ट सम्मान पा रहे हैं—जैसे ये लोग।

गौर—एक व्यक्ति के आदर से जहाँ और सभी व्यक्तियों का विशेष अनादर हो वहाँ उस आदर को हम भारी अपमान में गिनते हैं।

यह समीचीन उत्तर पा कर हरि अत्यन्त क्रुद्ध हो उठा; गौरमोहन उसको ठहर ठहर कर वाक्य-बाण से बेधने लगा।

दोनों में जब इस प्रकार बातें हो रही थीं तब सुशीला टेबल के पास बैठ कर पंखे की आड़ से गौर को टकटकी बाँधे देख रही थी। जो बात होती थी सो उसके कान में आती अवश्य थी, किन्तु उस ओर उसका मन नहीं था। पूछने पर शायद वह न बता सकती कि मैंने क्या सुना है। सुशीला जो स्थिर दृष्टि से गौर को देख रही थी, सो उस सम्बन्ध में यदि उसका मन अपने हाथ से बाहर न होगया होता तो वह अपनी इस धृष्टता पर लज्जित होती किन्तु वह मानों अपने को भूल कर गौर को निहार रही थी। गौर अपनी बलिष्ठ बाहों को टेबल के ऊपर रक्खे हुए सामने झुका बैठा था। दिये की रोशनी में उसका उन्नत ललाट चमक रहा था। उसके मुँह पर कभी घृणा, कभी व्यङ्ग की हँसी और कभी उत्साह का चिह्न दिखाई दे रहा था। उसके मुँह के प्रत्येक भाव से एक आत्म-मर्यादा का गौरव लक्षित होता था। वह जो कह रहा था सो केवल सामयिक वितर्क या आक्षेप की बात नहीं थी। प्रत्येक बात उसकी पहले की सोची हुई सी जान पड़ती

थी। उसमें किसी तरह की दुर्बलता, दुविधा या विचित्रता नहीं थी। उसके कण्ठ से जो कुछ निकलता था, सुदृढ़ भाव से भरा हुआ निकलता था। मानों उसके अङ्ग प्रत्यङ्ग से सुदृढ़ता का भाव प्रकाशित होता था। सुशीला उसको आश्चर्य के साथ देखने लगी। सुशीला ने अपनी उम्र भर में इतने दिन बाद मानों पहले पहल एक व्यक्ति को एक विशेष पुरुष के रूप में देखा। उसकी जोड़ का और कोई पुरुष उसकी दृष्टि में न आ सका। इस वितर्क में गौर के विरुद्ध खड़े होने से ही हरि, सुशीला की दृष्टि में, हलका जँचने लगा। उसके शरीर की आकृति, उसका चेहरा, उसकी चेष्टा और उसकी पोशाक तक मानों उसी के साथ दिल्लगी करने लगी। इतने दिन बारंबार विनय के साथ गौर के सम्बन्ध में आलोचना करके सुशीला ने गौर को एक विशेष दल और एक विशेष मत का असाधारण मनुष्य मान लिया था। उसके द्वारा देश का कोई कल्याण साधन कभी हो सकता है, यही कल्पना केवल मन में कर ली थी। आज सुशीला उसके मुँह की ओर एकाग्र मन से देखते देखते समस्त दल, समस्त मन और समस्त उद्देश से अलग कर गौर को केवल गौरमोहन समझने लगी। जैसे समुद्र कोई प्रयोजन या व्यवहार की अपेक्षा न रख कर चन्द्रमा को देखते ही बिना कारण आनन्द से फूल उठता है उसी तरह आज सुशीला भी गौर को देख कर फूल उठी। मनुष्य के साथ मनुष्य की आत्मा का क्या सम्बन्ध है, इस ओर

सुशीला का ध्यान आकर्षित हुआ, और इस अपूर्व अनुभव से वह अपने अस्तित्व को एकदम भूल गई।

हरि बाबू ने सुशीला का यह तद्गत भाव देख लिया। इसीसे तर्क में उसकी युक्ति ज़ोरदार न होती थी। मन अधीर हो जाने से बुद्धि भी घास खाने चली जाती है। आखिर वह नितान्त धैर्यहीन होकर आसन से उठ खड़ा हुआ और सुशीला को अपनी परम आत्मीय की भाँति पुकार कर बोला—सुशीला, इस कमरे में आओ, तुमसे एक बात कहनी है।

सुशीला एकदम चौंक उठी। हरि बाबू के साथ सुशीला का जैसा चिर-परिचय था उससे वह कभी उसको इस तरह पुकार नहीं सकता था सो बात नहीं है। यदि और समय वह इस तरह पुकारता तो सुशीला कुछ मन में न लाती। किन्तु आज गौर और विनय के सामने उसने इस बात से अपने को अपमानित समझा। विशेष कर गौर ने उसके मुँह की ओर ऐसे भाव से देखा कि वह हरि बाबू को इस अशिष्टता के लिए क्षमा न कर सकी। पहले तो जैसे उसने कुछ सुना ही न हो, ऐसा भाव करके चुप बैठी रही। फिर हरि ने कुछ क्रोध भरे स्वर में कहा—सुशीला, सुनती नहीं! मुझे कुछ कहना है, एक बार इस कमरे के भीतर न आओगी?

सुशीला ने उसके मुँह की ओर न देख कर कहा—अभी ठहरिए, बाबू जी को आने दीजिए तब सुन लूँगी।

विनय ने खड़े होकर कहा—अच्छा तो हम जाते हैं।

सुशीला झट बोल उठी—नहीं विनय बाबू, आप अभी न जायँ। बाबू जी ने आप लोगों से ठहरने को कहा है। वे अब आते ही होंगे।—उसके कण्ठ-स्वर से कुछ व्याकुलता लिये अनुनय का ऐसा भाव व्यञ्जित हुआ, मानों हरिणी को व्याध के हाथ में दे डालने का प्रस्ताव हुआ था।

"तो मैं अब पल भर भी यहाँ ठहर नहीं सकता," यह कहकर हरि बाबू वहाँ से चला गया। उस घड़ी वह क्रोध में आकर वहाँ से निकल तो पड़ा, किन्तु बाहर आकर जब उसके होश ठिकाने आये तब उसे पश्चात्ताप होने लगा; परन्तु उस समय लौटने का कोई बहाना उसे खोजने पर भी न मिला।

हरि बाबू के चले जाने पर सुशीला एक अपूर्व लज्जा से सिकुड़कर, सिर झुका कर, बैठ रही। क्या करूँ, क्या बोलूँ, यह मन ही मन सोच रही थी, पर कुछ निश्चय न कर सकती थी। तब तक गौरमोहन ने उसके मुँह की ओर अच्छी तरह देखने का अवकाश पा लिया। गौरमोहन ने शिक्षित स्त्रियों में जिस उद्धत स्वभाव और निर्लज्जता की कल्पना कर रक्खी थी, उसका आभास तक सुशीला की मुख-शोभा में न था। बुद्धि की उज्वलता से उसका चेहरा अवश्य प्रकाश पा रहा था किन्तु लज्जा और नम्रता से आज वह क्या ही सुन्दर और कोमल मालूम हो रहा था। उसके मुख पर क्या ही लावण्य और कोमलता छाई है। धनुष सी टेढ़ी भौंहों पर आयत ललाट की कैसी अपूर्व शोभा है! नवीना रमणी के

वेष-विन्यास और उसके भूषण-वसन की ओर गौरमोहन ने इसके पूर्व कभी साकांक्ष दृष्टि से नहीं देखा था, और न देखने का उसे एक रोग सा था। स्वभावत: उसे उस पर घृणा थी। आज सुशीला की देह पर नये ढंग की साड़ी पहिरने का चमत्कृत भाव देखने में उसको बड़ा अच्छा लगा। सुशीला का एक हाथ टेबल पर था। गौरमोहन की दृष्टि उसपर भी जा पड़ी। वह भी उसे एक अपूर्व रूप में दिखाई दिया। आज उसकी दृष्टि में कुछ विशेषता है। वहाँ पर वह जो कुछ देखता है अपूर्व देखता है। घर की कड़ी, छत और दीवार तक उसको दृष्टि में नई सी हो उठी है। आखिर वह क्रम क्रम से सुशीला के सिर से पैर तक सभी अङ्गों की शोभा देख चकित हो रहा। सम्पूर्ण भाव से सुशीला और स्वतन्त्र भाव से सुशीला का प्रत्येक अंश युगवत् गौर की दृष्टि को आकर्षित करने लगा।

कुछ देर तक कोई कुछ न कह कर सङ्कुचित से हो रहे। तब विनय ने सुशीला की ओर देखकर कहा—"उस दिन आप क्या कहती थीं?" और यह कहकर उसने एक बात छेड़ दी।

उसने कहा—मैं आपसे तो कही चुका हूँ कि पहले मेरे मन में कुछ और ही धारणा थी। मेरे मन में विश्वास था कि हमारे देश के लिए, समाज के लिए, कुछ आशा नहीं है—हम लोगों को बहुत दिनों तक नाबालिग़ की तरह रहना होगा और अँगरेज़ हम लोगों के निरीक्षक नियुक्त रहेंगे। हमारे देश के अधिकांश लोगों के मन का भाव ऐसा ही है। ऐसी

अवस्था में मनुष्य या तो अपना स्वार्थ लिये रहता है या उदासीन भाव से समय बिताता है। मैंने भी एक समय चाहा था कि गौर बाबू के पिता से कह सुनकर कहीं नौकरी का प्रबन्ध करालूँगा। उस समय गौर बाबू ने मुझसे कहा—नहीं, तुम सरकारी नौकरी कभी नहीं कर सकोगे।

इस बात से सुशीला के मुँह पर एक आश्चर्य का आभास देख कर गौर ने कहा—आप यह न समझें कि गवर्नमेंट के ऊपर क्रोध कर के मैंने ऐसा कहा है। जो लोग सरकारी काम करते हैं वे गवर्नमेंट की शक्ति को अपनी शक्ति समझ गर्व करते हैं और देशी लोगों की श्रेणी से अपने को भिन्न मानते हैं। जितने ही दिन बीतते हैं, हम लोगों का यह भाव उतना ही प्रबल होता जाता है। मेरे एक आत्मीय पुराने ज़माने में डिपटी थे—अब वे उस काम को छोड़ बैठे हैं। उनसे डिष्टी मैजिस्ट्रेट ने पूछा था—बाबू, आपके विचार से इतने लोग रिहाई क्यों पाते हैं? उन्होंने उत्तर दिया—"साहब, उसका एक कारण है। आप जिनको जेल भेजते हैं वे आपके लिए कुत्ते-बिल्ली से बढ़कर नहीं हैं और मैं जिन्हें जेल भेजता हूँ उन्हें अपना भाई समझता हूँ।" इतनी बड़ी बात बोलने वाला डिपटी तब भी था और उस बात को सुन लेने वाले अँगरेज़ हाकिम का भी उस समय अभाव न था। परन्तु जितना ही समय बीतता जाता है उतने ही लोग नौकरी को भूषण समझते जा रहे हैं। और आज कल के डिपटी

बाबू के सामने उनके देश का आदमी क्रमशः कुत्ता बिल्ली होता जा रहा है। किन्तु इस प्रकार पद की उन्नति होते होते जो केवल उनकी अवनति हो रही है, इस बात का कभी उनके मन में अनुभव तक नहीं होता। लोग दूसरे के कन्धे पर भार रख कर अपने घर के लोगों को तुच्छ समझेंगे और तुच्छ जान कर उनके प्रति अविचार करने को वाध्य होंगे। इससे देश का कोई कल्याण नहीं हो सकता।—यह कह कर गौरमोहन ने टेबल पर हाथ पटका जिससे चिराग़ हिल गया। यदि कुछ ज़ोर से और हाथ पटका जाता तो चिराग़ ज़रूर लुढ़क जाता।

विनय ने कहा—गौर बाबू, यह टेबल गवर्नमेन्ट की नहीं और यह चिराग़ भी परेश बाबू का ही है।

यह सुन कर गौरमोहन ठहाका मार कर हँस पड़ा। उस की प्रबल हास्यध्वनि से सारा मकान गूँज उठा। दिल्लगी की बात सुन कर गौर लड़के की तरह ऐसे ज़ोर से हँस उठा, इससे सुशीला को आश्चर्य हुआ और उसके मन में एक विशेष आह्लाद हुआ। जो लोग बड़ी बड़ी बातें सोचते हैं वे जी खोल कर ख़ूब हँस भी सकते हैं यह बात मानों वह न जानती थी।

गौरमोहन ने उस दिन बहुत बातें कीं। सुशीला यद्यपि चुप थी, किन्तु उसके मुँह के भाव से गौर ने एक ऐसी तृप्ति पाई कि उत्साह से उसका हृदय फूल उठा। अन्त में मानों

उसने सुशीला की ओर लक्ष्य कर के कहा—एक बात यह याद रखने की है। यदि हम लोगों का ऐसा ग़लत संस्कार हो कि जब अँगरेज़ प्रबल हो उठे हैं, तब हम लोग भी ठीक उन्हीं की तरह न हों तो कदापि प्रबलता प्राप्त न कर सकेंगे, तो यह भूल है। हम लोग उनका अनुकरण करते करते और भी बरबाद हो जायँगे। न हिन्दू रहेंगे न मुसलमान। प्रबलता क्या होगी ख़ाक! आप से मेरा यह अनुरोध है कि आप भारतवर्ष के भीतर आवें। इसके भले-बुरे व्यवहारों के बीच में खड़ी हों। और यदि कोई त्रुटि देख पड़े तो भीतर से ही उसका संशोधन कर लें। सब के साथ मिल कर एक हों। इसके विरुद्ध बाहर खड़े रह कर किरिस्तानी मत में बचपन से ही निष्णात हो कर रग-रग में उस धर्म की दीक्षा पाने से इस हिन्दू मत का तत्व आप न समझ सकेंगी। जब तब इसपर चोट ही करेंगी, आपके द्वारा इसका कोई उपकार न हो सकेगा।

गौर ने कहा—हाँ, यह मेरा अनुरोध है—किन्तु यह तो अनुरोध नहीं है, यह तो एक प्रकार की आज्ञा है। बात ऐसी बलवती है और उसके भीतर एक ऐसी ताकीद है कि वह दूसरे की सम्मति की अपेक्षा नहीं रखती। सुशीला ने सिर नीचा किये ही सब सुना। इस प्रकार एक प्रबल आग्रह के साथ गौर ने जो उसीको विशेष भाव से सम्बोधन करके ये बातें कहीं इससे सुशीला के मन में एक आन्दोलन उपस्थित हुआ। सुशीला ने अपना सब संकोच दूर कर

के बड़ी नम्रता के साथ कहा—मैंने देश की बात को कभी इस प्रकार महत्व-भरे भाव से न सोचा था। परन्तु मैं आप से एक बात पूछती हूँ—धर्म के साथ देश का क्या सम्बन्ध है? धर्म क्या देश से भिन्न विषय नहीं है?

गौरमोहन के कान में सुशीला के कोमल कण्ठ का यह प्रश्न बड़ा ही मधुर लगा। सुशीला की बड़ी बड़ी आँखों के बीच यह प्रश्न और भी माधुर्यमय देख पड़ा। गौर ने कहा—जिस धर्म को आप देश से भिन्न विषय समझती हैं वह देश की अपेक्षा कितना बड़ा है, यह आप देश के भीतर प्रवेश करके ही जान सकती हैं। ईश्वर ने ऐसे ही विचित्र भाव से अपने अनन्त स्वरूप को व्यक्त किया है। जो लोग कहते हैं कि सत्य एक है, वे केवल एक ही धर्म और उसके रूप को सत्य मानते हैं। वे अपने उस निर्णीत एक सत्य को ही सत्य मानते हैं। और सत्य जो अनन्त रूप में परिणत है उसको वे मानना नहीं चाहते। वे यह नहीं जानते कि यह सत्य धर्म अनेक रूपों में विभक्त है। फिर वह चाहे किसी रूप में हो, है सब सत्य ही। मैं आपसे सच कहता हूँ, भारतवर्ष की खुली खिड़की की राह से आप सूर्य को अच्छी तरह देख सकती हैं, उसके लिए समुद्र पार जाकर किरिस्तान के गिर्जाघर की खिड़की में बैठने की कोई आवश्यकता नहीं।

सुशीला ने कहा—आप यह कहना चाहते हैं कि भारत-

वर्ष का धर्मतन्त्र एक विशेष मार्ग से ईश्वर की ओर ले जाता है। वह विशेषता क्या है?

गौर—विशेषता यही कि जो निर्विशेष ब्रह्म है, वह विशेष के भीतर ही व्यक्त होता है। जो निराकार है उसके आकार का अन्त नहीं—वह ह्रस्व, दीर्घ, स्थूल और सूक्ष्म का अनन्त प्रवाह है। वह छोटों से भी छोटा और बड़ों से भी बड़ा है। जो अनन्त विशेष है वही निर्विशेष है। जो अनन्तरूप है वही अरूप है, अर्थात् जिस रूप के परे कोई रूप नहीं। वह ब्रह्म व्यापक रूप से सर्वत्र विद्यमान है। और देशों में ईश्वर को कुछ घट-बढ़ परिमाण से किसी एक सीमा-निबद्ध विशेष के भीतर रोक रखने की चेष्टा की गई है। भारतवर्ष में भी ईश्वर को विशेष के बीच देखने की बात है, किन्तु यह देश उस विशेष को ही एक मात्र और सर्वोपरि नहीं गिनता। अनेक विषयों में एक यह भी विशेष है, बस इतना ही। ईश्वर जो इस विशेष को भी अनन्त गुण से अतिक्रम किये हुए है, यह बात भारतवर्ष का कोई भक्त कभी अस्वीकार नहीं करता।

सुशीला—ज्ञानी अस्वीकार न करें परन्तु अज्ञानी?

गौर—मैंने तो पहले ही कहा है कि अज्ञानी सभी देशों में सभी सत्य को विकृत मानेंगे ही।

सुशीला—हमारे देश में वह विकार क्या बहुत दूर तक नहीं पहुँचा है?

गौर—हो सकता है। किन्तु उसका कारण है—धर्म का

स्थूल और सूक्ष्म, भीतर और बाहर, शरीर और आत्मा। इन्हीं दो अङ्गों को भारतवर्ष पूर्ण भाव से स्वीकार करना चाहता है, इसलिए जो सूक्ष्म का ग्रहण नहीं कर सकते, वे स्थूल को ही गहते हैं और अज्ञान के द्वारा उस स्थूल के भीतर अनेक अद्‌भुत विकारों की कल्पना करते हैं। किन्तु जो रूप-अरूप दोनों में सत्य है, स्थूल में भी और सूक्ष्म में भी सत्य है, ध्यान में भी सत्य और प्रत्यक्ष में भी सत्य है, उसको भारतवर्ष ने सब प्रकार मन से, वचन से, और कर्म से प्राप्त करने की अद्‌भुत और बहुत बड़ी चेष्टा की है। उसे हम लोग मूर्ख की भाँति अश्रद्धेय समझ यूरोप की अठारहवीं शताब्दी के नास्तिकता-आस्तिकतायुक्त एक संकीर्ण शुष्क अङ्गहीन धर्म को ही एक मात्र धर्म कह कर ग्रहण करेंगे, यह कभी हो नहीं सकता।

सुशीला को देर तक चुप बैठे देख गौर ने कहा—आप मुझे प्रतारक न समझें। हिन्दू धर्म के सम्बन्ध में कपटाचारी लोग, विशेष कर जो नये धर्मध्वजी हो उठे हैं वे, जिस भाव से बात करते हैं, उस भाव से आप मेरी बात को ग्रहण न करें। भारतवर्ष के विविध प्रकाश और विचित्र व्यापार के भीतर मुझे एक गम्भीर और बहुत बड़ी एकता सूझ पड़ी है। मैं उस एकता के आनन्द में पागल हो गया हूँ। उस ऐक्य के आनन्द में ही भारतवर्ष के भीतर जो लोग निपट मूर्ख हैं, उनके साथ मिलकर दस आदमियों के बीच ज़मीन पर बैठने में मुझे कुछ भी संकोच नहीं होता। संकोच होगा ही क्यों?

जिनकी दृष्टि बहुत दूर तक नहीं पहुँचती है वे भलेही संकोच करें। जिनकी जैसी समझ है, वे वैसा समझते हैं। मैं अपने भारतवर्ष के सभी लोगों के साथ एक हूँ—वे सभी मेरे आत्मीय हैं। भारतवर्ष के हम लोग सब एक हैं। भारतवर्ष सब के लिए एक है। सब लोग इसी एक भारतभूमि की सन्तान हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं।

गौरमोहन के सुदीर्घ कण्ठ से निकलती हुई ये बातें घर के भीतर बड़ी देर तक गूँजती रहीं।

इन बातों को सुशीला भली भाँति न समझ सकी। वस्तुतः ये बातें उसके बखूबी समझने की थीं भी नहीं। किन्तु अनुभव के प्रथम अस्पष्ट सञ्चार का वेग बड़ा ही प्रबल होता है। मनुष्य-जीवन चहारदीवारी के भीतर या किसी दल के बीच घिरा नहीं है, यह ज्ञान मानों सुशीला के मन को दबाने लगा।

इसी समय सीढ़ी से आती हुई स्त्रियों की खिलखिलाहट और शीघ्रता से आने की पगाहट सुन पड़ी। शिवसुन्दरी और लड़कियों को लेकर परेश बाबू लौट आये। सीढ़ी से ऊपर आते समय सुधीर उन सबों का मार्ग रोक कर बीच में खड़ा हो रहा। उसकी इस नादानी पर सभी हँस पड़ी हैं, उसीका यह शब्द है।

लावण्य, ललिता और सतीश कमरे के भीतर आते ही गौरमोहन को देख ठिठक गये। लावण्य उलटे पैर कमरे से

बाहर हो गई। सतीश विनय की कुरसी के पास खड़ा हो कर उसके कान के पास मुँह ले जाकर कुछ कहने लगा। ललिता सुशीला के पीछे कुरसी खींच कर, उसकी आड़ में अपने को छिपाकर, बैठी।

परेश ने आकर कहा—मेरे लौटने में बड़ी देर हो गई। मालूम होता है, हरि बाबू चले गये?

सुशीला ने इसका कोई उत्तर न दिया। विनय ने कहा—जी हाँ, वे नहीं ठहर सके।

गौर ने खड़े होकर कहा—'अब हम भी जाते हैं,' और झुक कर परेश बाबू को प्रणाम किया।

परेश—आज अब तुम लोगों से बात चीत करने का समय नहीं रहा। जब तुम्हें फुरसत मिले, कभी कभी यहाँ आना।

गौरमोहन और विनय जब घर से जाने को उद्यत हुए तब शिवसुन्दरी सामने आ खड़ी हुई। दोनों ने उसे प्रणाम किया। उसने कहा—क्या आप लोग अब जा रहे हैं?

गौर—जी हाँ।

शिवसुन्दरी ने कहा—विनय बाबू, आप अभी नहीं जा सकते हैं। आपको खाकर जाना होगा। आपसे कुछ काम की बात करनी है।

सतीश ने लपक कर विनय का हाथ पकड़ा और कहा—हाँ, माँ, विनय बाबू को मत जाने दो। आज वे रात को मेरे साथ रहेंगे।

कुछ समीचीन उत्तर न देसकने के कारण विनय को घबड़ाया हुआ सा देख शिवसुन्दरी ने गौरमोहन से कहा—क्या आप विनय बाबू को अपने साथ ले जाना चाहते हैं? क्या आपको इनसे कोई काम है ?

गौर—"जी नहीं, कुछ भी नहीं। विनय तुम ठहर जाओ, मैं जाता हूँ।" यह कह कर वह बड़े वेग से चला गया।

विनय के ठहरने के सम्बन्ध में शिवसुन्दरी ने जब गौर से अनुमति ली, तब विनय से ललिता के मुँह की ओर बिना देखे न रहा गया। ललिता मुँह बिचका कर हँसी और उसने मुँह फेर लिया।

ललिता की इस छोटी मोटी टेढ़ी हँसी के साथ विनय झगड़ भी नहीं सकता था और न इसे बरदाश्त ही कर सकता था। यह कुचेष्टा उसे काँटे की तरह गड़ती थी। विनय के लौट कर बैठते ही ललिता ने कहा—विनय बाबू, आज आप के भाग जाने ही में कुशल थी।

विनय—क्यों ?

ललिता—माँ आपको एक विपत्ति में डालना चाहती हैं। मैजिस्ट्रेट के मेले में जो अभिनय होगा, उसमें एक आदमी कम हो गया है। माँ ने आपही को चुना है।

विनय घबड़ा कर बोल उठा—राम राम! यह क्या किया उन्होंने! यह काम मुझसे न होगा।

ललिता ने हँस कर कहा—यह तो मैं माँ से पहले ही

कह चुकी हूँ । इस नाटक में आप के मित्र कभी आपको सम्मिलित न होने देंगे ।

विनय ने चोट खाकर कहा—मित्र की बात जाने दो । मैंने सात जन्म में कभी अभिनय नहीं किया । मुझे क्यों चुनती हो ?

ललिता—मालूम होता है, हमलोग जन्म-जन्मान्तर से अभिनय करती आती हैं ?

इसी समय शिवसुन्दरी कमरे के भीतर आ बैठी । ललिता ने कहा—माँ, तुमने अभिनय में विनय बाबू को व्यर्थ साथ कर लिया है । पहले इनके मित्र को राज़ी कर लेतीं तब—

विनय ने कुछ कातर होकर कहा—मित्र को राज़ी कर लेने की बात नहीं है । अभिनय तो आज तक मैंने कभी किया ही नहीं और मुझ में वह योग्यता भी नहीं है ।

शिवसुन्दरी—उसके लिए आप चिन्ता न करें । मैं आपको सिखा-पढ़ा कर ठीक करलूँगी । छोटी छोटी लड़कियाँ अभिनय कर सकेंगी और आप न कर सकेंगे ?

विनय के उद्धार का कोई उपाय न रहा ।

[२१]

गौरमोहन अपनी स्वाभाविक शीघ्र गति त्यागकर कुछ सोचता हुआ मन्थर गति से घर की ओर चला । घर जाने

का सीधा रास्ता छोड़कर उसने टेढ़ी मेढ़ी सड़क से घूम कर गङ्गा-किनारे का रास्ता पकड़ा। तब कलकत्ते की गङ्गा और उसका तट वाणिज्य-व्यवसाय के जमघट से आक्रान्त न था। उसके तीर पर रेल की पटरी और जल में पुल की बेड़ी नहीं पड़ी थी। उस समय के शीतकालिक सायङ्काल में शहर की धूम-राशि आकाश को अब की भाँति निविड़ अन्धकार से आच्छन्न नहीं करती थी। उस समय गङ्गा का प्रवाह बहु-दूर-स्थित हिमालय के निर्जन गिरि-शृङ्ग से कलकत्ते के धूलि-लिप्त गोलमाल के बीच शान्ति के सन्देश को ले आता था।

प्रकृति की शोभा ने कभी गौर के मन को अपनी ओर खींचने का अवकाश न पाया था। उसका मन आप ही अपनी भावना में तरङ्गित हो रहा था। जो जल, स्थल और आकाश आदि उसकी भावना के विषय न थे उन पर वह लक्ष्य नहीं देता था।

किन्तु आज नदी के ऊपर का यह अनन्त आकाश अपनी नक्षत्र-माला के प्रकाश से अभिषिक्त अन्धकार द्वारा गौरमोहन के हृदय को बारंबार चुपचाप टटोलने लगा। नदी निस्तब्ध थी, घाट पर लगी हुई कई नावों में चिराग़ जल रहे थे और कई बिना दिये के अँधेरे में पड़ी थीं। उस पार के घने वृक्षों के बीच गहरा अन्धकार छा गया था। उसके ऊपर शुक्र-ग्रह, अन्धकार के अन्तर्यामी की भाँति, तिमिर-भेदी

अनिमेष दृष्टि से सब के अन्तर्गत भाव की आलोचना करता हुआ बैठा था।

आज इस बड़ी शान्त प्रकृति ने गौरमोहन के शरीर और मन को मानों दबा दिया। गौरमोहन के हृत्पिण्ड में ताल ताल पर आकाश का विराट् अन्धकार स्पन्दित होने लगा। प्रकृति इतनी देर तक धैर्य धारण करके स्थिर होगई थी—आज गौरमोहन के अन्तःकरण का कोई दर्वाज़ा खुला पाकर उसने क्षण भर में इस असावधान क़िले को अपने अधिकार में कर लिया। इतने दिन तक गौर अपनी विद्या, बुद्धि, चिन्ता और कर्म को लेकर बिलकुल स्वतन्त्र था। किन्तु आज क्या हुआ? आज उसने प्रकृति की अधीनता को इस तरह क्यों स्वीकार कर लिया? आज प्रकृति की साँवली शोभा ने तुरन्त उसके मन को अपनी ओर खींच लिया।

सड़क के किनारे सौदागर के कार्यालय की पुष्पवाटिका के भीतर की किसी विलायती लता से एक अपरिचित फूल की भीनी भीनी महँक गौरमोहन के व्याकुल हृदय पर हाथ फेरने लगी। नदी ने उस को लोकालय के अश्रान्त कर्म्म-क्षेत्र से किसी एक अनिर्देश्य विस्तृत सुदूरवर्ती दिशा की ओर इशारा किया—वहाँ निर्जन तटस्थभूमि के पेड़ों में हरे भरे पत्ते और फूल क्या ही शोभा दे रहे हैं! उनकी शीतल सघन छाया कैसी फैली है। चारों ओर से प्राकृतिक माधुर्य का तूफ़ान आकर गौर को सहसा एक अगाध अनादि आकर्षण से

खींचकर ले चला । पहले कभी स्वप्न में भी गौर को इस का अनुभव न हुआ था । यह एक ही समय में व्यथा और हर्ष से उसके समस्त मन को एक ओर से दूसरी ओर को ढकेलने लगा । अर्थात् वह प्राकृतिक सौन्दर्य कभी उसे हर्ष की ओर और कभी व्यथा की ओर खींचने लगा । आज इस जाड़े की रात में नदी के किनारे, शहर के अव्यक्त कोलाहल में और नक्षत्रों के धुँधले प्रकाश में, गौरमोहन किसी विश्व-व्यापिनी अवगुण्ठिता मायाविनी के सामने अपने को एकदम भूल गया । इस महामहिम महारानी को वह इतने दिनों तक सिर झुकाकर स्वीकार न करता था, इसलिए आज सुयोग पाकर उसकी ऐन्द्रजालिक माया ने अपने सैकड़ों रङ्ग के फन्दों के द्वारा चारों ओर से जल, स्थल और आकाश के साथ गौरमोहन को बाँध डाला । गौरमोहन अपनी मानसिक दशा पर आप ही विस्मित होकर नदी के जन-शून्य घाट की एक सीढ़ी पर बैठ गया । वह बार बार अपने मन से पूछने लगा कि मेरे जीवन में यह कैसा नूतन आविर्भाव हुआ है और इसका प्रयोजन क्या? जिस सङ्कल्प के द्वारा मैंने अपने जीवन को एक प्रकार से नियम-बद्ध कर रक्खा था उसके बीच यह एक उत्पात कहाँ से कूद पड़ा ? मेरे मन में इसके रहने की जगह कहाँ ? यह उस सङ्कल्प के विरुद्ध तो नहीं है ? युद्ध करके इस विघ्न को क्या दूर करना होगा ? यह कह कर ज्योंही गौरमोहन ने ज़ोर से मुट्ठी बाँधी त्योंही बुद्धि से उज्वल और नम्रता

से कोमल पानीदार आँखों की जिज्ञासु दृष्टि उसके मन में जाग उठी---किसी अनिन्द्य सुन्दर हाथ की उँगलियों ने स्पर्श-सौभाग्य का अनास्वादित अमृत उसके ध्यान के समीप ला रक्खा। गौर के शरीर में रोंगटे खड़े हो गये। उसकी नस नस में मानों एक अपूर्व भाव की बिजली दौड़ गई। इस निर्जन अन्धकार के भीतर इस शक्तिशाली अनुभव ने उसके समस्त प्रश्नों को, सारी दुबिधाओं को एकबारगी निरस्त कर दिया। वह अपने नये अनुभव को एकाग्र मन से देखने लगा। उस को छोड़ कर उठने की उसने इच्छा न की। वह एक आसन से ध्यान लगाये बैठा रहा।

बड़ी रात बीतने पर जब गौरमोहन वहाँ से उठकर घर गया तब आनन्दी ने पूछा---तुमने आज इतनी रात क्यों की? तुम्हारे भोजन की सामग्री ठंढी होगई।

गौर---क्या जाने, आज मेरे मन में क्या हो गया? बड़ी देर तक मैं गङ्गा के किनारे बैठा रहा।

आनन्दी---विनय तेरे साथ था?

गौर---नहीं, मैं अकेला ही था।

आनन्दी मनही मन कुछ विस्मित हुई। ऐसा कभी नहीं हुआ कि गौरमोहन निष्प्रयोजन इतनी रात तक गङ्गा के किनारे बैठकर सोचता रहा हो। चुप बैठ कर सोचने का तो उसका स्वभाव ही नहीं है। गौरमोहन जब अन्यमनस्क होकर भोजन कर रहा था, आनन्दी ने लक्ष्य करके देखा कि उसके चेहरे

पर एक विचित्र प्रकार की चञ्चलता और चिन्ता की झलक दिखाई दे रही है ।

आनन्दी ने कुछ देर बाद धीरे धीरे पूछा—मालूम होता है, तुम आज विनय के घर गये थे ?

गौर—नहीं, आज हम दोनों परेश बाबू के घर गये थे ।

यह सुन कर आनन्दी चुप चाप सोचने लगी । फिर उसने पूछा—उन सबों के साथ तुम्हारी बातचीत भी हुई ?

गौर—हाँ, हुई है ।

आनन्दी—उनकी लड़कियाँ तो प्रायः सभी के सामने बाहर निकलती हैं ?

गौर—हाँ, उनको कोई रोक टोक नहीं है ।

और समय होता तो ऐसे उत्तर के साथ साथ उसमें उत्तेजना का भाव अवश्य प्रकाशित होता । किन्तु आज उसका कोई लक्षण न देख आनन्दी फिर चुप हो रही और मनही मन कुछ सोचने लगी ।

दूसरे दिन सबेरे उठकर गौरमोहन, प्रति दिन की तरह झटपट मुँह-हाथ धो सबेरे का काम करने न गया । वह अन्य-मनस्क होकर अपने सोने के कमरे के पूरब की खिड़की खोल कर देर तक वहाँ खड़ा रहा । उसकी गली के पूरब की ओर एक बहुत बड़ी सड़क थी । उस सड़क के पूर्व प्रान्त में एक स्कूल था । उस स्कूल से भिड़े हुए एक पुराने जामुन के पेड़ पर पतला कुहरा छाया था; और कुहरे की ओट में सूर्योदय होने

के पूर्व काल की अरुण रेखा झिलमिलाती हुई सी दिखाई दे रही थी। गौरमोहन बड़ी देर तक उस ओर ध्यान से देखता रहा। उसके देखते ही देखते वह सूक्ष्म कुहरा बिला गया। सूर्य की सुनहरी किरणें वृक्ष की शाखाओं के भीतर से मानों चमचमाती हुई असंख्य संगीनों की तरह निकल पड़ीं, और कुछ ही देर में कलकत्ते की सड़क लोगों से भर गई।

ऐसे समय में सहसा गली के मोड़ से अविनाश को कई संगी साथियों के साथ अपने घर की ओर आते देख गौर ने अपने इस आसक्ति-जाल को मानों एक ही झटके में तोड़ डाला। उस जाल के भीतर जो उसका मन रूपी हरिण फँसा था वह निकल पड़ा। वह अपने हृदय की दुर्बलता पर धिक्कार देकर बोला—यह सब कुछ नहीं! यह बात कभी न होगी।—यह कह कर वह बड़े वेग से उस कमरे से बाहर गया। गौरमोहन के घर में उसका चेला दल-बल के साथ आया है और गौर ने अभी तक नित्य-कृत्य भी नहीं किया, ऐसी घटना इसके पूर्व कभी न हुई थी। इस साधारण त्रुटि से वह बड़ा लज्जित हुआ। उसने मन में सङ्कल्प किया कि अब मैं कभी परेश बाबू के घर न जाऊँगा और ऐसी चेष्टा करूँगा जिसमें विनय के साथ भी कुछ दिन भेंट न हो तथा इस विषय की आलोचना बन्द रहे।

उस दिन नीचे जाकर गौर ने सब से मिल कर यह परामर्श किया कि मैं अपने दल के दो तीन आदमियों को साथ

ले पैदल ही "ग्रैन्ड ट्रंक" सड़क से घूमने जाऊँगा; रास्ते में गृहस्थों का आतिथ्य ग्रहण करूँगा, साथ में कुछ रुपया पैसा न लूँगा।

इस अपूर्व सङ्कल्प को मन में धारण कर गौरमोहन कुछ अधिक उत्साहित हो उठा। सब बन्धनों को तोड़ कर इस खुले रास्ते से निकल पड़ने का प्रबल आनन्द उसके मन में उमड़ उठा। भीतर ही भीतर उसका मन जिस एक ज़ंजीर से जकड़ा था, वह ज़ंजीर बाहर होने की इस कल्पना से मानों टूटी सी जान पड़ी। यह आसक्ति भाव केवल माया है और कर्म ही सत्य है,—इस बात को मन ही मन ख़ूब मनन कर भ्रमण करने की तैयारी के लिए, स्कूल से छुट्टी पाये हुए बालक की भाँति, गौरमोहन अपने नीचे वाले बैठने के कमरे को छोड़ कर बाहर हुआ। उसी समय कृष्णदयाल गङ्गास्नान कर के ताँबे की कलसी में गङ्गाजल लिये, रामनामी ओढ़े, मन ही मन कुछ पाठ करते हुए घर आ रहे थे। रास्ते में उनसे गौरमोहन की एकाएक भेट हो गई। गौरमोहन ने लज्जित हो झटपट उनके दोनों पैर छू कर प्रणाम किया। वे सकुच कर, ठहरो ठहरो, कह कर घर की ओर बढ़े। पूजा पर बैठने के पूर्व गौर के छूलेने से उनका गङ्गास्नान का फल मिट्टी हो गया। 'कृष्णदयाल मेरा संस्पर्श बचाये रहते हैं' यह गौर न जानता था। वह समझता था कि छूत-पन्थी होने के कारण सब प्रकार सब का सम्बन्ध बचा कर चलना ही दिन दिन

उनकी सावधानता का एक मात्र लक्ष्य है। आनन्दी को तो वे म्लेच्छ कह कर उससे दूर ही रहा करते थे। महिम काम-काजी आदमी था, उसको फुरसत कहाँ जो उनसे भेंट करे। घर के सभी लोगों के बीच केवल महिम की बेटी शशिमुखी को वे अपने पास बिठा कर संस्कृत स्तोत्रों का अभ्यास कराते और उससे पूजा की सेवा-टहल कराते थे।

गौरमोहन से अपने पैर छूजाने के कारण कृष्णदयाल जब घबरा कर भागे तब उनके संकोच के सम्बन्ध में गौर को चेत हुआ और वह मन ही मन हँसा। इस प्रकार पिता के साथ गौर का सब सम्बन्ध धीरे धीरे टूट गया था और माता के अनाचार की वह चाहे जितनी निन्दा करे, पर तो भी वह इस अनाचारिणी माँ को ही अपने जीवन की समस्त भक्ति समर्पित कर उसकी पूजा करता था।

भोजन के अनन्तर गौर एक छोटी सी गठरी में कुछ कपड़े लेकर और उसे विलायती मुसाफ़िर की भाँति पीठ पर बाँध कर वह माँ के पास आया और बोला—माँ, मैं कुछ दिन के लिए बाहर घूमने जाऊँगा।

आनन्दी—कहाँ जाओगे बेटा ?

गौर—यह मैं ठीक ठीक नहीं कह सकता।

आनन्दी ने पूछा—क्या कोई काम है ?

गौर—काम तो वैसा कुछ नहीं है—यह घूमने को जाना ही काम समझो।

आनन्दी को मन मार कर कुछ देर चुप देख गौर ने कहा—माँ, मैं हाथ जोड़ कर प्रार्थना करता हूँ, मुझे जाने से रोको मत। तुम तो मुझको जानती ही हो। मैं संन्यासी हो जाऊँ, यह तो कभी हो नहीं सकता। मैं तुम को छोड़ कर अधिक दिन कहीं रह नहीं सकता।

गौर ने माँ के निकट अपना प्रेम इस तरह अपने मुँह से कभी प्रकट नहीं किया था—इसीसे आज यह बात कह कर वह लज्जित हुआ।

उसकी बात से पुलकित होकर आनन्दी ने झट उसकी लज्जा दबा देने के लिए कहा—क्या विनय भी साथ जायगा ?

गौर ने व्यस्त होकर कहा—नहीं माँ, विनय न जायगा। यह देखो! माँ के मन में चिन्ता होती है कि विनय के न जाने से, बाट घाट में मेरे गोरा की कौन रक्षा करेगा? अगर तुम विनय को मेरा रक्षक समझती हो तो यह तुम्हारी भूल है। इस दफ़े सुरक्षित रूप में मेरे लौट आने से तुम्हारा यह भ्रमात्मक ज्ञान मिट जायगा।

आनन्दी ने पूछा—बीच बीच में ख़बर मिलेगी न ?

गौर—ख़बर न मिलेगी, यही निश्चय करलो। इसके बाद यदि ख़बर पाओगी तो विशेष हर्ष होगा। कुछ डर नहीं। तुम्हारे गोरा को कोई न लेगा। माँ, तुम मुझे जितना चाहती हो उतना और कोई नहीं चाहता। मैं तुम्हारी दृष्टि में जैसा

बहुमूल्य जँचता हूँ वैसा और की दृष्टि में नहीं। तब इस गठरी पर यदि किसीको लोभ होगा तो यह उसे देकर चला आऊँगा; इसकी रक्षा के पीछे प्राण थोड़े ही दूँगा।

गौर ने आनन्दी के पैर छूकर प्रणाम किया। उसने उसके मस्तक पर हाथ रख कर आशीर्वाद दिया। उसकी यात्रा में किसी तरह की बाधा न दी। अपने कष्ट होने की बात सोच कर या किसी तरह के अनिष्ट की आशङ्का करके आनन्दी कभी किसी को न रोकती थी। वह अपने जीवन में अनेक बाधा और विपत्तियों के बीच होकर आई है। बाहरी संसार उसके लिए अज्ञात नहीं है। उसके मन में भय न था। गौर-मोहन किसी विपत्ति में पड़ेगा, यह आशङ्का भी न थी। किन्तु गोरा के मन में जो एक प्रकार का नया विप्लव हो पड़ा है, इस बात का शोच कुछ दिन से उसके मन में ज़रूर है। आज सहसा गोरा बिना कारण भ्रमण करने चला है यह सुन, कर उसका वह शोच और भी बढ़ गया।

गौर ने पीठ पर पोटली बाँध कर ज्योंही सड़क पर पैर रक्खा त्योंही हाथ में गुलाब के फूल लिये विनय उसके सामने आ खड़ा हुआ। गौर ने कहा—विनय, तुम्हारे दर्शन से यात्रा शुभ होगी या अशुभ?—इस दफ़े इसकी परीक्षा होगी।

विनय—कहीं जाते हो क्या?

गौर—हाँ।

विनय—कहाँ ?

गौर—देखो, प्रतिध्वनि ने उत्तर दिया 'कहाँ' ।

विनय—प्रतिध्वनि की अपेक्षा क्या कोई अच्छा जवाब नहीं है ?

गौर—नहीं, तुम माँ के पास जाओ, उसके मुँह से सब सुन लेना । मैं जाता हूँ—यह कह कर गौरमोहन वेग से चल पड़ा ।

विनय ने भीतर जा आनन्दी को प्रणाम कर उनके पैरों पर गुलाब के फूल रख दिये ।

आनन्दी ने फूल उठा कर पूछा—ये तुमने कहाँ पाये ?

विनय ने उसका ठीक उत्तर न देकर कहा—उत्तम वस्तु मिलते जी चाहता है कि पहले इसके द्वारा माँ की पूजा करूँ।

इसके बाद विनय ने आनन्दी की चौकी पर बैठ कर कहा—माँ, आज क्या तुम्हारा चित्त ठिकाने नहीं है ?

आनन्दी—तुमको कैसे मालूम हुआ ?

विनय—आज तुम मुझे पान देना भूल गई हो ।

आनन्दी ने लज्जित हो पान लाकर विनय को दिया ।

इसके बाद दो-पहर से दोनों में वार्तालाप हुआ । गौरमोहन के इस प्रकार निरुद्देश होकर घूमने का अभिप्राय क्या है, इस सम्बन्ध में विनय कोई पक्की ख़बर न देसका ।

आनन्दी ने इधर उधर की बातें करते करते पूछा—क्या तुम कल गोरा को लेकर परेश बाबू के घर गये थे ?

विनय ने कल की सारी घटना विस्तारपूर्वक कह सुनाई। आनन्दी ने प्रत्येक बात बड़े ध्यान से सुनी।

जाते समय विनय ने कहा—माँ, पूजा तो विधिवत् हुई। अब तुम्हारे चरणों की प्रसादी का फूल सिर पर धारण करने को मिल सकेगा ?

आनन्दो ने हँस कर गुलाब के फूल विनय के हाथ में दिये और मन में सोचा कि ये दोनों फूल जो केवल ख़ूबसूरती ही के कारण आदर पाते हों सो नहीं। उद्भिदतत्व के अतिरिक्त ज़रूर इसके भीतर और कोई गंभीर तत्व छिपा है।

दिन के पिछले पहर विनय के चले जाने पर वह न जाने कहाँ कहाँ की बातें सोचने लगी। भगवान् को पुकार कर बार बार प्रार्थना करने लगी कि गोरा को किसी तरह का कोई कष्ट न हो और विनय से उसके अलग होने का कोई कारण संघटित न हो।

[२२]

गुलाब के फूलों का एक उपाख्यान है। कल रात को गौरमोहन तो परेश बाबू के घर से चला आया किन्तु मैजिस्ट्रेट के यहाँ उस अभिनय में योग देने का प्रस्ताव लेकर विनय बडो विपत्ति में पडा।

इस अभिनय में ललिता का वैसा कुछ उत्साह नहीं था बल्कि इन बातों को वह पसन्द ही न करती थी। किन्तु किसी तरह विनय को इस अभिनय में शामिल करने के लिए उसके मन में मानों एक प्रकार की ज़िद हो गई थी। जो काम गोरा के मत के खिलाफ़ थे, उन कामों को विनय के द्वारा पूरा कराना ही उसका अभीष्ट था, मानों वह अपने क्रोध को इसी के द्वारा चरितार्थ करना चाहती थी। विनय गौरमोहन का अनुवर्ती है, यह बात ललिता को असह्य थी पर वह इसका कारण खुद भी नहीं जानती थी। जो हो, वह यही चाहती थी कि विनय को किसी तरह गौरमोहन के हाथ से छुड़ा कर स्वतन्त्र कर दूँ।

ललिता ने अपनी चोटी हिलाकर विनय से पूछा—क्यों साहब, अभिनय करने में दोष ही क्या है?

विनय—अभिनय करने में दोष न हो, किन्तु मैजिस्ट्रेट के घर पर जा कर अभिनय करना मुझे अच्छा नहीं मालूम होता।

ललिता—आप अपने मन की बात कहते हैं या और किसीके मन की?

विनय—दूसरे के मन की बात कहने का ज़िम्मा मैं नहीं लेता—दूसरे के मन की बात कोई कह भी तो नहीं सकता। आप शायद विश्वास न करेंगी, परन्तु मैं अपने मन की ही बातें कहा करता हूँ—कभी अपने मुँह से और कभी और के मुँह से।

इस बात का कोई जवाब न देकर ललिता ज़रा मुँह टेढ़ा कर के हँसने लगी। वह कुछ देर पीछे बोली—आपके मित्र गौर बाबू समझते हैं कि मैजिस्ट्रेट का निमन्त्रण अस्वीकार करने ही में बड़ी बहादुरी है—मानों इसी में वे अँगरेज़ों के साथ प्रतिस्पर्द्धा कर दिल के फफोले फोड़ते हैं।

विनय ने उत्तेजित होकर कहा—मेरा मित्र तो शायद ऐसा नहीं समझता पर मैं समझता हूँ। यह प्रतिस्पर्धा नहीं तो क्या है? जो हमें आदमी नहीं समझते, और यदि समझते भी हैं तो बहुत तुच्छ; जो इशारे पर हमें बन्दर की तरह नचाना चाहते हैं; जो हमें उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं उन के लिए यदि उस उपेक्षा के बदले उपेक्षा न की जाय तो हम लोग अपने सम्मान की रक्षा कैसे कर सकेंगे?

ललिता में स्वयं आत्माभिमान की मात्रा काफ़ी थी। इसलिए वह विनय के मुँह से आत्म-गौरव की बात सुन कर मनही मन ख़ुश हुई। परन्तु इससे वह अपने पक्ष को दुर्बल न समझ कर के निष्कारण आक्षेप की बात से विनय के मन को दुखाने लगी।

आख़िर विनय ने कहा—आप इसके लिए विवाद क्यों कर रही हैं? आप स्पष्ट क्यों नहीं कहतीं कि 'मेरी इच्छा है, तुम अभिनय में साथ दो।' तब मैं आपके अनुरोध से अपने मत को त्याग कर जी को कुछ सुखी करूँ।

ललिता—वाह! यह मैं क्यों कहूँ? यदि आप अपने मत

को किसी तरह पुष्ट कर सकें तो आप उसे मेरे अनुरोध से क्यों छोड़ेंगे? किन्तु वह मत सत्य होना चाहिए।

विनय—अच्छा यही सही। न मैं अपने मत को सत्य ही कर सका, और न आपके अनुरोध की ही कोई बात रही। मैं आपके युक्ति-युक्त वाद से ही परास्त होकर अभिनय में योग देने को राज़ी हूँ।

इसी समय शिवसुन्दरी को वहाँ आते देख विनय ने झट उठ कर कहा—बतलाइए, अभिनय में सम्मिलित होने के लिए मुझे क्या करना होगा?

शिवसुन्दरी ने गर्व के साथ कहा—उसके लिए आप को कुछ भी चिन्ता करनी न होगी; मैं आपको तैयार कर लूँगी। सिर्फ़ अभ्यास के लिए आपको नित्य नियमित समय पर आना होगा।

विनय—अच्छा तो आज जाता हूँ।

शिवसुन्दरी—यह क्या कहते हो? कुछ खाकर जाना।

विनय—आज नहीं।

शिवसुन्दरी—नहीं नहीं, यह न होगा।

विनय ने भोजन किया। किन्तु अन्य दिन की भाँति आज उसके मुँह पर स्वाभाविक प्रसन्नता न थी। आज सुशीला भी कुछ चिन्तित हो एक ओर चुपचाप बैठी थी। जब ललिता के साथ विनय की बहस हो रही थी तब वह बरामदे में टहल रही थी। आज की रात में बातें ख़ूब न जमीं।

जाते समय विनय ने ललिता के उदासीन मुँह की ओर देख कर कहा—मैंने हार मानी तो भी आपको प्रसन्न न कर सका।

ललिता कुछ उत्तर दिये बिना ही चली गई।

ललिता सहज ही रोना नहीं जानती थी, किन्तु आज उसकी आँखों से आँसू निकलना चाहते हैं। क्या हुआ है? आज वह अपनी करतूत पर आप ही सिर पीट पीट कर रोना चाहती है। वह बार बार इस प्रकार निरपराधी विनय बाबू को क्यों चुटीली बातें कहती है और आप कष्ट पाती है?

विनय जब तक अभिनय में सम्मिलित होने को राज़ी न था तब तक ललिता की ज़िद भी आसमान पर चढ़ी जाती थी, किन्तु जब उसने स्वीकार कर लिया तब ललिता का सब उत्साह मिट्टी में मिल गया। शामिल न होने के लिए जितनी युक्तियाँ थीं सब उसके मन में प्रबल हो उठीं। तब उसका मन व्यथित होकर कहने लगा, केवल मेरा अनुरोध रखने के लिए विनय बाबू का इस प्रकार राज़ी हो जाना उचित नहीं। अनुरोध! अनुरोध क्यों मानेंगे? वे समझते हैं कि अनुरोध रख कर वे मेरे साथ भद्रता कर रहे हैं!—ओहो! उनकी यह भद्रता पाने के लिए मानों मेरा सिर दुःख रहा है!

किन्तु अभी इस तरह की स्पर्धा करने से कैसे बनेगा? निःसन्देह वह विनय को अभिनय के दल में खींचने के लिए इतने दिनों से आग्रह दिखाती आई है। आज विनय ने सुशीलता को

जगह दे उसका इतना बड़ा अनुरोध मान लिया है, इस लिए उस पर क्रोध करना भी अनुचित होगा। इस घटना से ललिता को अपने ऊपर इतनी घृणा और लज्जा हुई जिसके स्वभावत: इतनी बड़ी होने का कोई कारण न था। और दिन उसके मन में जब किसी तरह का उद्वेग होता था तब वह सुशीला के पास जाती थी। पर आज नहीं गई और क्यों उसका हृदय विवश हो गया तथा उसकी आँखों से इस प्रकार सहसा आँसू गिरने लगे, इसका ठीक ठीक कारण वह ख़ुद न समझ सकी।

दूसरे दिन सवेरे सुधीर ने लावण्य को एक गुलदस्ता लाकर दिया था। उस गुलदस्ते में, एक डाल में, दो अधखिले गुलाब के फूल थे। ललिता ने उस गुलदस्ते से उन्हें खोलकर रख लिया। लावण्य ने कहा—यह क्या किया? ललिता ने कहा—गुलदस्ते में अनेक फूल-पत्तियों के बीच अच्छे फूल को बँधा देख मुझे कष्ट होता है; इस तरह एक ही रस्सी में सब भली-बुरी चीज़ों को एक श्रेणी में ज़बरदस्ती बाँधना मूर्खता है।

यह कह कर ललिता ने सब फूलों को खोल कर उन्हें घर के इधर उधर—जहाँ जो रखने योग्य था—रख दिया; सिर्फ़ गुलाब के दोनों फूलों को लेकर वह चली गई।

सतीश ने उसके हाथ में फूल देख कर कहा—बहिन, ये फूल कहाँ मिले?

ललिता ने उसका उत्तर न देकर कहा—आज तू अपने दोस्त के घर न जायगा?

विनय की ओर अभी तक सतीश का ध्यान न था किन्तु उसके मुँह से विनय का नाम सुनते ही वह उछल कर बोला—हाँ, जाऊँगा क्यों नहीं!—बस, वह जाने के लिए आतुर हो उठा।

ललिता ने उसका हाथ पकड़ कर पूछा—वहाँ जाकर तू क्या करता है?

सतीश ने संक्षेप में कहा—गप शप।

ललिता—उन्होंने तुझ को इतने चित्र दिये हैं, तू उन्हें कुछ क्यों नहीं देता?

विनय सतीश के लिए अँगरेज़ी अख़बारों और विज्ञापनों से अनेक तसवीरें काट कर रखता था। सतीश ने एक बही बनाकर उसमें उन चित्रों को चिपकाना आरम्भ किया था। इस प्रकार वह चित्रों से बही भरने के लिए इतना व्यग्र हो पड़ा कि अच्छी किताबों में चित्र देख उनमें से भी चित्र काट कर ले लेने के लिए उसका मन छटपटाता था। इस लोलुपता के अपराध में उसे कई बार अपनी बहनों के द्वारा विशेष दण्ड सहने पड़े हैं।

संसार में दान के बदले दान देना भी एक ज़रूरी बात है, यह जान कर आज सतीश को बड़ी चिन्ता हुई। टूटे टीन के बक्स में उसकी जो कुछ निज की सम्पत्ति सञ्चित

है उसमें ऐसी कोई चीज़ नहीं जिसे वह सहसा किसीको दे डाले। सतीश का चेहरा घबड़ाया सा देख कर ललिता ने हँस कर धीरे से उसका गाल दबा कर कहा—ठहर, ठहर, अब तुझे अधिक सोचना न होगा। यही दोनों गुलाब के फूल उन्हें देना।

इतने सहज में ही इस कठिन समस्या को हल होते देख वह प्रसन्न हो गया और बड़ी खुशी से दोनों फूल लेकर अपने मित्र का ऋण चुकाने चला।

रास्ते में विनय के साथ उसकी भेंट हुई। सतीश दूर से ही उसे—विनय बाबू, विनय बाबू, कहकर पुकारता हुआ दौड़ कर उसके पास पहुँचा और कुरते की जेब में फूल छिपाकर बोला—बतलाइए, मैं आपके लिए क्या लाया हूँ?

विनय से हार मनाकर उसने जेब में से दोनों फूल निकाले। विनय ने कहा—वाह! बहुत ही बढ़िया फूल हैं। किन्तु सतीश बाबू, ये तो तुम्हारे निज के नहीं हैं। चोरी का माल लेकर आखिर मैं कहीं पुलिस के हाथ न पकड़ा जाऊँ?

ये फूल उसके निज के हैं या नहीं, इस विषय में सतीश को कुछ धोखा हुआ। कुछ देर मन में सोचकर उसने कहा—नहीं जी, यह चोरी कैसे हुई? ललिता बहन ने मुझको दिये हैं आप को देने के लिए।

इस बात का फैसला यहीं हो गया और विनय ने

साँझ को उसके घर जाने का वादा करके सतीश को बिदा कर दिया।

कल रात को ललिता की वक्रोक्ति की चोट खाकर विनय अब भी उसकी वेदना को भूल न सका था। विनय के साथ प्रायः किसी का विरोध नहीं होता। इस लिए वह किसी से इस प्रकार का तीव्र आघात पाने की आशङ्का भी नहीं रखता। इसके पहले वह ललिता को सुशीला की अनुवर्तिनी समझता था। किन्तु अंकुश खाया हुआ हाथी जैसे अपने महावत को नहीं भूलता, कुछ दिन से वैसी ही दशा ललिता के सम्बन्ध में विनय की भी थी। किस तरह मैं ललिता को कुछ प्रसन्न करूँ और शान्ति पाऊँ, यही चिन्ता विनय के मन में प्रधान हो उठी थी। साँझ को परेश बाबू के घर से लौट कर आने के बाद सोते समय, ललिता की कुटिल हास्य-भरी जली-कटी बातें एक एक कर उसके मन में उठतीं और उसकी नींद को तोड़ डालती थीं। मैं छाया की भाँति गौर के पीछे लगा फिरता हूँ, 'मैं गौर का आज्ञाकारी हूँ, मैं उसकी अनुमति के विना स्वयं कुछ कर नहीं सकता'—यह कह कर ललिता मेरा अपमान करती है, परन्तु उसकी एक भी बात सच नहीं। विनय इसके विरुद्ध अनेक प्रकार की युक्तियाँ मन में एकत्र कर रखता था। किन्तु वे सब युक्तियाँ उसके किसी काम न आती थीं। क्योंकि ललिता तो स्पष्ट रूप से यह अभियोग उसके विरुद्ध लगाती न थी—इस बात के विषय में तर्क करने का अव-

काश उसे न देती थी। मतलब यह कि विनय के पास जवाब देने को बहुत बातें रहने पर भी वह समय पर उनका व्यवहार न कर सकता था, जिससे उसके मन में क्षोभ और भी बढ़ जाता था। कल की रात जब उसने हार मान कर भी ललिता के मुँह पर प्रसन्नता न देखी तब वह घर आकर बहुत घबरा गया और सोचने लगा कि क्या सचमुच ही मैं इतनी बड़ी अवज्ञा का पात्र हूँ?

इसीसे विनय ने जब सतीश से सुना कि ललिता ही ने सतीश के हाथ उसके लिए गुलाब के फूल भेज दिये हैं तब वह मारे ख़ुशी के उछल पड़ा। उसने सोचा, अभिनय में सम्मिलित होने को राज़ी होजाने से सन्धि (मैत्री) का चिह्न-स्वरूप गुलाब के फूल ललिता ने प्रसन्न हो कर दिये हैं। पहले उसके मन में आया कि ये दोनों फूल अपने घर में रख आवे, पीछे उसने सोचा--नहीं, ये शान्तिसूचक फूल माँ के पैरों पर चढ़ा कर इन्हें पवित्र करलाना चाहिए।

उस दिन साँझ को विनय जब परेश बाबू के घर गया तब सतीश ललिता के पास बैठकर स्कूल का पाठ याद कर रहा था। विनय ने ललिता से कहा—युद्ध का रङ्ग लाल होता है, इस लिए सन्धि का फूल सफ़ेद होना चाहिए था।

ललिता इस बात का अर्थ न समझ विनय के मुँह की ओर देखने लगी। तब विनय ने अपनी चादर के खूँट से उजले कनेर के फूलों का एक गुच्छा निकाल कर ललिता के सामने

रक्खा और कहा—आप के दोनों फूल चाहे जितने सुन्दर हों तोभी उनमें कुछ कुछ क्रोध का रङ्ग है; मेरे ये फूल शोभा में उनका मुक़ाबला नहीं कर सकते किन्तु शान्ति के स्वच्छ रूप में नम्रता स्वीकार कर आपके पास हाज़िर हुए हैं।

ललिता के कपोलों पर गुलाबी आभा दौड़ गई। उसने कहा—आप किनको मेरे फूल कहते हैं?

विनय ने कुछ ठिठक कर कहा—तब मेरी भूल है, मुझे धोखा हुआ। सतीश बाबू, तुम ने किसके फूल किसको दे दिये?

सतीश ज़ोर से बोल उठा—वाह! ललिता बहन ने देने को कहा था!

विनय—किसे देने को कहा था?

सतीश—आपको।

ललिता ने खिसिया कर सतीश की पीठ में एक थप्पड़ जड़ कर कहा—तुझ सा बेवकूफ़ तो मैंने देखा नहीं। विनय बाबू के दिये हुए चित्रों के बदले तूही न फूल देना चाहता था?

सतीश हत-बुद्धि होकर बोला—हाँ, उसी के बदले में तो दे आया था! किन्तु तुम्हीं ने मुझसे फूल देने को कहा था न?

सतीश के साथ झगड़ने में ललिता और भी पकड़ी गई। विनय ने स्पष्ट समझ लिया, फूल ललिता ने ही दिये थे।

किन्तु उसका अभिप्राय बेनामी से ही काम करने का था। उसका नाम ज़ाहिर होते ही वह बिगड़ उठी है। विनय ने कहा—आपके फूलों का दावा मैं छोड़े देता हूँ किन्तु इससे आप यह न समझें कि इन फूलों के विषय में मेरी कुछ भूल है। हमें लोगों के झगड़े का निबटेरा होजाने के शुभ उपलक्ष में ये फूल मैं आपको—

ललिता ने सिर हिला कर कहा—हम लोगों का विवाद ही क्या; और उसका निबटेरा ही कैसा?

विनय—तब तो ये सभी इन्द्रजाल के खेल हैं? विवाद भी झूठ, फूल भी वही, और निष्पत्ति भी मिथ्या? केवल सीप में चाँदी का भ्रम, नहीं, सीप भी बिलकुल भ्रमात्मक! अच्छा, अब यह कहिए कि मैजिस्ट्रेट साहब के घर पर जो अभिनय होने की बात हो रही थी वह भी क्या—

ललिता—वह भ्रम नहीं, वह सत्य ही है। किन्तु उस अभिनय के लिए झगड़ा कैसा? आप ऐसा क्यों समझते हैं कि इसमें आप को राज़ी करने ही के लिए मैंने आपके साथ कलह किया है और आपकी स्वीकृति होने ही से मैं कृतार्थ हो गई हूँ! अगर आपको अभिनय करना अनुचित जान पड़ेगा तो किसीकी बात में पड़ कर आप उसे क्यों स्वीकार करेंगे?

यह कह कर ललिता वहाँ से चली गई। बात बिल-कुल उलटी हो गई। विनय क्या सोच कर आया था और

क्या हो गया! आज ललिता ने निश्चय कर रक्खा था कि मैं विनय के आगे अपनी हार स्वीकार करूँगी और उससे ऐसा ही अनुरोध करूँगी जिसमें अभिनय में योग न दे। कहाँ उसने यह बात सोच रक्खी थी, और कहाँ यह नई बात उठ खड़ी हुई जिससे परिणाम में फल ठीक उसका उलटा हुआ। विनय ने सोचा, मैंने इतने दिन तक अभिनय के सम्बन्ध में जो विरुद्धता प्रकट की थी, उसके प्रतिघात की उत्तेजना ललिता के मन में कुछ रह गई है। वह समझती होगी, विनय ने केवल ऊपर के मन से मान लिया है—किन्तु भीतर विरोध बना है, इसीसे शायद ललिता के मन का क्षोभ अभी तक दूर नहीं हुआ। ललिता के जो इस घटना से इतनी ग्लानि हुई है, इससे विनय को बड़ा दुःख हुआ। उसने मन ही मन निश्चय किया कि अब मैं इस विषय में परिहास-बुद्धि से भी कोई आलोचना न करूँगा; और ऐसी निष्ठा और निपुणता के साथ इस काम को करूँगा कि कोई मुझ पर उदासीनता का दोष आरोपित न कर सकेगा।

सुशीला आज भोर से ही अपने सोने के कमरे में अकेली बैठ कर एक ईसाई धर्म-ग्रन्थ पढ़ने की चेष्टा कर रही थी। आज वह अभी तक अपना कोई प्रातःकालिक नियमित काम नहीं कर सकी। घर का कोई काम करने की आज उसे प्रवृत्ति नहीं होती। पुस्तक पढ़ने में भी उसका जी नहीं लगता। पढ़ते पढ़ते उसका ध्यान किसी दूसरी ओर चला जाता था।

और वह क्या पढ़ गई है यह उसकी समझ में न आता था। फिर वह पाठ के टूटे हुए सूत्र को पुनरावृत्ति से जोड़ती और चञ्चलता के कारण अपने मन पर कुढ़ती थी।

एक बार दूर से कण्ठ-स्वर सुन कर उसे मालूम हुआ कि विनय बाबू आये हैं। तब वह चौंक उठी और झट हाथ से किताब रख कर बाहर जाने के लिए व्याकुल हो गई। अपनी इस चञ्चलता से अपने ऊपर क्रुद्ध होकर सुशीला फिर किताब हाथ में ले कुरसी पर बैठ गई। विनय की बोली फिर कहीं सुन न पड़े, इसलिए वह दोनों कान बन्द करके पढ़ने लगी।

ऐसा कितनी ही बार हुआ है कि विनय पहले आया है, और गौरमोहन उसके पीछे। आज भी ऐसा हो सकता है, यह सोच कर सुशीला रह रह कर चकित हो उठती थी। गौरमोहन पीछे आ न जाय, यही उसको भय था और न आने की आशङ्का भी उसे कष्ट दे रही थी।

विनय के साथ ऊपर के मन से दो चार बात करने के बाद सुशीला मन के भाव को छिपाने का और कोई उपाय न देख सतीश की चित्र-संग्रह बही लेकर उसके साथ चित्रों के सम्बन्ध में आलोचना करने लगी। बीच बीच में चित्र चिपकाने की त्रुटि दिखा कर उसने सतीश की बेवकूफ़ी पर हँस कर उसे चिढ़ा दिया। सतीश अत्यन्त उत्तेजित होकर ख़ूब ज़ोर से वादानुवाद करने लगा। इधर विनय टेबल पर अपने लौटाये हुए कनेर के फूलों के गुच्छे को देख कर लज्जा और

क्षोभ से मन ही मन कहने लगा कि आख़िर शिष्टता के ख़याल से भी तो मेरे इन फूलों को ले लेना ललिता को उचित था।

सहसा किसीके पैरों की आहट सुन सुशीला ने चौंक कर पीछे फिर कर देखा, हरि बाबू आ रहा है। सुशीला के चौंकने से उसका चेहरा कुछ आरक्त हो गया। हरिश्चन्द्र ने कुरसी पर बैठ कर कहा—विनय बाबू, आपके गौर बाबू नहीं आये?

विनय ने हरिश्चन्द्र के ऐसे अनावश्यक प्रश्न से रुष्ट होकर कहा—क्यों? क्या उनसे कोई काम है?

हरि—आप हैं तब वे न हों, यह प्रायः संभव नहीं, इसीसे पूछा है।

विनय के मन में बड़ा क्रोध हुआ। परन्तु उसने अपने क्रोध को दबा कर कहा—वे कलकत्ते में नहीं हैं।

हरि—तो क्या धर्मप्रचार करने गये हैं?

विनय का क्रोध और भी बढ़ गया। उसने कुछ उत्तर न दिया। सुशीला भी चुपचाप वहाँ से उठ कर चली गई।

हरि बाबू झट उसके पीछे पीछे गया, किन्तु वह बढ़ गई। जब वह उसे न पा सका तब दूर से पुकार कर कहा—सुशीला, ठहरो, तुमसे कुछ कहना है।

आज मेरी तबीयत ठीक नहीं—यह कहते हुए सुशीला ने अपने शयनागार में जाकर भीतर से किवाड़ लगा दिये।

इसी समय ललिता उसके कमरे में आई। सुशीला ने उसके मुँह की ओर देख कर कहा—बतला, तुझे क्या हुआ है?

ललिता ने सिर हिला कर कहा—कुछ भी तो नहीं।

सुशीला ने पूछा—तू कहाँ थी?

ललिता—विनय बाबू आये हैं, शायद वे तुमसे कुछ कहना चाहते हैं।

विनय के साथ और कोई आया है कि नहीं, यह प्रश्न आज सुशीला नहीं पूछ सकी। यदि और कोई आया होता तो ललिता ज़रूर ही उसका नाम लेती किन्तु तो भी उसके मन का संशय दूर न हुआ। अब वह अपनेको दबाने की चेष्टा न करके घर आये हुए अतिथि के प्रति कर्त्तव्य-पालन के अभिप्राय से बाहर के कमरे की ओर चल पड़ी। ललिता से पूँछा—तू नहीं चलेगी?

ललिता ने अधीरता भरे स्वर में कहा—तुम जाओ—मैं पीछे से आऊँगी।

सुशीला ने बाहर के कमरे में आकर देखा—विनय सतीश के साथ गप शप कर रहा है।

सुशीला ने कहा—बाबू जी घूमने गये हैं, अभी आवेंगे। माँ आप लोगों के उस अभिनय की कविता कण्ठस्थ कराने के लिए लावण्य और लीला को लेकर मास्टर साहब के यहाँ गई हैं। ललिता किसी तरह जाने को राज़ी नहीं हुई। वे कह

गई हैं कि आप आवें तो आपको बिठा लिया जाय—आज आपकी परीक्षा होगी ।

विनय ने पूछा—क्या आप इसमें नहीं हैं ?

सुशीला—सब अभिनय करने वाले ही हों तो संसार में दर्शक कौन होगा ?

शिवसुन्दरी सुशीला को इन कामों में यथासंभव बचा कर चलती थी। इसीसे नाटकीय गुण दिखाने के लिए इस दफ़े भी उससे कुछ नहीं कहा गया ।

और दिन ये दोनों (सुशीला और विनय) जब एक जगह बैठते थे, तब ख़ूब गप शप होती थी । आज दोनों ओर ऐसा विघ्न हुआ है कि किसी तरह बात जमने न पाई । सुशीला यह प्रतिज्ञा करके आई थी कि गौरमोहन की बात न चलाऊँगी । विनय भी ललिता की वक्रोक्ति से चिढ़कर गौर की चर्चा न चला सकता था । विनय को ललिता, ललिता ही क्यों, इस घर के प्रायः सभी लोग गौर का उपग्रह (हुक्म मान कर चलनेवाला व्यक्ति) समझते हैं, यह सोच कर विनय गौरमोहन के विषय में कोई बात न करना चाहता था ।

इसी समय शिवसुन्दरी आकर जब अभिनय की तालीम देने के हेतु विनय को बुलाकर दूसरे कमरे में ले गई, तब कुछ ही देर बाद अकस्मात् वे फूल टेबल पर से ग़ायब हो गये । उस रात में ललिता भी शिवसुन्दरी के अभिनय के अखाड़े में दिखाई न दी; और सुशीला ईसाई-मत की एक पोथी अपनी

गोद में रक्खे, चिराग़ को घर के एक कोने में छिपाकर बड़ी रात तक द्वार के समीप बैठकर अँधेरी रात की ओर गाल पर हाथ दिये देखती रही। उसके आगे मानों कोई अपरिचित अपूर्व स्थान मृगतृष्णा की तरह दिखाई दिया था। इतने दिन तक जीवन में जो बातें जानी सुनी हैं उन के साथ उस स्थान के किसी अंश का चिर-विच्छेद है, इस लिए वहाँ के झरोखों में जो रोशनी हो रही है, वह घोर अँधेरी रात की नक्षत्र-माला की भाँति सुदूरवर्ती होने का कौतुक दिखा मन को सशङ्कित कर रही है। इस अपूर्व दृश्य को देख उसके मन में आया कि मेरा जीवन तुच्छ है; इतने दिन तक जिसे सच माना है वह संशयाकीर्ण है और जो नित्य का व्यवहार करती आती हूँ वह अर्थ-हीन है। अब यहाँ पहुँच कर शायद ज्ञान का पूर्ण लाभ होने और कर्म के उच्च होने से मैं जीवन को सार्थक कर सकूँ। इस अपूर्व अपरिचित भयङ्कर स्थान के अज्ञात सिंह-दर्वाज़े के सामने किसने मुझे लाकर खड़ा कर दिया है? क्यों मेरा हृदय इस तरह काँप रहा है? क्यों मेरे पैर उस ओर आगे बढ़ कर फिर इस प्रकार स्तब्ध हो रहे हैं?

[२३]

सुशीला ने इधर कई दिनों से उपासना में विशेष रूप से

मन लगाया था । वह अब पूर्व की अपेक्षा बढ़कर परेश बाबू का आश्रय पाने की चेष्टा कर रही थी । एक दिन परेश बाबू अपने कमरे में अकेले बैठ कर कुछ पढ़ रहे थे, इसी समय सुशीला उनके पास आकर चुपचाप बैठ गई । परेश बाबू ने पुस्तक को टेबल पर रख कर पूछा—क्या है बेटी !

'कुछ नहीं' कहकर सुशीला टेबल के ऊपर की सजी हुई किताबें फिर से सजा कर रखने लगी ।

कुछ देर बाद बोली—आप पहले जैसे मुझे पढ़ाते थे उस तरह अब क्यों नहीं पढ़ाते ?

परेश बाबू ने हँस कर कहा—मेरे यहाँ का तुम्हारा पढ़ना ख़तम हो गया । अब तो तुम ख़ुद पढ़कर समझ सकती हो ।

सुशीला—नहीं; मैं कुछ भी नहीं समझ सकती । मैं पहले की तरह आपसे पढ़ूँगी ।

परेश—अच्छा, कल से पढ़ाऊँगा ।

सुशीला कुछ देर चुप रह कर सहसा बोली—बाबूजी, उस दिन विनय बाबू ने जाति-भेद के विषय में बहुत बातें कही थी, आप उस सम्बन्ध की बातें कुछ समझा कर मुझसे क्यों नहीं कहते ?

परेश—बेटी, तुम तो जानती ही हो, तुम आपही सोच कर इस विषय को समझने की चेष्टा करो । मेरे अथवा और किसी के मत को केवल अभ्यस्त बात की तरह व्यवहार में न लाओ । मैं तुम लोगों के साथ बराबर वैसा ही व्यवहार

करता हूँ। मन में प्रश्न के उठने से पहले ही उस सम्बन्ध में कोई उपदेश देना और भूख लगने के पूर्व ही खिला देना बराबर है। इससे अरुचि और अपाक के सिवा और कोई फल नहीं। तुम जब मुझसे कुछ पूछोगी तब उस विषय में जो मैं जानता हूँ, कहूँगा।

सुशीला—मैं आपसे पूछ ही रही हूँ, हम लोग जाति-भेद की निन्दा क्यों करते हैं?

परेश बाबू—एक बिल्ली थाली के पास बैठकर भात खा ले तो उसमें कोई दोष नहीं, और यदि एक आदमी उस घर में प्रवेश करे तो भात छूत होजाय और फेंक दिया जाय! जिस जाति-भेद से मनुष्य के ऊपर मनुष्य की ऐसी घृणा और अपमान उत्पन्न हो वह अधर्म नहीं तो क्या है? जो लोग मनुष्य का ऐसा भयानक अपमान कर सकते हैं, वे कभी संसार में बड़े नहीं हो सकते। उन्हें भी दूसरे से अपमानित होना ही पड़ेगा।

सुशीला ने गौरमोहन के मुँह से सुनी हुई बात के अनुसार कहा—आज कल के समाज में जो विकार उपस्थित हुआ है, उसमें अनेक दोष हो सकते हैं। वे दोष तो समाज के सभी पदार्थों में विद्यमान हैं। इस लिए जो असली पदार्थ है उसमें दोष देना कहाँ तक ठीक है?

परेश बाबू ने अपने स्वाभाविक शान्त स्वर से कहा—"असली पदार्थ कहाँ है, मुझे मालूम होता तो बतला देता। मैं अपनी आँखों से देख रहा हूँ, हमारे देश में मनुष्य मनुष्य से

बेहद घृणा करते हैं और इस कुसंस्कार से हम लोगों में विभेद-ज्ञान उत्पन्न होता है। ऐसी अवस्था में एक काल्पनिक असली पदार्थ की बात सोचने से क्या जी को समाधान हो सकता है?

सुशीला ने फिर भी गौरमोहन की बात का अनुसरण करके कहा—अच्छा, सब को सम-दृष्टि से देखना ही तो हमारे देश का चरम सिद्धान्त था।

परेश बाबू—सम-दृष्टि से देखना ज्ञान की बात है, हृदय की नहीं। सम-दृष्टि में न प्रेम है, न घृणा है। सम-दृष्टि तो राग-द्वेष से रहित है। मन की साम्यावस्था में तो सामाजिक बन्धन हई नहीं। परन्तु मन की ऐसी अवस्था होना अत्यन्त कठिन है। इस लिए हमारे देश में ऐसा साम्य तत्व रहते भी नीच जाति को देवालय तक में कोई घुसने नहीं देता। यदि देवताओं के स्थान में भी हमारे देश में समता नहीं रही, यदि वहाँ भी विषम भाव का बर्ताव रहा तो वेदान्त शास्त्र के भीतर उस तत्व के रहने और न रहने ही से क्या?

परेश बाबू की बात को सुशीला बड़ी देर तक मन में सोचती रही; फिर बोली—अच्छा, तो आप ये सब बातें विनय बाबू प्रभृति को समझाने की चेष्टा क्यों नहीं करते?

परेश बाबू ने हँस कर कहा—विनय बाबू प्रभृति की बुद्धि कम है, इससे वे इन बातों को नहीं समझते यह नहीं—बल्कि अधिक बुद्धि होने ही से वे इन बातों को समझना नहीं चाहते; केवल समझाना ही चाहते हैं। वे

जब धर्म की ओर से अर्थात् सब की अपेक्षा बड़े सत्य धर्म की ओर से ये बातें मनोयोग-पूर्वक समझना चाहेंगे तब तुम्हारे बाबू जी की बुद्धि के लिए उनको अपेक्षा न करनी होगी। वे लोग अभी दूसरी ओर से देख रहे हैं, अभी मेरी बात उनके लिए किसी काम की नहीं।

गौरमोहन प्रभृति की बात सुशीला यद्यपि श्रद्धा से सुनती थी, तथापि वह बात उसके संस्कार के साथ विवाद मचा कर मन में वेदना पहुँचाती थी। फलतः उसकी बात से वह शान्ति न पाती थी। आज परेश बाबू के साथ बातें करके उसने उस विरोध से कुछ काल के लिए छुटकारा पाया। गौरमोहन, विनय या और ही कोई परेश बाबू की अपेक्षा किसी विषय में अच्छा ज्ञान रखता हो यह बात सुशीला के मन में कभी ठहर नहीं सकती थी। परेश बाबू से जिसका मत नहीं मिलता उस पर अप्रसन्न हुए बिना सुशीला नहीं रहती। वह गौरमोहन की बात सुन कर उसे एकबारगी क्रोध या अवज्ञा से उड़ा नहीं सकती थी, इसी कारण वह फिर भी बच्चे की तरह परेश बाबू से शिक्षा ग्रहण करने के लिए व्याकुल हो पड़ी थी। कुरसी से उठ कर वह दर्वाज़े के पास तक गई और फिर लौट कर परेश बाबू के पीछे खड़ी हो कुरसी की पीठ पर हाथ रख कर बोली—बाबू जी, आज साँझ को मुझे साथ ले कर उपासना कीजिएगा।

परेश—बहुत अच्छा।

इसके बाद सुशीला अपने सोने के कमरे में जाकर किवाड़ बन्द करके बैठी। उसने गौरमोहन की बात को एक दम अग्राह्य करने की चेष्टा की। किन्तु स्थिर-बुद्धि और विश्वास से चमकता हुआ उसका चेहरा सुशीला की आँखों के सामने प्रतिबिम्बित हो उठा। वह सोचने लगी कि गौर की बात केवल बात ही नहीं है, वह मानों स्वयं गौर की मूर्त्ति है—उस बात में आकृति है, गति है, प्राण है—वह विश्वास के बल और स्वदेश-प्रेम की वेदना से भरी हुई है। वह मत नहीं है जो उसका प्रतिवाद कर के झगड़ा चुकाया जाय। वह मनुष्य होकर भी सामान्य मनुष्य नहीं। उसको ठेलकर हटाने के लिए हाथ नहीं उठता। इन बातों के झमेले में पड़कर सुशीला को रुलाई आने लगी। कोई मुझे इतनी बड़ी दुबिधा में डाल कर निर्मोह की भाँति दूर चला जा सकता है, यह सोच कर उसकी छाती फटने लगी और वह अपनी इस अधीरता पर संकुचित हो बार बार अपने को धिक्कारने लगी।

[२४]

यह बात स्थिर हुई थी कि अंगरेज़-कवि ड्राइडेन की बनाई संगीत-विषयक एक कविता को विनय बड़ी भावुकता से पढ़ेगा और लड़कियाँ रङ्ग-भूमि में उपयुक्त भूषण-वस्त्र से सुसज्जित हो काव्यलिखित विषय का मूक अभिनय करेंगी। इसके अतिरिक्त वे अँगरेज़ी कविता पढ़ेंगी और गायँगी भी।

शिवसुन्दरी ने विनय को तसल्ली दे रक्खी थी कि हम तुम्हें किसी तरह तैयार कर लेंगी। वह आप तो अँगरेज़ी बहुत कम जानती थी किन्तु उस के दल में दो एक पण्डित थे, उन्हीं का उसे भरोसा था।

किन्तु जब अखाड़े में सब लोग बैठे तब विनय ने अपनी अभिनय-शिक्षा से शिवसुन्दरी के पण्डित-समाज को चकित कर दिया। उसकी मण्डली से पृथक् रहने वाले इस व्यक्ति को तैयार करने का सुख शिवसुन्दरी को नसीब न हुआ। बिना उसके सिखाये-पढ़ाये ही वह स्वयं अभिनय में दक्ष निकला। पहले जो लोग विनय को साधारण व्यक्ति समझ कर हँसते थे, वे लोग अब उसे बहुत बढ़िया ढङ्ग पर अँगरेज़ी पढ़ते देख उसकी प्रशंसा करने लगे। यहाँ तक कि हरि बाबू ने भी अपने सामयिक पत्र में कभी कभी कोई लेख देने के लिए उससे अनुरोध किया और सुधीर भी अपनी छात्र-सभा में कभी कभी अंगरेज़ी में वक्तृता देने के लिए विनय से आग्रह करने लगा।

इस अवसर पर ललिता की बड़ी विचित्र अवस्था हो गई। विनय को किसीसे कुछ सहायता लेने की आवश्यकता न हुई, इससे उसके मन में हर्ष भी हुआ और कुछ विषाद भी। 'विनय हमारी मण्डली में किसी की अपेक्षा कम नहीं है, बल्कि हम सबों की अपेक्षा अच्छा है और उसने जो मन ही मन अपनी श्रेष्ठता का अनुभव कर हम सबों से कुछ भी शिक्षा पाने की प्रत्याशा नहीं की' इन बातों से उसके मन में दुःख होने

लगा। विनय के सम्बन्ध में क्या करना चाहिए और क्या करने से मेरा मन स्वस्थ होगा, यह वह स्वयं न समझ सकी। उसकी नाराज़गी केवल इन्हीं छोटी सी बातों के कारण बढ़ती गई और घूम फिर कर उसके क्रोध का लक्ष्य वही एक विनय होने लगा। ललिता ने स्वयं समझ लिया कि विनय के प्रति न यह सुविचार है और न शिष्टता ही है, यह समझ कर वह क्षुब्ध हुई और अपने इस ईर्ष्यालु स्वभाव पर बार बार पछताने लगी। उसने अपने को दबाने की यथेष्ट चेष्टा की परन्तु उसके सभी प्रयत्न व्यर्थ हुए। उसके भीतर की ज्वाला किसी तरह शान्त न हुई। उसका चित्त शान्त भाव को धारण क्यों न करता था, इसका कारण वह ख़ुद भी न समझ सकती थी। पहले जिस काम में योग देने के लिए वह विनय को बराबर उत्तेजित करती आई है, अब उस कार्य से उसे विमुख करने के लिए वह व्यग्र हो उठी। किन्तु अब सब आयोजन को व्यर्थ कर विनय बिना कारण अभिनय से विमुख क्यों होगा? उसको रोक रखने के लिए अब समय भी न रहा। उस पर भी वह अपनी एक नई निपुणता आविष्कार करके आप ही इस काम में उत्साहित हो उठी है।

आख़िर ललिता ने शिवसुन्दरी से कहा—मैं इस अभिनय में सम्मिलित न हो सकूँगी।

शिवसुन्दरी अपनी मँझली लड़की को बख़ूबी पहचानती थी, इस कारण उसने नितान्त सशङ्कित होकर पूछा—क्यों?

ललिता—मुझसे यह काम न हो सकेगा ।

यथार्थ में जब से विनय को अनभिज्ञों में गिनने का उपाय न रहा तब से ललिता विनय के सामने किसी तरह अभिनय का अभ्यास करना न चाहती थी । वह कहती थी, मैं स्वयं अलग अपना अभ्यास करलूँगी । इस हठ से सब के अभ्यास में बाधा पड़ती थी, किन्तु ललिता को कोई किसी तरह न मना सका । आखिर हार मान कर उन सबों ने ललिता को छोड़ कर ही अभ्यास-क्षेत्र में पदार्पण किया ।

किन्तु अन्त में जब ललिता ने एक दम बोझ पटकना चाहा, तब शिवसुन्दरी का माथा ठनका । वह जानती थी कि मेरे द्वारा इसका प्रतीकार न हो सकेगा । इससे वह परेश बाबू के पास गई । परेश बाबू सामान्य बातों में कभी अपनी लड़कियों से कुछ न कहते थे । किन्तु मैजिस्ट्रेट के आगे वे प्रतिज्ञा कर चुके हैं, इसलिए प्रतिज्ञा-पूर्ति का उन्होंने आयोजन भी किया है । अब समय बहुत क़रीब आ गया है । इन सब बातों को सोच कर उन्होंने ललिता को बुलाकर कहा—अब अभिनय कार्य में तुम सम्मिलित न होगी तो अन्याय होगा ।

ललिता ने रुँधे कण्ठ से कहा—मैं सम्मिलित न हो सकूँगी । मुझ से अभिनय न हो सकेगा ।

परेश—तुम अच्छा अभिनय न कर सकोगी, इसके लिए कोई हानि नहीं, इसमें तुम्हारा दोष नहीं, किन्तु न करने से अन्याय होगा ।

ललिता सिर नीचा कर के खड़ी हो रही। परेश ने कहा—बेटी, जब तुमने यह ज़िम्मा लिया है तब तो उसे सम्पन्न करना ही होगा। अनभिज्ञता के कारण पीछे कहीं हँसी न हो, इस भय से अब भागने का समय नहीं रहा। लोग प्रशंसा करें चाहे न करें, इसका कुछ ख़याल न कर तुम्हें कर्त्तव्य का पालन करना ही होगा। कहो राज़ी हो न?

ललिता ने पिता के मुँह की ओर देख कर कहा—अच्छा।

उसी दिन साँझ को विनय के सामने ही वह झिझक छोड़ कर कर्त्तव्य में प्रवृत्त हुई। विनय ने अब तक उस का पढ़ना नहीं सुना था। आज सुन कर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। ऐसा स्पष्ट और तेज उच्चारण—कहीं कुछ रुकावट नहीं, और भाव प्रकट करने में भी पूर्ण दक्षता! यह देख सुन कर विनय को आशातीत आनन्द हुआ। ललिता का वह कण्ठ-स्वर बड़ी देर तक विनय के कानों में गूँजता रहा।

कविता के सुनाये जाते समय उत्तम रूप से कविता सुनाने वाले के सम्बन्ध में श्रोता विशेष मोहित होते हैं। फूल जैसे प्रस्फुटित हो कर पेड़ की शोभा बढ़ाता है और दर्शकों के मन को अपनी ओर खींच लेता है, वैसे ही कविता भी स्पष्ट स्वर में परिणत हो पढ़ने और सुनने वाले—दोनों—के अनुराग का कारण होती है।

ललिता भी कविता पढ़ने के अभ्यास में विनय की होड़ करने लगी। और इस अभ्यास-गुण से वह विनय के सन्तोष का

भाजन बन गई। ललिता इतने दिन तक अपनी तीव्रता के द्वारा विनय को बराबर व्यग्र किये रहती थी। विनय भी ललिता के तीव्र वाक्य और टेढ़ी हँसी को कभी कभी रात रात भर सोचता ही रहता था। ललिता ने क्यों ऐसा किया? क्यों ऐसा कहा? बारंबार वह इसी की आलोचना में मन को लगाये रहता था। ललिता के असन्तोष का कारण जितना ही उसकी समझ में न आता था उतना ही उसकी चिन्ता का अधिकार उसके मन पर जमता जाता था। हठात् भोर के समय नींद टूटते ही वह बात उसको स्मरण हो आई। परेश बाबू के घर जाते समय प्रतिदिन उसके मन में यह वितर्क उपस्थित होता था कि आज न जाने ललिता का कैसा भाव देखूँगा। जिस दिन ललिता कुछ भी प्रसन्नता प्रकट करती उस दिन विनय के जी में जी आता और ललिता के उस भाव को चिरस्थायी रखने की चिन्ता करने लग जाता था, परन्तु ऐसा कोई उपाय न सूझता था जिससे वह ललिता के मन के भाव को स्थिर रख सकता।

कई दिनों से इस मानसिक भावना के अनन्तर ललिता के काव्य-अभ्यास के माधुर्य ने विनय को विशेष रूप से चञ्चल कर दिया। उसे ललिता का पढ़ना इतना अच्छा लगा कि उसकी प्रशंसा करने की रीति उसकी समझ में न आई। ललिता के मुँह पर भली-बुरी कोई बात कहने का उसे साहस न होता था। प्रशंसा करने पर ख़ुश होना मनुष्य के स्वभाव का जो एक

साधारण नियम है, वह ललिता के सम्बन्ध में नहीं घटता था। इस कारण विनय ने ललिता से तो कुछ नहीं कहा, हाँ अपने मन के उफान को न रोक सकने पर शिवसुन्दरी के आगे ललिता की योग्यता की बार बार प्रशंसा की। इससे विनय की विद्या और बुद्धि के प्रति शिवसुन्दरी की श्रद्धा और भी दृढ़ हो गई।

एक और विचित्र बात हुई। ललिता ने जब खुद जाना कि मेरा काव्य पढ़ना और अभिनय करना बुरा नहीं है तब विनय के ऊपर से उसका तीव्र भाव हट गया। विनय को विमुख करने की चेष्टा भी उसके मन से जाती रही। इस काम में उसका उत्साह बढ़ गया और अभिनय के लिए अभ्यास करने योग्य विषय में विनय के साथ उसकी एकता यहाँ तक हुई कि अभिनय के लिए कविता पढ़ने या और किसी पूछने योग्य विषय में विनय से उपदेश लेने में उसे कोई आपत्ति न रही।

ललिता के इस परिवर्तन से विनय के हृदय पर से मानों एक पत्थर का बोझ उतर गया। उसे इतना हर्ष हुआ कि वह आनन्दी के पास जाकर बालक की भाँति हर्ष से उछलने लगा। सुशीला के पास बैठ कर बहुत कुछ बकने के लिए उसका जी तड़प रहा था, किन्तु आज कल सुशीला से उसकी भेट न होती थी। सुयोग पाकर कभी कभी वह ललिता से बातें करने को बैठता था, किन्तु उसके साथ विशेष सावधान होकर बात करनी पड़ती थी। ललिता मन ही मन उसका और उसकी सब बातों का तीक्ष्ण भाव से विचार करती थी,

यह जान कर विनय उसके सामने रुक रुक कर बातें करता था। उस के वाक्य-प्रवाह में स्वाभाविक वेग न रहता था।

ललिता कभी कभी उस से कहती थी—आप पोथी में जो पढ़ आये हैं, वही कह रहे हैं नहीं तो इस तरह क्यों बोलते?

विनय उत्तर देता था—ठीक है, मैं जो इतनी उम्र तक केवल पोथियाँ ही पढ़ता आता हूँ, इसी से मेरा मन छपी हुई किताब सा हो गया है।

इस पर ललिता कहती थी, आप बहुत बातें बनाने की चेष्टा न करें, अपने मन की बात को सीधे तौर से कहा करें। आप तो ऐसे चमत्कार के साथ बोलते हैं कि मेरे मन में सन्देह उत्पन्न होता है, शायद आप किसी दूसरे की बात सोच सोच कर कह रहे हैं।

इसी से विनय बड़ी सावधानी के साथ ललिता के सामने बड़ी सीधी सादी बात संक्षेप से बोलता था। कोई काव्य-सम्मिलित वाक्य भ्रमात् उस के मुँह से निकल जाने पर वह लज्जित हो जाता था।

ललिता के मन का भाव बदला देख शिवसुन्दरी को बड़ा आश्चर्य हुआ। ललिता के मन में जो एक असहिष्णुता की घटा छाई रहती थी, वह बिलकुल दूर हो गई। अब वह पहले की तरह बात बात में उग्र दिखा कर विमुख हो नहीं बैठती थी। सभी कामों में उत्साह-पूर्वक योग देती थी।

आगामी अभिनय की सजावट आदि सभी विषयों में उसे नित्य नई नई कल्पना का उदय होने लगा। उस ने अपनी इस नई कल्पना से सब को घबरा दिया। इस सम्बन्ध में शिवसुन्दरी का उत्साह चाहे जितना बढ़ा हो, वह खर्च की बात भी सोचती थी। इस हेतु ललिता जब अभिनय में योग देने से विमुख थी, तब भी उस की उत्कण्ठा का कारण जैसा संघटित हुआ था, अब भी ललिता की उत्साहित अवस्था में उस को वैसे ही संकट का सामना करना पड़ा है। किन्तु ललिता की इस उत्साहपूर्ण कल्पना में किसी तरह का आघात पहुँचाने का भी उसे साहस नहीं होता। ललिता जिस काम में उत्साह प्रकट करती थी, उस में किसी तरह की बाधा होने पर वह एक दम निरुत्साह हो जाती थी। फिर पीछे उस में योग देना उस के लिए असंभव हो जाता था।

ललिता अपने मन की इस बढ़ी हुई अवस्था में सुशीला के पास जाकर कई बार व्यग्रता प्रकट कर चुकी। सुशीला उस के चित्त की ऐसी अवस्था पर हँसी, और उसे समझाया, किन्तु ललिता के आगे उस का कहना सुनना सब व्यर्थ हुआ। सुशीला के उपदेश से उस को कुछ भी शान्ति न मिली प्रत्युत वह उस में एक बाधा अनुभव करके मन ही मन रूठ कर वहाँ से लौट कर चली आई।

एक दिन ललिता ने परेश बाबू के पास जाकर कहा—सुशीला बहन घर के कोने में बैठी बैठी किताब पढ़े और

हम सब अभिनय करने जायँ यह न होगा। उस को भी हम लोगों का साथ देना होगा।

परेश बाबू भी कई दिनों से सोच रहे थे कि सुशीला अपनी सहेलियों से इस प्रकार क्यों विलग हो पड़ी है। उस का यह एकान्त-वास उस के चरित्र के लिए स्वास्थ्यकर न होगा, इसकी आशङ्का वे कर रहे थे। ललिता की बात सुनकर आज उन के मन में यह धारणा दृढ़ हो गई कि आमोद-प्रमोद में सब के साथ योग न दे सकने से सुशीला अपने को विभिन्न समझेगी। परेश बाबू ने ललिता से कहा—अपनी माँ से जा कर कहो।

ललिता—मैं माँ से कहूँगी, किन्तु सुशीला बहन को राज़ी करने का भार आप को ही लेना पड़ेगा।

सुशीला को अपने शयनागार से बाहर आते देख विनय ने उस के साथ पूर्ववत् बात करना चाहा। परन्तु कुछ ही दिनों में यह क्या हो गया? सुशीला अपरिचित सी हो गई। विनय को देख कर भी वह कुछ न बोली। उस के मुख और नेत्रों का भाव देख कर विनय को उससे कुछ कहने का साहस न हुआ। सुशीला अपने घर के नियत कामों को सँभालती हुई अभिनय का पाठ भी याद कर लेती थी। वह समय का अच्छा उपयोग करना जानती थी। इस तरह वह अपने व्यावहारिक कामों में लग कर विनय के पास से बहुत दूर निकल गई।

इधर कई दिनों से गौरमोहन के न रहने से विनय बेरोक जब तब परेश बाबू के घर जाकर उनके आत्मीय लोगों के साथ अच्छी तरह हिल मिल गया। विनय का निर्विकार भाव देख परेश बाबू के घर के सभी लोगों को विशेष आनन्द हुआ। विनय ने भी उन लोगों के सद्व्यवहार से वह हर्ष पाया जो इस के पूर्व कभी न पाया था। उसके साथ वे लोग जो प्यार करते थे, उस का अनुभव करके उसने अपने को और भी प्रिय बनाने की चेष्टा की।

प्रकृति के इस फैलाव के समय स्वतन्त्र शक्ति से अपना अनुभव करने के दिन सुशीला विनय के पास से दूर चली गई। यह मनो-हानि, यह आघात और समय में होने से दुःसह होता, किन्तु अभी वह सहज ही सह्य हो गया है। आश्चर्य यह है कि ललिता भी सुशीला का भावान्तर देख उस पर पहले की तरह ईर्ष्या प्रकट नहीं करती। मालूम होता है, काव्य के अभ्यास और अभिनय के उत्साह ने उसे सम्पूर्ण रूप से अपने अधिकार में कर लिया है।

अभिनय में सुशीला के योग देने की बात सुन कर हरि बाबू भी एकाएक उत्साहित हो उठा। हम पैराडाइज़ लास्ट के एक अंश को पढ़ कर सुनायँगे और ड्राइडेन की कविता की प्रशंसा करते हुए संगीत की मोहिनी शक्ति के सम्बन्ध में एक छोटा सा व्याख्यान देंगे, इस का उस ने स्वयं प्रस्ताव किया। इससे शिवसुन्दरी मन ही मन रुष्ट हुई। ललिता भी सन्तुष्ट न हुई।

हरि बाबू खुद मैजिस्ट्रेट से भेंट करके इस प्रस्ताव को पहले ही पक्का कर आया था। ललिता ने जब कहा, इस काम को इतना तूल करने से मैजिस्ट्रेट शायद आपत्ति करेंगे, तब हरि बाबू ने पाकेट से मैजिस्ट्रेट का कृतज्ञता-सूचक पत्र निकाल कर ललिता के हाथ में दे उसे चुप कर दिया।

गौरमोहन बिना काम के घूमने को बाहर गया है, वह कब लौटेगा, यह कोई न जानता था। यद्यपि सुशीला ने इस सम्बन्ध में कोई बात न सोचना ही स्थिर किया था, तथापि प्रति दिन उस के मन में यह आशा लगी रहती थी कि आज हो न हो गौरमोहन आवेगा। इस आशा को वह अपने मन से किसी तरह नहीं हटा सकती थी। गौरमोहन की निरपेक्षता और अपने मन की इस अदम्यता से जब वह अत्यन्त कष्ट पाने लगी, जब किसी तरह इस जाल से छूट कर निकल भागने के लिए उसका मन व्याकुल होने लगा था, ऐसे समय में हरि बाबू ने एक दिन विशेष रूप से ईश्वर का नाम-स्मरण कर के सुशीला के साथ अपने ब्याह की बात स्थिर करने के लिए परेश बाबू से फिर अनुरोध किया। परेश बाबू ने कहा—अभी तो विवाह में विलम्ब है। इतना शीघ्र सम्बन्ध स्थिर करने की क्या ज़रूरत है?

हरि बाबू ने कहा—विवाह के कुछ काल पूर्व सम्बन्ध की पक्की बात-चीत होजाना मैं स्त्री और पुरुष दोनों के लिए अच्छा समझता हूँ।

परेश बाबू—अच्छा, सुशीला से पूछ कर कहूँगा।

हरि बाबू—वह तो पहले ही अपनी सम्मति प्रकट कर चुकी है।

हरि बाबू के प्रति सुशीला के मानसिक भाव के सम्बन्ध में परेश बाबू को अब भी सन्देह था, इसीसे उन्हों ने सुशीला को स्वयं बुला कर उसके आगे हरि बाबू का प्रस्ताव उपस्थित किया। सुशीला दुबिधा में पड़े हुए अपने जीवन को कहीं सम्पूर्ण रूप से समर्पित कर देने ही में अपनी कुशल समझती थी। इस लिए उसने अति शीघ्र निःसंशयित भाव से सम्मति दे दी, जिस से परेश बाबू के सब सन्देह दूर हो गये। विवाह के पूर्व सम्बन्ध-सूत्र में बद्ध होना उचित है या नहीं, इस को भली भाँति विचारने के लिए उन्हों ने सुशीला से अनुरोध किया तो सुशीला ने इस में भी कुछ आपत्ति न की। सुशीला का मानसिक भाव प्रकट होने पर परेश बाबू ने भी हरि बाबू के प्रस्ताव को स्वीकार किया।

ब्रैडला साहब का निमन्त्रण पूरा करने के अनन्तर एक दिन सब को बुला कर विवाह का सम्बन्ध पक्का किया जाय, यह बात स्थिर हुई।

सुशीला को मालूम हुआ जैसे कुछ काल के लिए उसका मन राहु-ग्रास से मुक्त हो गया हो। उसने मन में निश्चय किया कि हरि बाबू के साथ ब्याह करके मैं ब्राह्म-समाज के काम में योग देने के लिए कठोर व्रत धारण करूँगी। हरि बाबू से

वह प्रतिदिन कुछ कुछ धर्म-सम्बन्धी अँगरेज़ी पुस्तकें पढ़ कर उन्हीं के मतानुसार चलने का उसने संकल्प किया। उसके लिए जो असाध्य था, अप्रिय था, उसी को स्वीकार करने की प्रतिज्ञा करके उसने अपने मन को दृढ़ किया।

वह हरि बाबू का सम्पादित अँगरेज़ी पत्र कुछ दिन से नहीं पढ़ती थी। आज काग़ज़ छपते ही फ़ौरन वह उसके हाथ आ पड़ा। मालूम होता है, हरि बाबू ने ख़ास कर यह पत्र सुशीला के पास भेजा है। सुशीला उस समाचार-पत्र को घर के भीतर ले गई और स्थिरता से बैठ कर मनोयोगपूर्वक प्रथम पंक्ति से लेख पढ़ने लगी। श्रद्धा-पूर्ण मन से वह अपने को विद्यार्थिनी मान इस पत्र से शिक्षा ग्रहण करने लगी।

जहाज़ पाल के सहारे चलते चलते हठात् पहाड़ से टकरा कर रुक गया। इस संख्या में 'पुरानी लकीर का फ़कीर' शीर्षक एक लेख छपा था। इसमें जो लोग वर्त्तमान समय में रह कर भी उस प्राचीन समय की ओर मुँह घुमाये हुए हैं, उन पर ईंटें फेंकी गई हैं, उनपर घोर रूप से कटाक्ष किया गया है। युक्ति कोई असंगत न थी बल्कि सुशीला ऐसी युक्तियों को खोज रही थी। किन्तु निबन्ध पढ़ते ही वह समझ गई कि इस आक्रमण का लक्ष्य गौरमोहन है। उसका नाम लेख में न था, और न उसके लिखे किसी निबन्ध का उसमें उल्लेख था। बन्दूक की हर एक गोली ख़ाली न जाने से योद्धा को जैसा हर्ष होता है, इस निबन्ध के प्रत्येक वाक्य से किसी

सजीव पदार्थ को विद्ध होते देख मानों वैसा ही एक हिंसा का आनन्द व्यक्त होता था ।

यह निबन्ध सुशीला के लिए असह्य हो गया । इसकी प्रत्येक युक्ति को प्रतिवाद द्वारा खण्ड खण्ड कर डालने की उसकी इच्छा हुई । उसने मन में कहा, गौरमोहन बाबू चाहें तो इस निबन्ध के भाव को रौंद कर मिट्टी में मिला दें । गौरमोहन का प्रसन्न मुख उसकी आँखों के सामने प्रतिबिम्बित हो उठा और उसका गम्भीर कण्ठस्वर सुशीला के हृदय के भीतर प्रतिध्वनित हो उठा । उस मुख और वाक्य की असाधारणता के निकट यह निबन्ध और निबन्ध-लेखक की क्षुद्रता ऐसी तुच्छ जान पड़ी कि सुशीला ने बड़ी घृणा के साथ उस पत्र को ज़मीन पर फेंक दिया ।

कुछ देर में सुशीला स्वयं उस दिन विनय के पास आकर बैठी और बातों ही बातों में बोली—अच्छा, आपने जो कहा था कि जिन पेपरों में आपके लेख निकले हैं, मुझे पढ़ने को ला देंगे । सो आप लाये नहीं ?

विनय ने यह बात न कही कि इस बीच में तुम्हारा का भावान्तर देख मैं अपनी प्रतिज्ञा पालन करने का साहस नहीं कर सका । उसने कहा—मैंने उन सब लेखों को एक जगह रख दिया है, कल लेता आऊँगा ।

विनय ने दूसरे दिन एक छोटी सी किताब और संगृहीत लेख लाकर सुशीला को दे दिये । उनके हाथ आते ही

सुशीला ने झट उन सबों को सन्दूक में बन्द कर रक्खा । पढ़ने की अत्यन्त इच्छा रहते भी वह पढ़ न सकी । मन को किसी तरह विक्षिप्त न होने देने की प्रतिज्ञा करके उसने अपने विद्रोही चित्त को फिर हरि बाबू के शासनाधीन कर सान्त्वना प्राप्त की ।

[२५]

आज रविवार को सबेरे आनन्दी पान लगा रही थी । शशि-मुखी उसके पास बैठ कर सुपारी कतर रही थी । ऐसे समय में विनय को घर में आते देख शशिमुखी झट अपने आँचल से सुपारी फेंक वहाँ से भाग गई । आनन्दी हँसने लगी ।

विनय सब के साथ हेल-मेल करना जानता था । शशिमुखी के साथ इतने दिनों तक उसका यथेष्ट सद्भाव था । दोनों में खूब परिहास की बातें चलती थीं । शशिमुखी ने विनय के जूते छिपा कर उसके साथ हास्य की बात करने का एक ढंग निकाल रक्खा था । विनय ने भी शशिमुखी के जीवन की दो एक सामान्य घटनाओं का अवलम्बन कर उसमें कुछ अपनी ओर से नमक-मिर्च मिला कर एक कहानी बना रक्खी थी । उसका उल्लेख करने से शशिमुखी बहुत झेंपती थी । पहले वह वक्ता को मिथ्याभाषण का कलंक देकर उच्चस्वर से प्रतिवाद की चेष्टा करती थी और उसमें सफल न होने पर वहाँ से भाग जाती

थी। उसने भी विनय के जीवन-चरित की किसी विकृत घटना की कल्पना करके उसको चिढ़ाने के लिए एक कहानी बना ली थी। वह विनय के आक्षेप का उत्तर देकर उसे क़ायल करना चाहती थी, किन्तु कहानी बनाने में वह विनय का मुक़ाबिला न कर सकने के कारण इस सम्बन्ध में विशेष सफलता प्राप्त न कर सकती थी।

जो हो, विनय को इस घर में आते देख शशिमुखी सब काम छोड़ कर उसके साथ कौतुक करने के लिए दौड़ आती थी। किसी किसी दिन वह इतना ऊधम मचाती कि आनन्दी उसे धिक्कारती थी, परन्तु अकेला उसी का दोष तो रहता ही न था। विनय उसे इतना उत्तेजित कर डालता कि उसके लिए अपने को रोकना असंभव हो जाता था। वही शशिमुखी आज जब विनय को देख कर झटपट कोठे से निकल भागी तब आनन्दी हँसी, किन्तु वह हँसी सुख की हँसी न थी।

विनय को भी इस सामान्य घटना से ऐसी कुछ चोट लगी कि वह कुछ देर के लिए चुप हो बैठ रहा। विनय का शशिमुखी के साथ ब्याह करना कितना असंगत है वह इस छोटी मोटी घटना से प्रकट होता है। विनय ने जब सम्मति दी थी, तब उसने केवल गौरमोहन के साथ अपनी मित्रता का ख़याल रख कर ही दी थी। इस काम का परिणाम अन्त में क्या होगा, इस पर उसने विचार नहीं किया था। इसके अलावा

हमारे देश में विवाह ख़ास कर व्यक्तिगत नहीं है, वह परिवार और समाज से संबंध रखता है। इस विषय पर विनय ने कई लेख समाचार-पत्र में देकर अपने गौरव का अनुभव किया है। स्वयं भी इस संबंध में किसी व्यक्तिगत इच्छा या लोलुपता को मन में स्थान नहीं दिया है। आज शशिमुखी विनय को देख कर जो, अपना वर समझ, लजा कर वहाँ से भाग गई, इससे शशिमुखी के साथ उसके भावी संबंध की एक धुँधली सी छाया उसकी आँखों के सामने आ पड़ी। गौरमोहन मुझे प्रकृति-विरुद्ध कितना दूर लिये जा रहा था, यह सोच कर गौरमोहन पर उसे क्रोध हुआ और अपने ऊपर उसे घृणा उत्पन्न हुई। आनन्दी ने पहले ही से इस विवाह का निषेध किया है, यह स्मरण कर उसकी दीर्घदर्शिता के प्रति विनय का मन विस्मययुक्त भक्ति से पूर्ण हो उठा।

आनन्दी विनय के मन का भाव समझ गई। उसने उस के मन को दूसरी ओर फेरने के लिए कहा—विनय, कल गौर की चिट्ठी आई है।

विनय ने अन्यमनस्क भाव से कहा—क्या लिखा है?

आनन्दी ने कहा—अपना कोई विशेष समाचार तो नहीं दिया है। परन्तु देश के दीन लोगों की दुर्दशा देख बहुत खेद प्रकट किया। अल्लापुर गाँव में एक मजिस्ट्रेट ने जो जो अन्याय किया है उसीका वर्णन लिखा है।

गौरमोहन के इस विरुद्ध भाव की उत्तेजना की बात सुन

विनय असहिष्णु होकर बोल उठा—गौर बाबू की दृष्टि बराबर दूसरे ही लोगों की ओर रहती है। हम लोग समाज की छाती पर बैठ कर प्रतिदिन जो अत्याचार कर रहे हैं, उस पर वे दृष्टि नहीं देते। वे कहेंगे, इस से बढ़ कर सत्कर्म और क्या हो सकता है।

सहसा गौर के ऊपर इस प्रकार दोषारोपण करके विनय मानों दूसरे का पक्ष लेकर आप आगे आ खड़ा हुआ, यह देख आनन्दी हँसी।

विनय ने कहा—माँ, तुम हँसती हो, और मन में कहती हो कि विनय ऐसा क्रोध एकाएक क्यों करने लगा? क्यों क्रोध हुआ है, यह मैं तुम से कहता हूँ। सुधीर उस दिन मुझ को नयहाटी स्टेशन के समीप अपने एक मित्र के बाग़ में ले गया था। हम लोगों के सियालदह से रवाना होते ही पानी बरसना शुरू हुआ। सैदपुर स्टेशन में जब गाड़ी ठहरी; तब देखा कि साहबी पोशाक पहिने एक बंगाली बाबू ने छाता लगाये हुए अपनी स्त्री को गाड़ी से उतारा। स्त्री की गोद में एक बच्चा था; वह बेचारी एक मोटी चादर ओढ़े उस बच्चे को किसी तरह कपड़े में छिपाये, खुले स्टेशन के एक तरफ़ खड़ी हो, जाड़े और लज्जा से सिकुड़ कर पानी में भीगने लगी। उसका पति अपना असबाब लेकर छाता ताने आवाज़ देने लगा। यह दृश्य देख मेरे मन में तुरन्त स्मरण हो आया कि हमारे देश में क्या धूप में, क्या वर्षा में, क्या भले घर

की क्या छोटे घर की स्त्री छाता नहीं लगा सकती। मैंने देखा, स्वामी बे-फ़िक्र छाता लगाये हुए है, और उसकी स्त्री चादर ओढ़े चुप चाप पानी में भीग रही है, इसका ज़रा भी दुःख उसके मन में नहीं है। बल्कि स्टेशन के किसी व्यक्ति के मन में यह कुछ भी अन्याय नहीं मालूम होता है। तब से मैंने प्रतिज्ञा की है, स्त्रियाँ विशेष आदरणीय हैं, वे घर की लक्ष्मी हैं, देवी हैं, ये सब काव्य की झूठी बातें मैं फिर कभी मुँह से उच्चारण न करूँगा।

अपने उत्साह से हठात् लज्जित होकर विनय ने स्वाभाविक स्वर में कहा—माँ, तुम सोचती हो, विनय कभी कभी इस तरह की बातें बना कर बोलता है, आज भी उसका यह एक व्याख्यान ही है। अभ्यासवशतः मेरी सामान्य बातें भी वक्तृता की तरह हो पड़ती हैं, किन्तु आज यह मेरी वक्तृता नहीं है। देश की स्त्रियाँ अनेक श्रेणियों में विभक्त हैं, यह मैं पहले भली भाँति नहीं जानता था और न मैंने कभी इस पर विचार ही किया था। अब मैं अधिक न बोलूँगा। मैं हद से ज़्यादा बोलता हूँ, इसीसे कोई मेरी बात पर विश्वास नहीं करता। अब से मैं कम बोलने का अभ्यास करूँगा।

यह कह कर विनय झट पट वहाँ से चला गया।

आनन्दी ने महिम को बुला कर कहा—विनय के साथ हमारी शशिमुखी का ब्याह न होगा।

महिम—क्यों? तुम्हारी सम्मति नहीं है?

आनन्दी—यह सम्बन्ध अन्त तक स्थिर न रहेगा। इसीसे मैं सम्मति नहीं देती, नहीं तो सम्मति क्यों न देती?

महिम—गौरमोहन को राज़ी कर चुका हूँ, विनय भी राज़ी है; तब स्थिर क्यों न रहेगा? हाँ, अगर तुम आज्ञा न दोगी तो विनय हर्गिज़ यह काम न करेगा। यह मैं जानता हूँ।

आनन्दी—मैं विनय को तुम से बढ़ कर मानती हूँ।

महिम—गौरमोहन से भी बढ़ कर?

आनन्दी—हाँ, उससे भी बढ़ कर। इसलिए सब बातें सोच विचार कर मैं सम्मति नहीं दे सकती।

महिम—अच्छा, गौर को लौट आने दो।

आनन्दी—महिम, मेरी बात सुनो। इस विषय में यदि अधिक हल्ला मचाओगे तो अन्त में बड़ी मुश्किल होगी। मेरी इच्छा नहीं है कि गौर विनय से इस विषय में कुछ कहे।

"अच्छा, देखा जायगा," यह कह कर महिम मुँह में एक बीड़ा पान देकर क्रोध में घर से चला गया।

[२६]

गौरमोहन जब बाहर घूमने को निकला था तब उस के साथ अविनाश, मोतीलाल, वसन्त और रमापति भी थे। किन्तु गौरमोहन के प्रचण्ड उत्साह-ताण्डव में ये लोग पूरा ताल न दे सके। अविनाश और वसन्त तबीयत ख़राब हो

जाने का बहाना करके चार ही पाँच दिन के भीतर कलकत्ते लौट आये । मोतीलाल और रमापति को गौरमोहन के ऊपर बड़ी भक्ति थी, इसलिए ये दोनों उसे अकेला छोड़ कर न लौट सके । किन्तु इन दोनों के कष्टों की सीमा न रही । कारण यह था कि गौर बहुत चल कर भी न थकता था। और कहीं तकलीफ़ पाकर भी वह दो चार दिन ठहर जाता था । गाँव का जो कोई गृहस्थ गौर को ब्राह्मण समझ कर भक्तिपूर्वक अपने घर में ठहराता था, वहाँ आहार व्यवहार की अनेक असुविधाएँ रहते भी वह अटक जाता था । उसकी बात चीत सुनने के लिए सारी बस्ती के लोग चारों ओर से उमड़ आते थे और दिन रात उसे घेरे रहते थे । वे उसको छोड़ना नहीं चाहते थे ।

कुलीन-समाज, शिक्षित-समाज, और कलकत्ते से बाहर का हमारा देश कैसा है ? गौर ने यह पहले पहल देखा । यह भारतवर्ष असंख्य गाँवों का आधार-भूत होकर भी कितना भेद-भाव-युक्त संकीर्ण और दुर्बल है, वह अपनी शक्ति के सम्बन्ध में कैसा अचेत और मङ्गल-साधन में नितान्त अज्ञ और उदासीन है ! पाँच ही सात कोस के अन्तर पर उसका कैसा सामाजिक प्रभेद है; परस्पर कैसा जुदाई का भूत सवार है; संसार के विहित सार्वजनिक कर्मक्षेत्र में प्रवेश करने के लिए कितनी स्वकल्पित बाधायें मौजूद हैं; सामान्य सामान्य विषयों को वह कितना

बड़ा समझता है और उसका चित्त कैसा उत्साह-हीन और आलस्य-निद्रा में पड़ा है, जी कितना छोटा है यह सब ग्रामवासियों के बीच इस तरह निवास न करने से गौरमोहन कभी न जान सकता। गौरमोहन जब गाँव में टिका था तब दैवयोग से एक महल्ले में आग लगी। इतने बड़े संकट में भी सब लोगों को मिल कर प्राणपण से विपत्ति के विरुद्ध काम करते न देख गौरमोहन को बड़ा आश्चर्य हुआ। एक जगह घर बाँध कर दस मनुष्यों के रहने का मुख्य उद्देश्य यही है कि विपत्ति में एक दूसरे की सहायता करें। यदि ऐसा न हुआ तो गाँव में एक साथ रहने का सुख क्या हुआ? इस प्रकार मन में सोचते हुए गौर ने देखा कि गाँव के सभी लोग इधर उधर दौड़ रहे हैं, कोई शोर-गुल मचा रहा है, कोई रो रहा है, कोई हाय हाय कर रहा है, कोई खड़ा होकर तमाशा देख रहा है और कोई सिर पर हाथ रख किंकर्त्तव्य-विमूढ़ हो चित्रवत् खड़ा है। ऐसा यत्न किसी ने न किया जिससे आग बुझ सकती। सब मिल कर यदि आग बुझाने में लग पड़ते तो आग बुझना क्या कठिन था। सब के देखते ही देखते समूचा घर जल गया, पर किसी से कुछ न हो सका। उस के पास कोई पोखर या कुआँ न था। स्त्रियाँ दूर से पानी लाकर घर का काम काज चलाती थीं परन्तु प्रतिदिन का यह झंझट मिटाने के लिए घर के नज़दीक थोड़े ख़र्च में कुआँ खुदा लेने पर धनवान् लोग भी ध्यान न देते थे। पहले

भी कई बार इस बस्ती में आग लग चुकी है, अतः उसे अग्राभि कह और दैव को दोष दे सभी लोग निरुद्यम हो बैठे हैं। समीप में पानी की कोई व्यवस्था कर रखने के लिए उन लोगों के मन में कभी कोई चेष्टा उपजती ही नहीं। गाँव की नितान्त प्रयोजनीय वस्तु के लिए जिनकी समझ ऐसी विचित्र और खोटी है, उन लोगों के पास समस्त देश की आलोचना करना गौरमोहन को एक विडम्बना सी जान पड़ी। सबसे अधिक आश्चर्य गौर को यह समझ कर हुआ कि मोतीलाल और रमापति इन सब दृश्यों को देख कर ज़रा भी न घबरायं, इस घटना से कुछ भी विचलित न हुए। बल्कि गौरमोहन के इस क्षोभ को उन दोनों ने असंगत जाना। छोटे लोग तो ऐसा करते ही हैं, वे इसी में आनन्द मानते हैं। इन कष्टों को वे कष्ट ही नहीं मानते। छोटे लोगों में इन सब बातों के सिवा और कुछ हो सकता है और हम किसी तरह सुधर सकते हैं, इसकी कल्पना करना भी वे व्यर्थ समझते हैं। इस अज्ञता, पशुधर्मिता और दुःख का बोझ कितना भारी है। यह भार हमारे शिक्षित-अशिक्षित, धनी-दरिद्र, सभी के सिर को झुकाये हुए है और किसी को आगे बढ़ने नहीं देता। यह बात आज स्पष्ट रूप से जान कर गौरमोहन के मन में भाँति भाँति के दुःख होने लगे।

मोतीलाल यह कह कर कि "मेरे घर से बीमारी का ख़त आया है," चल दिया। अब गौर के साथ सिर्फ़ रमापति रह गया।

दोनों वहाँ से विदा हो नदी की समीपवर्तिनी बालुका-मयी भूमि में एक मुसलमानी बस्ती में जा पहुँचे। ठहरने की इच्छा से ढूँढ़ते ढूँढ़ते सारी बस्ती के भीतर केवल एक घर हिन्दू हज्जाम का मिला। दोनों ब्राह्मणों ने आश्रय लेने के लिए उसके घर जाकर देखा, बूढ़ा नाई और उसकी स्त्री एक मुसलमान के बच्चे को अपने घर में पाल रहे हैं। रमापति बड़ा ही नैष्ठिक था, वह तो व्याकुल हो गया। गौरमोहन नाई को इस अनाचार के लिए धिक्कार देने लगा। उसने कहा—देवताजी, हम लोग जिसे हरि कहते हैं, उसी को वे अल्ला कहते हैं, भेद कुछ नहीं है।

धूप कड़ी हो गई थी, जिधर देखो उधर बालू ही बालू नज़र आती थी। नदी वहाँ से बहुत दूर थी। रमापति ने मारे प्यास के आकुल होकर कहा, हिन्दू के कुएँ का जल कहाँ मिलेगा?

नाई के घर के समीप एक कूप था, किन्तु उस भ्रष्ट कुएँ का पानी न पीकर वह मुँह बिगाड़ कर बैठा रहा।

गौरमोहन ने पूछा—क्या इस लड़के के माँ बाप नहीं हैं?

नाई ने कहा—दोनों हैं, पर न होने ही के बराबर।

गौर—सो कैसे?

नाई ने इस पर जो इतिहास कहा उसका सारांश यह है—

जिस ज़मींदारी में ये लोग रहते हैं, वह निलहे साहब के ठेके की है। रेतीली भूमि में नील की खेती करने के विषय में

प्रजा के साथ नील-कोठी के विरोध का अन्त नहीं। और सब किसानों ने उसकी दस्तन्दाज़ी क़बूल कर ली है, सिर्फ़ इस अल्लापुर की प्रजा को साहब अभी तक अपने क़ब्ज़े में नहीं ला सका है। यहाँ की रियाया मुसलमान है और इनका सर्दार फ़ेरू मियाँ किसी से नहीं डरता। निलहे साहब के उपद्रव की तहक़ीक़ात में आई हुई पक्षपाती पुलिस को दो दफ़े पीट कर वह जेल काट आया है। उसकी अवस्था ऐसी बीत रही है कि उसके घर में इत्तफ़ाक़ ही से कभी चूल्हा जलता है पर तो भी वह किसी से डरनेवाला नहीं है। इस दफ़े नदी के समीप ही रेतीली ज़मीन को जोत कोड़ कर इस गाँव के लोगों ने कुछ धान बोया था। क़रीब एक महीने के हुआ कि कोठी के मैनेजर साहब ने स्वयं लठैतों को साथ ले प्रजा का धान लूट लिया। इस अत्याचार के समय फेरू सर्दार ने मैनेजर के दहने हाथ में एक ऐसी लाठी मारी कि उनका हाथ टूट ही गया। डाक्टर ने उसकी चिकित्सा न कर सकने पर हाथ काट डाला। अब उसे लोग हथकट्टा साहब कहने लगे हैं। ऐसा बड़ा अन्धेर इस देहात में आज तक कभी न हुआ था। इसके बाद से पुलिस का उपद्रव गाँव में मानों आग बरसा रहा है। उस आग में पड़ कर प्रजा के घर की सब चीज़ें जल कर ख़ाक हो गई हैं। किसी के घर में कुछ न बचा। पुलिस के क्रोधाग्नि में पड़ कर सब स्वाहा हो गये। स्त्रियों की इज़्ज़त न बची। सभी बेतरह बेइज़्ज़त की गई हैं। पुलिस

फेरू सर्दार और कितने ही लोगों को हाजत में रक्खे हुए है। गाँव के बहुतेरे लोग जहाँ तहाँ भाग गये हैं। फेरू के घर के लोग आज भूखों मर रहे हैं। उनकी देह पर से कपड़े तक उतार लिये गये हैं, यहाँ तक कि वे शर्म के मारे घर से बाहर नहीं निकल सकते। उस का एकमात्र लड़का तमीज़ नाइन को, गाँव के नाते से, मौसी कहता था। उसे कई दिनों का भूखा देख नाइन अपने घर लाई और उस का पालन कर रही है। नील-कोठी की एक कचहरी यहाँ से डेढ़ कोस पर है। दारोग़ा अब भी अपना दल बल लिये वहाँ ठहरा है। उस दंगे के उपलक्ष में वह गाँव में आकर कब क्या करेगा, इस का ठिकाना नहीं। कल मेरे पड़ोसी नाज़िम के घर पुलिस उतरी थी। नाज़िम का एक जवान साला दूसरे गाँव से अपनी बहन को देखने आया था। दारोग़ा ने उसे देख बिना कारण कहा—"साला देखने में कैसा मोटा ताज़ा है, इसकी छाती ते, देखो कितनी चौड़ी है।" और यह कह कर हाथ की लाठी को ऐसी हूड़ उस के मुँह पर मारी कि उसके दाँत टूट गये और मुँह से रक्त की धारा बहने लगी। उस की बहन भाई पर ऐसा अत्याचार होते देख चिल्लाती हुई ज्योंही उस के पास आई त्योंही एक कान्सटेब्ल ने उसे धक्का मारकर सात हाथ दूर फेंक दिया। वह बूढ़ी बेचारी मुँह की खाकर बेहोश हो गिर पड़ी। पहले इस गाँव में पुलिस ऐसा उपद्रव करने का साहस नहीं करती थी, किन्तु अभी इस गाँव के बलिष्ठ युवा

लोग गिरफ़ार होने के भय से भाग गये हैं। उन भगोड़ों की खोज का बहाना करके पुलिस अब भी गाँव को तंग कर रही है। नहीं कह सकते, कब इस ग्रह से हम लोगों का छुटकारा होगा।

गौरमोहन उठना नहीं चाहता था। उधर प्यास के मारे रमापति के प्राण निकले जाते थे। नाई का इतिहास ख़तम होते न होते उसने पूछा—यहाँ से हिन्दुओं का गाँव कितनी दूर है?

नाई—क़रीब तीन मील पर जो नील-कोठी की कचहरी है, वहाँ का तहसीलदार एक कायस्थ है। नाम है मङ्गलप्रसाद।

गौरमोहन ने पूछा—स्वभाव कैसा है?

नाई—साक्षात् यमदूत ही कहना चाहिए। इतना बड़ा निर्दय और चालाक आदमी कहीं देखने में नहीं आया। दारोग़ा को वह कई दिनों से अपने यहाँ टिकाये हुए है; उस का कुल ख़र्च हमी लोगों से वसूल करेगा। इस में वह कुछ मुनाफ़ा भी मारेगा।

रमापति—गौर बाबू, अब चलिए। मैं तो मारे भूख प्यास के मरा जाता हूँ। अब मुझ से नहीं रहा जाता। विशेष कर जब नाइन मुसलमान के लड़के को कुएँ के पास ले जाकर घड़े में पानी भर भर कर उसे नहलाने लगी तब रमापति के मन में अत्यन्त क्रोध हुआ, और उस घर में बैठना उस के लिए कठिन हो गया।

चलते समय गौर ने नाई से पूछा—इस उपद्रव में जो तुम अब तक यहाँ टिके हो, सो क्या और कहीं तुम्हारे कुटुम्बी लोग नहीं हैं ?

नाई—मैं बहुत दिनों से यहाँ हूँ, इन सबों के ऊपर मेरी ममता बढ़ गई है। मैं हिन्दू नाई हूँ। मैं खेती नहीं करता, मेरे जोत-जमा कुछ नहीं है, इस लिए कोठी के अमले मुझसे कुछ कह नहीं सकते। मुझे उन लोगों से कोई वास्ता नहीं है। आज कल इस गाँव में एक भी पुरुष नहीं। सभी जहाँ तहाँ भाग गये हैं। अगर मैं भी यहाँ से चला जाऊँगा तो स्त्रियाँ डर से ही मर जायँगी।

गौर ने कहा—अच्छा, मैं खा-पीकर फिर वहाँ से आऊँगा।

दुःसह भूख-प्यास के समय, रमापति कोठी के साथ दंगा फ़साद के वर्णन से गाँव की प्रजा को अपराधी ठहरा कर उन पर खूब बिगड़ा। ये सब लोग बलवान् के विरुद्ध सिर,उठाना चाहते हैं; यह मूर्ख मुसलमानों की स्पर्द्धा और जड़ता नहीं तो और क्या है? उचित शासन के द्वारा इन लोगों की उद्दण्डता दूर करने ही में कुशल है। इसमें रमापति को कुछ भी सन्देह न था। ऐसे कम्बख़्त अभागों के ऊपर पुलिस का उपद्रव होता ही रहता है। ये गवाँर लोग ही प्रधान दोषी हैं, ये अपने दोष का ही उचित फल पा रहे हैं, उसकी ऐसी ही धारणा थी। वे मालिक के साथ मेल-मिलाप कर लेते, फ़साद क्यों खड़ा करने लगे? अब पुलिस के

आगे वह वीरता कहाँ गई ? वास्तव में रमापति की आन्तरिक सहानुभूति नील-कोठी के साहब के ही साथ थी।

दो-पहर को कड़कड़ाती धूप में तपी हुई बालू के ऊपर से चलते चलते थक कर गौर एक भी बात न बोला। आखिर एक बाग़ के भीतर से जब कुछ दूरी पर कचहरी का मकान देख पड़ा तब गौरमोहन ने रमापति से कहा—तुम वहाँ जा कर खाओ-पीओ। मैं उसी नाई के घर जाता हूँ।

रमापति—यह क्यों ? क्या आप भोजन नहीं करेंगे ? तहसीलदार के यहाँ खा-पी कर जाइएगा।

गौर—मैं अभी अपना कर्तव्य करूँगा। तुम खा-पी कर कलकत्ते चले जाना। इस अल्लापुर में शायद मुझे कुछ दिन रहना पड़ेगा। तुम्हें यहाँ का रहना बरदाश्त न होगा।

रमापति के रोंगटे खड़े हो गये। गौरमोहन के सदृश धर्म्मिष्ठ हिन्दू ने इस म्लेच्छ के घर में रहने की बात कैसे मुँह से निकाली, यह सोच कर वह अवाक् हो रहा। गौरमोहन ने क्या खाना-पीना छोड़ कर उपवास व्रत का संकल्प किया है, वह यही सोचने लगा। किन्तु यह सोचने का समय न था। एक एक घड़ी उसके लिए एक एक कल्प के बराबर बीतती जा रही थी। गौर का साथ छोड़ कर कलकत्ते जाने के लिए उसको अधिक निहोरा करना न पड़ा। कुछ ही देर में रमापति ने देखा कि गौरमोहन की लम्बायमान मूर्त्ति एक विस्तृत छाया

को छोड़ कर प्रचण्ड आतप में सुनसान बालुकामय मार्ग से अकेली लौटी जा रही है।

भूख-प्यास ने गौरमोहन को भी व्याकुल कर रक्खा था, किन्तु दुर्वृत्त अन्यायकारी मङ्गलप्रसाद का अन्न खाकर जाति बचानी होगी, इस बात को वह जितना ही सोचने लगा उतनी ही यह उसको असह्य होने लगी। उसके मुख और नेत्र लाल हो गये, सिर गर्म हो गया, उसके मन में विषम विद्रोह उपस्थित हुआ। उसने मन में कहा, हम लोग भारत-वर्ष में पवित्रता का ढोंग रचकर भारी अधर्म कर रहे हैं। एक नया उपद्रव खड़ा करके जो लोग मुसलमानों को सता रहे हैं, उन्हीं के यहाँ खाने-पीने से मेरी जाति बचेगी और जो उत्पात सह कर मुसलमान के लड़के की प्राण-रक्षा कर रहा है और साथ ही समाज की निन्दा सहने को भी तैयार हुआ है, उसके घर भोजन करने से मेरी जाति जायगी। हा! ऐसी नासमझी! जो हो, इस आचार-विचार की भली-बुरी बात को पीछे सोचूँगा, किन्तु अभी मुझ से यह न हो सकेगा कि जाति बचाने की इच्छा से मैं, इस घोर अन्यायी के घर अन्न-जल ग्रहण करूँ।

गौरमोहन को अकेला लौट आते देख नाई अचम्भे में आ गया। गौर ने आते ही सबके पहले नाई के लोटे को भली भाँति बालू से मल कर अपने हाथ से कुएँ से पानी भर कर पिया और कहा, अगर तुम्हारे घर में कुछ चावल दाल हो

तो दो, हम रींध कर खायँगे। नाई ने हुलस कर रसोई का सब प्रबन्ध कर दिया। गौरमोहन ने भोजन करके कहा—मैं तुम्हारे यहाँ दो चार दिन रहूँगा।

नाई ने डरते हुए हाथ जोड़ कर कहा—आप इस अधम के घर रहें, इससे बढ़ कर मेरा सौभाग्य और क्या हो सकता है। परन्तु एक बात मैं पहले ही आप से कह रखता हूँ, हम लोगों के ऊपर पुलिस की कड़ी दृष्टि है, आप के रहने से कोई नया बखेड़ा न खड़ा हो, इसी का खौफ़ है।

गौर ने कहा—मेरे यहाँ रहने से पुलिस कोई उपद्रव करने का साहस न करेगी और जो करेगी तो मैं तुम लोगों की रक्षा करूँगा।

नाई—दुहाई बाबू की, अगर आप हम लोगों की रक्षा करने की चेष्टा करेंगे तो हम लोग और भी विपत्ति में फँसेंगे। वे साले यही समझेंगे कि मैंने ही प्रपञ्च करके आपको बुला कर उनके विरुद्ध गवाह खड़ा किया है। इतने दिन से किसी तरह यहाँ टिका तो हूँ, हाँ अब टिक भी न सकूँगा। अगर मैं अकेला यहाँ से चला जाऊँ तो यह सारी बस्ती बरबाद हो जायगी।

गौरमोहन अब तक शहर में रह कर ही आदमी हुआ है। नाई क्यों इतना डर रहा है, यह समझना उसके लिए कठिन हो गया। वह जानता था कि न्याय के ऊपर दृढ़ भाव से आरूढ़ रहने पर अन्याय का प्राबल्य नहीं रह

सकता । विपद्ग्रस्त गाँव को असहाय अवस्था में छोड़ कर चले जाने में उसकी बुद्धि किसी तरह सम्मत न हुई । तब नाई ने उसके पैर पकड़ कर कहा—देखिए, आप ब्राह्मण हैं, मेरे पूर्वजन्म के पुण्य से आप मेरे घर अतिथि हुए हैं, आपसे जाने के लिए कहता हूँ यह मुझसे बड़ा अपराध होता है। किन्तु हमारे ऊपर जो आप की दया है वह जान कर ही हमने ऐसा कहा है । आप मेरे घर में रह कर यदि पुलिस के अत्याचार में कोई रोक टोक करेंगे तो समझिए, आप हमें बड़ी विपद में डालेंगे ।

नाई के इस भय को अमूलक और कायरता समझ कर गौर कुछ रुष्ट हो कर तीसरे पहर दिन के ही उसका घर छोड़कर बाहर हुआ । इस म्लेच्छाचारी के घर खाया-पीया है, यह सोच कर गौर के मन में कुछ अश्रद्धा भी उत्पन्न होने लगी । थके हुए शरीर और उद्विग्न मन से वह साँझ को नील-कोठी की कचहरी में जा पहुँचा । रमापति भोजन करके तुरन्त कलकत्ते को चल दिया । इस कारण वह वहाँ न दीख पड़ा । मङ्गलप्रसाद गौरमोहन का तेजः पूर्ण मुख देख कर उसका विशेष आतिथ्य सत्कार करने लगा । गौरमोहन ने एक दम बिगड़ कर कहा—मैं आप के यहाँ जल भी ग्रहण न करूँगा ।

मङ्गलप्रसाद ने विस्मित होकर इसका कारण पूछा । उत्तर में गौर ने उसे अन्यायी, अत्याचारी कह कर कटु भाषण का प्रयोग किया और आसन पर न बैठ खड़ा रहा । दारोगा चौकी

पर बैठ कर मसनद के सहारे तम्बाकू पी रहा था। वह उठ बैठा और ज़रा रूखे स्वर में बोला—तुम कौन हो? तुम्हारा घर कहाँ है?

गौरमोहन ने इस का कुछ उत्तर न देकर कहा—मालूम होता है, तुम दारोग़ा हो। तुमने अल्लापुर में जो जो उपद्रव किये हैं उनकी सब ख़बरें लिये आ रहा हूँ, अगर अब भी सँभल कर न चलोगे तो—

दारोग़ा—तो क्या तुम फाँसी दोगे? तुम तो बड़े शानदार आदमी मालूम होते हो। पहले तो जान पड़ा था, शायद तुम कुछ माँगने की इच्छा से आये हो, किन्तु अब तो कुछ और ही देख पड़ता है। देखते हैं, आँखें रँग गई हैं, त्योरी चढ़ गई है। शायद दारोग़ा से कभी भेंट नहीं हुई है?

मङ्गल ने दारोग़ा का हाथ पकड़ कर कहा—जाने दीजिए, अपने घर आये किसी सज्जन का अपमान करना ठीक नहीं।

दारोग़ा ने बिगड़ कर कहा—कैसा सज्जन! इसने जो मन में आया है आप से कहा। क्या यह आपका अपमान नहीं हुआ?

मङ्गल—आप का कहना सही है। किन्तु निरर्थक क्रोध करने से क्या होगा? मैं निलहे साहब की तहसीलदारी करके खाता हूँ; उसका काम करता हूँ। उसके अतिरिक्त और काम से मुझे क्या वास्ता जो उसमें कुछ बोलूँ। भाई! आप क्रोध न करें, आप पुलिस मुहकमे के दारोग़ा हैं, आप

को यदि यमदूत कहें तो भी अनुचित न होगा। बाघ आदमी को मार कर खाता है, यह सब लोग जानते हैं। बाघ आदमी को खाय चाहे न खाय, मगर वह बदनाम ज़रूर है। इसके लिए आप क्या कीजिएगा।

बिना प्रयोजन मङ्गलप्रसाद को किसी पर नाराज़ होते आज तक किसी ने नहीं देखा है। किस आदमी से कब क्या काम चल सकता है या रुष्ट होने पर किस के द्वारा क्या अनिष्ट हो सकता है, यह नहीं कहा जा सकता। किसी का अनिष्ट या अपमान वह ख़ूब सोच विचार कर करता था। क्रोध कर के दूसरे को सताने की सत्ता को वह सहसा ख़र्च नहीं करता था।

दारोग़ा ने तब गौर से कहा—देखो बाबू, तुम पूरे देहाती मालूम होते हो। हम लोग यहाँ सरकारी काम करने आये हैं। इसमें अगर तुम कुछ बोलोगे या किसी तरह की दस्तंदाज़ी करोगे तो मुश्किल में पड़ोगे।

गौरमोहन इस का कुछ उत्तर न दे कर बाहर निकल आया। मङ्गल झट उसके पीछे हो लिया और उसके पास जाकर बोला—महाशय! आप ने जो कहा है सो ठीक है—हम लोगों का यह क़साई का काम है—और इस बेईमान दारोग़ा के साथ एक बिछौने पर बैठने में भी पाप है। उसके पंजे में पड़ कर मैंने जितने दुष्कर्म्म किये हैं उनको ज़बान पर भी नहीं ला सकता। अब अधिक दिन नहीं। दो तीन

वर्ष किसी तरह और इस काम में रह लड़की के ब्याह कर देने का खर्च जमा कर लेने पर मैं अपनी स्त्री सहित काशी-वास करूँगा। मुझे भी यह सब अच्छा नहीं लगता। किसी समय मन में इतना विषाद होता है कि गले में फाँसी लगा कर मर जाऊँ; जो हो, आज रात को आप जायँगे कहाँ? यहीं खा-पी कर सो रहिए। उस पापी दारोग़ा की छाया तक आप के ऊपर न पड़ने दूँगा। आप के खाने-पीने का सब प्रबन्ध मैं अलग कर दूँगा।

गौरमोहन को साधारण लोगों की अपेक्षा भूख अधिक लगती थी। आज सबेरे उसने अच्छी तरह नहीं खाया। किन्तु मारे क्रोध के उसका सारा शरीर जल रहा था। वह किसी भाँति यहाँ रहने को राज़ी न हुआ। उसने यह कहकर डग लम्बी की कि मुझे एक बहुत ज़रूरी काम है।

मङ्गल—अच्छा तो, ज़रा ठहर जाइए, एक लालटेन साथ कर देती हूँ।

गौरमोहन इसका कोई जवाब न दे कर तीर की तरह निकल पड़ा।

मङ्गलप्रसाद ने घर लौट कर दारोग़ा से कहा—मालूम होता है, वह आदमी सदर गया है। इसी वक्त एक आदमी को मैजिस्ट्रेट के पास भेज दीजिए।

दारोग़ा ने कहा—क्यों, क्या करना होगा?

मङ्गल ने कहा—और कुछ नहीं, वह जाकर डिविज़नल

ऑफ़िसर को जता आवे कि एक भला आदमी कहीं से आकर गवाह को बिगाड़ने की चेष्टा में घूम रहा है।

[२७]

ब्रैडला साहब मैजिस्ट्रेट दिनान्त में नदी के किनारे की सड़क पर पैदल घूम रहे हैं, साथ में हरि बाबू हैं। किन्तु उनसे कुछ दूर जोड़ी पर सवार हो उनकी मेम परेश बाबू की लड़कियों को साथ ले हवा खाने को निकली है।

ब्रैडला साहब कभी कभी गार्डनपार्टी में अच्छे अच्छे बंगालियों को नेवता दे कर अपने यहाँ बुलाते थे। ज़िला स्कूल में इनाम बाँटने के लिए वही सभापति का आसन ग्रहण करते थे। कोई रईस यदि अपने बेटी-बेटे की शादी में उन्हें बुलाता तो वे उसका निमन्त्रण स्वीकार करते थे। यहाँ तक कि यात्रा (एक प्रकार के अभिनयमूलक गान) के गान-स्थल में बुलाये जाने पर वे एक आराम-कुरसी पर बैठकर कुछ देर बड़ी धीरता के साथ गान सुनते थे। उनकी कचहरी के सरकारी वकील के घर गत दशहरे के उत्सव में जो यात्रा हुई थी, उस में दो लड़कों ने भिश्ती और मेहतरानी का पार्ट लिया था और परस्पर कुछ बातें की थीं। उन दोनों का अभिनय मैजिस्ट्रेट साहब को बहुत अच्छा लगा। उन्होंने इस अभिनय पर विशेष हर्ष प्रकट किया था। और

उनके अनुरोध से उस अभिनय का कुछ अंश दुबारा दिखलाया गया था।

उन की स्त्री पादरी की बेटी थी। उसके यहाँ कभी कभी पादरियों की लड़कियाँ आ कर चाय-पानी पीती थीं। शहर के भीतर उसने एक कन्यापाठशाला स्थापित की थी और उस स्कूल में पढ़ने वाली लड़कियों का अभाव न होने के लिए वह यथेष्ट चेष्टा करती थी। परेश बाबू के घर की लड़कियों में विद्या की चर्चा देख वह उन्हें बराबर उत्साह देती थी; दूर रह कर भी कभी कभी उनके पास पत्र भेजती और बड़े दिन की ख़ुशी में उन्हें धर्मग्रन्थ उपहार देती थी।

प्रदर्शनी का दिन आगया। मेले का इन्तज़ाम बहुत ठीक है। दूर दूर के लोग कोई सौदा बेचने, कोई ख़रीदने और कोई तमाशा देखने को आये हैं। इस उपलक्ष में हरिश्चन्द्र, सुधीर और विनय के साथ शिवसुन्दरी और उनकी लड़कियाँ भी आई हैं। उनको डाक-बँगले में डेरा दिया गया है। परेश बाबू इन सब बखेड़ों में पड़ना नहीं चाहते, इसलिए वे अकेले कलकत्ते में ही रह गये। सुशीला ने उनकी सेवा-टहल के लिए उनके पास रहने की बहुत चेष्टा की थी किन्तु परेश बाबू ने मैजिस्ट्रेट के निमन्त्रण में कर्तव्य-पालन के लिए सुशीला को विशेष उपदेश देकर भेज दिया। परसों कमिश्नर साहब और सस्त्रीक लाट साहब के सामने मैजिस्ट्रेट साहब के बँगले

पर सन्ध्या समय परेश बाबू की लड़कियां द्वारा अभिनय होने की बात स्थिर हुई है। उसे देखने के लिए मैजिस्ट्रेट के अनेक इष्ट मित्र जहाँ तहाँ से बुलाये गये हैं। कितने ही चुने चुने हिन्दू, वकील, बारिस्टर और ज़मींदार आदि को भी इस अभिनय में बुलाने का आयोजन हो रहा है। यह भी सुना जाता है कि उन लोगों के लिए बाग़ में एक तम्बू के भीतर ब्राह्मण रसोइया द्वारा जल-पान की सामग्री तैयार कराने की व्यवस्था होगी।

हरि बाबू ने कुछ ही समय में सार-गर्भित बातचीत से मैजिस्ट्रेट को विशेष रूप से सन्तुष्ट कर लिया था। ईसा मसीह की धर्म-संबंधी पुस्तकों में हरि बाबू का असाधारण पाण्डित्य देख कर साहब आश्चर्य में डूब गये थे और ईसाई धर्म को ग्रहण करने में वह अब तक क्यों विलम्ब कर रहा है यह भी मैजिस्ट्रेट ने उससे पूछा था।

आज साँझ को नदी-तट के मार्ग में हरि बाबू के साथ मैजिस्ट्रेट ब्राह्मसमाज की कार्यप्रणाली और हिन्दूसमाज के संस्कार-साधन के संबंध में बड़ी गम्भीरता से आलोचना कर रहे थे। इसी समय गौरमोहन "गुड ईवनिंग सर" कह कर उनके सामने आ खड़ा हुआ।

कल उसने मैजिस्ट्रेट साहब से मिलने की चेष्टा करके देखा कि साहब के सदर फाटक के भीतर पैर रखने के लिए दरवान को कुछ भेंट देनी होती है। इस प्रकार जुर्माने के साथ

साथ अपमान स्वीकार करने में राज़ी न हो कर आज वह साहब के हवा खाने के समय उनसे भेंट करने आया है। इस साक्षात्कार के समय हरि बाबू और गौरमोहन, इन दोनों में पारस्परिक परिचय का कोई लक्षण न पाया गया।

गौर को देख कर साहब कुछ विस्मित से हो गये। ऐसा पँचहत्था जवान, हट्टा कट्टा बदन, इसके पहले कभी वङ्ग देश में देखा है या नहीं, यह उनके स्मरण में न आया। इसके शरीर की कान्ति भी साधारण बङ्गाली की सी न थी। यह एक ख़ाकी रङ्ग का कुरता पहिने हुए था, धोती मोटी और कुछ मैली थी, हाथ में एक बाँस का लट्ठ था। चादर को सिर पर पगड़ी की तरह लपेटे हुए था।

गौर ने मैजिस्ट्रेट से कहा—मैं अल्लापुर से आ रहा हूँ।

मैजिस्ट्रेट ने एक विस्मयसूचक भाव प्रदर्शित किया। अल्लापुर की वर्तमान कार्रवाई में एक बाहरी आदमी बाधा देने आया है, यह ख़बर उनको कल ही मिल चुकी थी। तो क्या यह वही आदमी है? गौरमोहन को सिर से पैर तक उन्हों ने एक बार कड़ी दृष्टि से देखा और पूछा—तुम कौन जात हो?

गौर—मैं बङ्गाली ब्राह्मण हूँ।

साहब ने कहा—ओ! क्या समाचार-पत्र के साथ तुम्हारा कोई संबंध है?

गौर—जी नहीं।

मैजिस्ट्रेट—तब तुम अल्लापुर क्या करने गये थे?

गौर—घूमते फिरते पथक्रम से वहाँ जा पहुँचा था। पुलिस का अत्याचार, और गाँव की दुर्दशा देख कर तथा वहाँ विशेष उपद्रव की संभावना जान कर प्रतीकार के लिए मैं आप के पास आया हूँ।

मैजिस्ट्रेट—अल्लापुर के लोग बड़े बदमाश हैं, यह तुम नहीं जानते?

गौर—वे बदमाश नहीं हैं, वे निडर हैं और स्वतन्त्र स्वभाव के हैं। वे लोग अन्याय और अत्याचार को चुपचाप नहीं सह सकते।

मैजिस्ट्रेट ख़फ़ा हो उठे। उन्होंने मन में समझा, नये बङ्गाली इतिहास की किताबें पढ़ कर नई बोली बोलने लगे हैं। "तुम वहाँ की हालत से बिलकुल वाक़िफ़ नहीं हो," यह कह कर मैजिस्ट्रेट ने गौर को ख़ूब घुड़की दी।

गौर ने भी ख़ूब कड़क कर कहा—आप वहाँ की हालत मेरी अपेक्षा बहुत कम जानते हैं।

मैजिस्ट्रेट—मैं तुमको सावधान किये देता हूँ, अगर त अल्लापुर के मामले में किसी तरह का हस्तक्षेप करोगेतो खोज रक्खो, तुम विद्रोही समझे जाओगे और तुम को इस योगेन्द्र फल मिलेगा। घर गया।

गौर—जब आपने अत्याचार को शान्त न करबोले—वाह! में संकल्प किया है और गाँव के लोगों के विरु

धारणा ऐसी दृढ़ बँध गई है तब मैं कर ही क्या सकता हूँ। हाँ, इतना मैं ज़रूर करूँगा कि उस गाँव के लोगों को पुलिस के विरुद्ध खड़े होने के लिए उत्साहित करूँगा।

मैजिस्ट्रेट चलते चलते रुक गये और पीछे की ओर घूम कर गौरमोहन को डपट कर बोले—क्या! इतनी बड़ी शेखी!

गौरमोहन कुछ जवाब न देकर धीरे धीरे वहाँ से चला गया। मैजिस्ट्रेट ने हरि बाबू से कहा—क्यों साहब, आपके देशवासियों में यह कैसा लक्षण दिखाई दे रहा है?

हरि बाबू ने कहा—हुजूर! लिखना-पढ़ना कुछ ठीक होता नहीं, विशेष कर देश में आध्यात्मिक और नैतिक तथा चरित्र-सुधार सम्बन्धी शिक्षा न होने के कारण ही ऐसी घटना होती है। अँगरेज़ी विद्या का जो श्रेष्ठ अंश है वह ग्रहण करने का इन्हें सामर्थ्य नहीं। भारतवर्ष में अँगरेज़ी शासन को—जो ईश्वर की कृपा का फल है—ये अकृतज्ञ अब भी स्वीकार करना नहीं चाहते। इसका कारण एक मात्र यही जान पड़ता है कि ये लोग सुग्गे की तरह केवल पाठ को कण्ठ कर लेते हैं उ न्तु धर्म का ज्ञान इन्हें बिलकुल नहीं है।

जात ैजिस्ट्रेट—जब तक ये लोग ख्रीष्ट को न मानेंगे तब तक

गौर—ह धर्मज्ञान कभी पूर्णता लाभ न करेगा।

साहब ने कहा—"यह आपका कहना एक प्रकार से

तुम्हारा कोई यह कह कर ईसा को स्वीकार करने के संबंध

गौर—जी ै के साथ हरि बाबू का कहाँ मत-भेद था

और कहाँ वह सम्मत था—इसी की सूक्ष्म भाव से चर्चा उसने मैजिस्ट्रेट से की और उनका ध्यान इस प्रकार अपनी ओर खींच लिया था कि जब मेम साहिबा ने परेश बाबू की लड़कियों को गाड़ी पर बिठा डाक-बँगले में पहुँचा दिया और लौटती बार रास्ते में अपने स्वामी से कहा, "घर लौट चलिए," तब वे चौंक उठे और घड़ी देख कर कहा—आठ बज कर बीस मिनट हो गये! गाड़ी पर चढ़ते समय मैजिस्ट्रेट ने हरि बाबू से हाथ मिलाकर कहा—आपके साथ बातचीत करके मेरी आज की सन्ध्या ख़ूब मज़े में कटी है।

हरि बाबू ने डाक-बँगले में पहुँच कर वे सब बातें पल्लवित करके सब को सुनाईं जो कि आज मैजिस्ट्रेट से हुई थीं। परन्तु उसने गौरमोहन के आने का उल्लेख नहीं किया।

[२८]

अपराध का कुछ विचार न करके केवल गाँव में रोब दाब स्थापित करने के लिए ४७ असामियों को हवालात हो गई है।

मैजिस्ट्रेट से भेट करने के बाद गौरमोहन वकील की खोज में गया। किसी के द्वारा यह समाचार मिला कि योगेन्द्र बाबू यहाँ एक अच्छे वकील हैं। वह उनके घर गया। योगेन्द्र बाबू उसे देखते ही पहचान गये और बोले—वाह! गौर बाबू, तुम यहाँ कैसे आये?

गौर ने मन में जो सोचा था, वही ठीक हुआ। योगेन्द्र उसके सहपाठी थे। गौर ने कहा—अल्लापुर के असामियों को ज़मानत पर छुड़ा कर उनकी ओर से मुकद्दमा चलाना होगा।

योगेन्द्र ने कहा—ज़ामिन कौन होगा?

गौर—मैं।

योगेन्द्र—तुम सैंतालीस आदमियों की ज़ामिन होगे, यह तुम्हारे मक़दूर से बाहर की बात है।

गौर—यदि मुख़तार लोग मिलकर ज़ामिन हों तो उसकी फ़ीस हम देंगे।

योगेन्द्र—कम रुपये न लगेंगे।

दूसरे दिन मैजिस्ट्रेट के इजलास में ज़मानत पर असामियों को छोड़ देने के लिए दरख़्वास्त दी गई। मैजिस्ट्रेट ने कल के उस मलिन-वस्त्रधारी पगड़ी वाले वीर की ओर एक बार टेढ़ी दृष्टि से देखा और दरख़्वास्त को नामंजूर कर दिया। चौदह वर्ष के लड़के से लेकर अस्सी वर्ष के बूढ़े तक हवालात में सड़ने लगे।

गौरमोहन ने इन असामियों का पक्ष लेकर लड़ने के लिए योगेन्द्र बाबू से अनुरोध किया। योगेन्द्र ने कहा—गवाह कहाँ से लाओगे? जो लोग गवाह होते वे सभी तो मुजरिमों की तरह हाजत में ठूँस दिये गये हैं। इसके अतिरिक्त इस साहब-मार मामले की बात से इस प्रान्त के लोग कुछ फूल उठे

हैं। मैजिस्ट्रेट के मन में यह धारणा हो गई है कि इसमें अच्छे अच्छे लोग भी भीतर ही भीतर मिले हुए हैं। कदाचित् मुझ पर भी सन्देह करे तो कोई आश्चर्य नहीं। अँगरेज़ी कागज़ों में लगातार छप रहा है कि यदि देशी लोग इस तरह ढिठाई करने लगे हैं तो अरक्षित असहाय अँगरेज़ अब मुफ़स्सिल में न रह सकेंगे। इस आन्दोलन से ऐसी नौबत आ गई है कि देश के आदमी देश में टिक नहीं सकते। अत्याचार सचमुच हो रहा है, यह मैं जानता हूँ किन्तु मैं कुछ कर नहीं सकता। हम लोगों से इस अत्याचार का प्रतीकार होना कठिन ही नहीं, वरन् असंभव है।

गौर ने गरज कर कहा—क्यों असम्भव है?

योगेन्द्र ने हँसकर कहा—तुम जैसे स्कूल में थे वैसे ही अब भी हो। असंभव का अर्थ यह है कि हम लोगों के घर में स्त्री और बाल-बच्चे हैं, नित्य कुछ उपार्जन न करने से कितने ही लोगों को उपवास करना होगा। दूसरे की विपत्ति अपने सिर पर लेकर मरने को तैयार होने वाले लोग संसार में बहुत कम हैं। विशेषता यह है कि देश में आश्रम का खर्च चलना कठिन सा होगया है। जिनके ऊपर दस आदमियों के निर्वाह का भार है वे उन दसों को छोड़ अन्य दस जनों की ओर देखने का अवकाश तक नहीं पाते, तब उनका भरण-पोषण वे कहाँ तक कर सकेंगे।

गौरमोहन—तो क्या तुम इन लोगों के लिए कुछ न करोगे? अगर हाई कोर्ट में मुकदमा दायर करें तो—

योगेन्द्र अधीर होकर बोले—अरे! अँगरेज़ का हाथ तोड़ डाला है, यह नहीं देखते! हर एक अँगरेज़ हम लोगों का राजा है। एक छोटे से छोटे अँगरेज़ को मारने से एक छोटा सा राज-विद्रोह समझा जायगा। किन्तु कोई अँगरेज़ यदि भारतीय प्रजा को मारे तो वह प्रजाविद्रोह में नहीं गिना जायगा। ऐसी हालत में क्या इलाज है? मुझ से यह न होगा कि जिससे कुछ फल न होगा, उसके लिए व्यर्थ चेष्टा करके मैजिस्ट्रेट की कोपाग्नि में पड़ूँ।

कलकत्ते के किसी वकील की सहायता से कुछ फल हो सकता है या नहीं, यह देखने के लिए वह दूसरे दिन साढ़े दस बजे की ट्रेन से कलकत्ते जाने के लिए तैयार हुआ। इसी समय एकाएक यात्रा में विघ्न हो गया।

'यहाँ के वर्तमान मेले के उपलक्ष में कलकत्ते के विद्यार्थियों के साथ यहाँ के छात्रों के क्रिकेट खेलने की बात स्थिर हुई है। हाथ पक्का करने के लिए कलकत्ते के छात्र आपस में अभ्यास का खेल खेल रहे थे। क्रिकेट की गेंद लगने से एक छात्र के पैर में बड़ी चोट लगी। मैदान के एक तरफ़ एक बहुत बड़ा पोखर था। घायल विद्यार्थी को दो लड़के उठा कर उस तालाब के किनारे ले गये। वहाँ वे दोनों चादर से एक टुकड़ा फाड़ कर पानी से भिगो कर

चोट की जगह पट्टी बाँध रहे थे, ऐसे समय में हठात् कहीं से भूत की तरह एक पहरेवाले ने आकर बिना पूछ ताछ किये ही एक विद्यार्थी के गले में हाथ डाल धक्का मार कर गिरा दिया और उसे अश्लील गालियाँ दीं। तालाब का पानी पीने के लिए रक्षित था, उसमें प्रवेश करना मना था, यह बात कलकत्ते के विद्यार्थियों को मालूम न थी। मालूम होने पर भी पहरेवाले से इस प्रकार अपमानित होने का उन्हें अभ्यास न था। इसलिए उन्होंने बदन में ताक़त रखने के बल पर अपमान का प्रतीकार आरम्भ कर दिया। वे जूते-लातों से उस पहरेदार की ख़बर लेने लगे। यह दृश्य देख कर चार पाँच कान्सटेब्ल दौड़ कर वहाँ आये। ठीक इसी समय गौरमोहन भी वहाँ आ पहुँचा। कलकत्ते के छात्र उसको चीन्हते थे। गौरमोहन उनके साथ कई बार क्रिकेट खेल चुका था। गौर ने जब देखा कि पहरेवाले सिपाही विद्यार्थियों को मारते-पीटते पकड़े लिये जा रहे हैं तब उससे न रहा गया। उसने कहा—ख़बरदार, मारो मत। इस पर पुलिस के सिपाहियों ने ज्योंही उसे ख़राब गाली दी त्योंही गौर ने उन्हें घूसों और लातों से इस तरह पीटना शुरू किया कि रास्ते पर लोगों की भीड़ जम गई। इधर देखते ही देखते विद्यार्थियों का दल भी आ जुटा। गौरमोहन के आदेश से उत्साहित होकर सभी विद्यार्थी पुलिस के उन दुष्ट सिपाहियों पर टूट पड़े। यह देख पहरेवाले सिपाही वहाँ से भाग कर थाने में ख़बर देने गये।

अत्याचारी कान्सटेब्ल को मार खाते देख दर्शक रूप वहाँ जितने लोग खड़े थे वे बड़े ख़ुश हुए। किन्तु यह तमाशा गौरमोहन के लिए तमाशा न हुआ। वह क्या करने चला था और रास्ते में यह क्या हो पड़ा।

तीन चार बजे दिन को डाक-बँगले में विनय, हरिश्चन्द्र, और परेश बाबू की लड़कियाँ अभिनय का पाठ याद कर रही थीं। इसी समय विनय के परिचित दो विद्यार्थियों ने आकर ख़बर दी—गौरमोहन और उसके साथी कई विद्यार्थियों को पुलिस ने गिरफ़्तार करके हाजत में रक्खा है। कल मैजिस्ट्रेट के सामने इनका विचार होगा।

गौर हाजत में है, यह सुन कर हरि को छोड़ सभी एकदम चौंक उठे। विनय तुरन्त दौड़ कर अपने सहपाठी योगेन्द्र बाबू के पास गया और उनसे उसने सब हाल कहा और उनको साथ लेकर हाजत में गया।

योगेन्द्र ने उसकी ओर से वकालत करने और ज़मानत पर उसे छुड़ाने की कोशिश करने का प्रस्ताव किया। गौर ने कहा—मैं वकील न करूँगा और न आप को मुझे ज़मानत पर छुड़ाने की चेष्टा करनी होगी।

यह क्या! योगेन्द्र ने विनय की ओर देख कर कहा—देखते हो! कौन कहेगा कि गौर स्कूल से निकल आया है! इसकी बुद्धि और विचार ठीक वैसा ही है, अभी तक कुछ बदला नहीं है।

गौर—सुनो, मेरे पास धन है, मित्र हैं, इसके द्वारा मैं हाजत और हथकड़ी से छुटकारा पाना नहीं चाहता। हमारे देश की जो धर्म-नीति है, उससे हम जानते हैं कि सुविचार करना राजा का धर्म है। प्रजा के प्रति अविचार करना राजा का ही अधर्म है। किन्तु इस राज्य में वकील-मुख़्तारों की मुट्ठी गरम न कर सकने पर प्रजा यदि हाजत में सड़े गले, जेल में मरे और सिर के ऊपर राजा के रहते हुए भी यदि न्याय-विचार को पैसे से ख़रीदने में लोगों का सर्वस्व जाता हो तो ऐसे विचार के लिए तो मैं एक पैसा भी ख़र्च करना नहीं चाहता। मेरे कहने का मतलब यह है कि जहाँ इन्साफ़ के लिए पैसे की ज़रूरत है, वहाँ ठीक ठीक इन्साफ़ हो ही नहीं सकता।

योगेन्द्र—क़ाज़ी की अमलदारी में रिशवत देने से सिर बिक जाता था।

गौर—रिशवत देना तो राजा का विधान न था। जो क़ाज़ी हृदय का छोटा था, वही घूस लेता था। इस ज़माने में भी तो वही बात है। आज कल राजद्वार पर विचार के लिए खड़े होने के लिए जाते ही वादी हो या प्रतिवादी, दोषी हो या निर्दोष, प्रजा को आँसू बहाने ही होंगे। बिना वकील-मुख़्तार को कुछ दिये उनकी पुकार राजा के कान तक पहुँच ही नहीं सकती। जो ग़रीब है, निर्दोष है, उस की जीत विचार की रण-भूमि में होने पर भी उसके हाथ की पूँजी

मुकद्दमे के ही पीछे समाप्त हो जाती है। इस पर भी जब राजा स्वयं मुद्दई है और हम लोग मुद्दालह हैं, तब उन्हीं की तरफ़ वकील मुख़तार रहेंगे। हम लोग यदि निर्दोष होने का प्रमाण दे सके तो अच्छा, नहीं तो जो भाग्य में लिखा होगा, होगा! विचार में यदि वकील की सहायता दरकार नहीं है तो सरकारी वकील क्यों हैं? आवश्यकता होने पर हमारी ओर से भी वही बोलें। हम सरकारी पक्ष के विरुद्ध दूसरे वकील को क्यों खड़ा करें? यह क्या प्रजा के साथ शत्रुता है? यह कैसा राजधर्म है?

योगेन्द्र—भाई तुम क्रोध क्यों करते हो? सिविलिज़ेशन साधारण वस्तु नहीं है। सूक्ष्म विचार करने के लिए सूक्ष्म क़ानून की ज़रूरत पड़ती है। अतः सूक्ष्म क़ानून का व्यवसायी न होने से काम नहीं चलता। व्यवसाय में ख़रीद-फ़रोख़्त का झमेला आ ही पड़ता है। इस लिए सभ्यता की अदालत में आप ही न्याय के ख़रीद फ़रोख़्त का बाज़ार हो उठेगा। जिसके पास रुपया नहीं है वह अदालत की हार में हाथ मलेगा ही। तुम राजा होते तो क्या करते?

गौर—मैं ऐसा क़ानून बनाता कि हज़ार डेढ़ हज़ार रुपया मासिक वेतन पानेवाले विचारक की बुद्धि में यदि क़ानून के रहस्य का भेद खुलना असंभव होता तो अभियोगी और अभियुक्त दोनों के लिए सरकारी ख़र्च से वकील कर देता। युक्ति-युक्त विचार होने का ख़र्च प्रजा के सिर पर डाल सुवि-

चार का यशो-गान करके पठानों और मुग़लों को गाली न देता ।

योगेन्द्र—ठीक है, किन्तु यह शुभावसर जब प्राप्त नहीं है, जब तुम राजा नहीं हो—अभी तुम सभ्य राजा की अदालत के एक असामी हो—तब या तो तुम को गाँठ का पैसा ख़र्च करना पड़ेगा या मित्र वकील की शरण लेनी पड़ेगी । उद्धार पाने के लिए तीसरी कोई गति नहीं है ।

गौरमोहन ने हठ कर के कहा—बिना कुछ यत्न किये जो गति हो सकती है, वही मेरी गति होगी । इस राज्य में निरुपाय लोगों की जो गति है वही गति मेरी भी समझो ।

विनय ने बहुत अनुनय-विनय किया, किन्तु गौरमोहन ने उस पर कुछ भी ध्यान न दिया । उस ने विनय से पूछा—तुम यहाँ कैसे आये ?

विनय का मुँह लाल हो गया । यदि गौर आज हाजत में न रहता तो विनय शायद उसको विद्रोह के स्वर में ही यहाँ अपने उपस्थित होने का कारण बतला देता । आज स्पष्ट उत्तर उस के मुँह के भीतर ही रह गया । उस ने कहा—मेरी बात पीछे होगी, अभी तुम अपना हाल कहो ।

गौर—मैं तो आज राजा का अतिथि हूँ । मेरे लिए राजा स्वयं सोच रहे हैं, तुम लोगों में किसी को सोचना न होगा ।

विनय जानता था कि गौरमोहन को अपने सिद्धान्त से

विचलित करना संभव नहीं। इसलिए उसे वकील करने की चेष्टा छोड़ देनी पड़ी। विनय ने कहा—तुम तो यहाँ का कुछ खा नहीं सकोगे, कहो तो बाहर से ही कुछ खाने-पीने की चीज़ें भेज देने का प्रबन्ध कर दूँ।

गौर ने ऊब कर कहा—विनय, तुम क्यों वृथा यह सब कर रहे हो! बाहर से मैं कुछ नहीं चाहता। हाजत में सब के भाग्य में जो बदा होगा, उस से कुछ अधिक मैं नहीं चाहता।

विनय उदास मन किये डाक-बँगले को लौट आया। सुशीला रास्ते की तरफ़ वाले एक सोने के कमरे में किवाड़ बन्द करके खिड़की खोले विनय के लौटने की प्रतीक्षा कर रही थी। किसी के साथ बैठ कर बातचीत करना उस घड़ी उसे न सुहाता था, इसी से वह एकान्त में आ कर मौन साधे बैठी थी।

सुशीला ने जब देखा कि विनय मुँह उदास किये चिन्तित चित्त से डाक-बँगले की ओर आ रहा है, तब भय से उसका कलेजा काँप उठा। बड़ी बड़ी चेष्टा से वह अपने को किसी तरह सँभाल कर एक किताब हाथ में लेकर बीच के घर में आ बैठी। ललिता सिलाई करना पसन्द न करती थी, किन्तु आज वह चुपचाप कोने में बैठ कर सिलाई कर रही थी। लावण्य सुधीर को लेकर कोई अँगरेज़ी ढँग का खेल खेल रही थी, लीलावती दर्शक थी। हरि बाबू शिवसुन्दरी के साथ कल होनेवाले उत्सव की आलोचना कर रहा था।

आज सबेरे जो पुलिस के साथ गौरमोहन का विरोध हुआ था उसका इतिहास विनय ने सविस्तर कह सुनाया। सुशीला जड़वत् बैठी रही। ललिता के हाथ से सिलाई का सामान गिर पड़ा और उसके चेहरे पर उदासी छा गई।

शिवसुन्दरी ने कहा—विनय बाबू, आप कुछ चिन्ता न करें, आज साँझ को मैजिस्ट्रेट की मेम के पास जाकर गौर-मोहन बाबू के लिए मैं ख़ुद सिफ़ारिश करूँगी।

विनय—नहीं, आप ऐसा न करें; गौर को अगर यह बात मालूम होगी तो ज़िन्दगी भर के लिए वह मुझसे बिगड़ बैठेगा।

सुधीर—उनके बचाव का तो कोई प्रबन्ध करना होगा।

ज़मानत पर छुड़ाने की चेष्टा और वकील नियुक्त करने के सम्बन्ध में गौर ने जो उज्र किया था, वह सब विनय ने कह सुनाया। हरि बाबू ऊब कर बोल उठा—यह सब फ़जूल है।

हरि बाबू के प्रति ललिता के मन का भाव चाहे जो हो परन्तु वह अबतक उसे मान्य समझ कर उसका आदर करती आती थी। कभी उसके साथ बढ़कर न बोलती थी। आज वह तीव्र भाव से सिर हिला कर बोल उठी—कुछ भी फ़जूल नहीं है। गौर बाबू ने जो किया है सो बहुत ठीक किया है। मैजिस्ट्रेट हम लोगों को तबाह करें और हम आप अपना बचाव करें! वे अपना मोटा महीना सुरक्षित रखने के लिए

टैक्स लिया करें और उनके हाथ से छुटकारा पाने के लिए हम गाँठ का पैसा वकील को दें! कैसा अच्छा इन्साफ़ है! इस प्रकार न्याय कराने की अपेक्षा जेल जाना अच्छा है!

हरि बाबू ने ललिता को बहुत दिनों से देखा है—परन्तु उसमें जो इस प्रकार मतामत का ज्ञान है, यह उसे न मालूम था। इस से ललिता का तीव्र भाषण सुन कर वह क्षुब्ध हो गया। उसने नसीहत के तौर पर कहा—तुम यह सब क्या जानो? जो लोग दो चार पुस्तकों की बातें कण्ठस्थ करके किसी तरह पास करके झटपट कालेज से निकल आये हैं, जिनके न कोई धर्म है न कोई धारणा है, जो इधर उधर मारे मारे फिरते हैं, उनके मुँह से वे सिर-पैर की बातें सुन कर तुम लोगों का दिमाग़ घूम गया है!—यह कहकर उसने विस्तारपूर्वक वे बातें कह सुनाईं जो कल शाम को मैजिस्ट्रेट के साथ गौरमोहन की भेट होने पर हुई थीं तथा उस सम्बन्ध में जो कुछ मैजिस्ट्रेट ने कहा था। अल्लापुर की वारदात विनय को मालूम न थी, उसे सुन कर वह डर गया। उसने समझ लिया कि मैजिस्ट्रेट गौरमोहन को सहज ही माफ़ न करेगा।

हरि ने जिस अभिप्राय से यह बात कही थी वह बिलकुल व्यर्थ हो गया। वह गौरमोहन के साथ भेट होने के सम्बन्ध में अब तक चुप था, एक दम उस बात को छिपाये हुए था; इससे उसके हृदय की संकोर्णता ने सुशीला को मर्माहत किया और हरि बाबू की प्रत्येक बात में गौर के प्रति जो व्यक्तिगत

ईर्ष्या प्रकाश होती थी, उससे गौर की इस विपत्ति के समय हरि बाबू के ऊपर सभी लोगों के मन में एक प्रकार की अश्रद्धा उत्पन्न हुई। सुशीला अब तक चुप बैठी थी। कुछ बोलने के लिए वह आवेश में आगई, किन्तु मन के आवेग को रोक कर वह एक किताब के पत्र को काँपते हुए हाथ से उलटाने लगी। ललिता ने उद्धत भाव से कहा—मैजिस्ट्रेट के साथ हरि बाबू के मत का चाहे जितना मिलान हो, परन्तु अल्लापुर के मामले में गौरमोहन बाबू का महत्व विशेष प्रशंसनीय है।

[२६]

आज छोटे लाट साहब आवेंगे, इसलिए मैजिस्ट्रेट ने ठीक साढ़े दस बजे अपने इजलास में आकर झट पट मुकद्दमे का काम ख़तम कर डालना चाहा।

योगेन्द्र बाबू ने स्कूल के विद्यार्थियों का पक्ष लेकर उनके साथ अपने मित्र को बचाने की चेष्टा की। रँग ढँग देख कर वे समझ गये थे कि अपराध स्वीकार कर लेना ही यहाँ अच्छा होगा। लड़के स्वभावतः ऊधमी होते हैं, वे पहले पहल यहाँ आये हैं, यहाँ की बातों से परिचित नहीं हैं, ऐसे ही और भी कुछ कह कर योगेन्द्र ने उनके लिए माफ़ी माँगी। मैजिस्ट्रेट ने विद्यार्थियों को जेल में ले जाकर उनकी उम्र और अपराध के अनुसार पाँच से लेकर पचीस बेतों तक की आज्ञा दे दी। गौर

मोहन का कोई वकील न था। उसने अपना मामिला आप ही चलाने के मतलब से पुलिस के अत्याचार के विषय में कुछ कहना चाहा, किन्तु मैजिस्ट्रेट ने ख़ूब ज़ोर से डपट कर उसे चुप कर दिया और पुलिस की कार्रवाई में रोक टोक करने के अपराध में उसे एक महीने की सपरिश्रम क़ैद की सज़ा दी और ऐसी छोटी सज़ा को उन्होंने विशेष दया बतलाया।

सुधीर और विनय अदालत में उपस्थित थे। विनय गौर के मुँह की ओर देख न सका। विषाद से उसका हृदय फटा जाता था। मानों उस की साँस बन्द होने का लक्षण दिखाई देने लगा। रुलाई रोकने के कारण उसका दम फूलने लगा। वह झटपट कचहरी से बाहर निकल आया। सुधीर ने उसे डाक-बँगले पर लौट कर स्नान-भोजन करने का अनुरोध किया। किन्तु उसने सुधीर की एक न सुनी। वह मैदान के रास्ते से चलते चलते एक पेड़ के नीचे बैठ गया। उसने सुधीर से कहा—तुम जाओ, मैं कुछ देर के बाद आऊँगा। सुधीर चला गया।

विनय कितनी देर वहाँ उस तरह बैठा रहा, यह उसे मालूम न हुआ। सूर्य जब माथे के ऊपर से पश्चिम ओर ढुले, तब एक गाड़ी ठीक उसके सामने आ खड़ी हुई। विनय ने सिर उठा कर देखा, सुधीर और सुशीला दोनों गाड़ी से उतर कर उसके पास आ रहे हैं। विनय झट उठ खड़ा हुआ। सुशीला ने पास आकर स्नेह भरे स्वर में कहा—विनय बाबू, चलिए।

विनय को होश हो आया। उसने देखा, इस दृश्य को रास्ते के लोग कौतुक की दृष्टि से देख रहे हैं। वह झट पट गाड़ी में आ बैठा। रास्ते में कोई कुछ न बोला।

डाक-बँगले पर पहुँच कर विनय ने देखा, वहाँ एक झगड़ा चल रहा है। ललिता ज़िद किये बैठी है, वह आज किसी तरह मैजिस्ट्रेट के निमन्त्रण में योग न देगी। शिव-सुन्दरी बड़े संकट में पड़ गई। हरि बाबू ललिता सी नट-खट लड़की के इस अयुक्त विद्रोह से अधीर हो उठा है। क्रोध से काँप रहा है और बार बार कह रहा है, "आज कल के लड़के और लड़कियों के दिमाग़ में एक ऐसा विकार घुस गया है कि वे गुरुजन के उपदेश को मानना नहीं चाहते। जो उनके जी में आता है, कर गुज़रते हैं। यह केवल ऐसे वैसे लोगों के संसर्ग में रह कर रद्दी बातों की आलोचना करने ही का फल है।

विनय को आते देख ललिता ने कहा—विनय बाबू, मुझे माफ़ कीजिए, मैं आपके निकट भारी अपराधी हूँ। आपने तब जो कहा था, वह मैं कुछ न समझ सकी थी। हम लोग बाहर की अवस्था कुछ नहीं जानतीं, इसीसे बहुत बातों में भूल कर जाती हैं। हरि बाबू कहते हैं—भारतवर्ष में मैजिस्ट्रेट का यह शासन विधाता का विधान है। अगर यह सच है तो इस शासन को मनसा वाचा कर्म्मणा अभिशाप देने की इच्छा उत्पन्न कर देना भी उसी विधाता का विधान है!

हरि बाबू क्रुद्ध होकर कहने लगे—ललिता तुम—

हरि बाबू की ओर से मुँह फेर कर ललिता बोली—चुप रहिए, मैं आप से कुछ नहीं कहती। विनय बाबू! आप किसी का अनुरोध न मानें। आज किसी तरह अभिनय नहीं हो सकता।

शिवसुन्दरी ने झट पट ललिता की बात को दबा कर कहा—ललिता, तू तो बड़ी भली लड़की दीख पड़ती है। विनय बाबू को आज नहाने-खाने न देगी? अब दो बजेंगे, इसकी कुछ ख़बर नहीं। देख तो इनका मुँह सूख कर कैसा हो गया है।

विनय—यहाँ हम लोग उसी मैजिस्ट्रेट के अतिथि हैं, मैं यहाँ स्नान-भोजन नहीं कर सकूँगा।

शिवसुन्दरी ने बड़ी नम्रता के साथ विनय को समझाने की चेष्टा की। लड़कियाँ सभी चुप हैं, यह देख उसने खिसिया कर कहा—तुम सबों को न मालूम आज क्या हो गया है। सुशीला! तुम विनय बाबू से समझा कर क्यों नहीं कहतीं—हम ज़बान दे चुकी हैं, सब लोग बुलाये जा चुके हैं, आज का दिन किसी तरह कष्ट सह कर भी काटना होगा, नहीं तो वे सब मन में क्या कहेंगे? उन लोगों के सामने हम मुँह कैसे दिखा सकेंगी।

सुशीला मौन साध कर सिर नीचा किये बैठी रही।

विनय पास ही नदी के किनारे अगिनबोट पर चढ़ने के

लिए चला गया। यह अगिनबोट आज दो एक घण्टे के भीतर ही यात्रियों को लेकर कलकत्ते को रवाना हो जायगी। कल आठ नौ बजे दिन को वहाँ पहुँच जायगी।

हरि बाबू उत्तेजित होकर विनय और गौर की निन्दा करने लगा। सुशीला ने झट कुरसी से उठ पास वाले घर में जाकर ज़ोर से किवाड़ लगा लिया। कुछ ही देर बाद ललिता किवाड़ ठेल कर घर में आई। उसने देखा कि सुशीला दोनों हाथों से मुँह छिपाये बिछौने पर पड़ी है।

ललिता भीतर से किवाड़ बन्द करके धीरे धीरे सुशीला के पास बैठ गई और उस के सिर के बालों को सुलझाने लगी। बहुत देर के बाद जब सुशीला का मन कुछ ठिकाने आया तब मुँह पर से हठात् दोनों हाथों को हटा कर और उसके मुँह के पास मुँह ले जा कर ललिता उसके कान में कहने लगी—बहन, चलो हम तुम यहाँ से कलकत्ते को लौट जायँ। आज मैजिस्ट्रेट के यहाँ न जा सकेंगी।

सुशीला ने बड़ी देर तक इस बात का कोई जवाब न दिया। ललिता जब इसी एक बात को बार बार कहने लगी, तब वह बिछौने पर बैठी और बोली—यह कैसे होगा? मुझे तो यहाँ आने की बिलकुल इच्छा ही न थी, बाबूजी ने जब मुझे यहाँ भेज दिया है तब जिस काम के लिए आई हूँ उसे बिना किये कैसे जाऊँगी?

ललिता—बाबूजी यह सब बात जानते नहीं हैं। यदि

उन्हें कुल बातें मालूम होतीं तो वे कभी हम लोगों को यहाँ रहने के लिए न कहते।

सुशीला—यह कैसे मालूम हो?

ललिता—बहन, तुम क्या अभिनय कर सकोगी? पोशाक पहिनकर स्टेज पर खड़ी हो कविता पढ़ना होगा। मेरे मुँह से तो एक शब्द भी न निकलेगा।

सुशीला—बहन, यह मैं जानती हूँ! किन्तु फिर करूँ क्या? नरक-यन्त्रणा भी सहनी पड़ेगी। अब कोई उपाय नहीं है। आज का दिन ज़िन्दगी भर में कभी भूलने का नहीं।

सुशीला की इन बातों से ललिता क्रोध करके वहाँ से चली गई। उसने माँ के पास आकर कहा—माँ, तुम न जाओगी?

शिवसुन्दरी—क्या तू पागल हो गई है? रात के नौ बजे जाना होगा।

ललिता—मैं कलकत्ते जाने की बात कहती हूँ।

शिवसुन्दरी—एक बार इस पगली की बात तो सुनो।

ललिता ने कहा—सुधीर भैया! क्या तुम भी यहीं रहोगे?

गौरमोहन के दण्ड की बात ने सुधीर के मन को व्याकुल कर दिया था, किन्तु बड़े बड़े साहबों के सामने अपनी विद्या को प्रकाश करने का हौसला उसके हृदय में यहाँ तक बढ़ा था कि उसे वह छोड़ नहीं सकता था। उसने धीमे स्वर में जो कुछ कहा उसका आशय यही था कि मुझे सङ्कोच ज़रूर है, पर रह जाऊँगा।

शिवसुन्दरी ने कहा—सवाल-जवाब में ही समय हो गया। अब देरी करने से काम न चलेगा। अब साढ़े पाँच बजे तक तो कोई बिछौने से न उठ सकेगा। विश्राम करना ज़रूरी है। अभी विश्राम न करने से रात में थक जाओगी, मुँह सूख जायगा। नींद का वेग सहसा रोक न सकोगी।

यह कह कर उसने सबको शयनगृह में ले जाकर बिछौने पर लिटा दिया। कुछ ही देर में सभी सो गये, सिर्फ़ सुशीला को नींद न आई। ललिता दूसरे कमरे में अपनी शय्या पर जा बैठी।

अगिनबोट रह रह कर सीटी देने लगी।

स्टीमर जब रवाना होने पर था, ख़लासी सीढ़ी ऊपर खींच लेने के लिए तैयार हो गये थे, तब जहाज़ के डेक पर से विनय ने देखा कि एक भले घर की औरत जहाज़ की ओर दौड़ी आ रही है। उसके कपड़े-लत्ते और आकार देख कर उसे जान पड़ा, मानों ललिता हो किन्तु वह इस पर पूरा विश्वास न कर सका। जब वह पास पहुँच गई तब सन्देह न रहा। एक बार उसके मन में यह आया कि ललिता मुझे लौटाने के लिए आई है किन्तु वह तो मैजिस्ट्रेट के निमन्त्रण में योग देने के विरुद्ध हो गई थी। ललिता झट स्टीमर पर चढ़ गई, खलासी ने सीढ़ी खींच ली। विनय थरथराते हुए पैरों से ऊपर के डेक से नीचे उतर ललिता के सामने आकर खड़ा हुआ। ललिता ने कहा—मुझे ऊपर ले चलिए।

विनय ने विस्मित होकर कहा—जहाज़ खुल रहा है।

"सो मैं जानती हूँ।" यह कह कर ललिता विनय की अपेक्षा किये बिना ही सामने की सीढ़ी पर लात रखती हुई ऊपर के डेक पर चढ़ गई।

स्टीमर एक बार ख़ूब ज़ोर से सीटी देकर रवाना हो गया।

विनय ललिता को फ़र्स्ट क्लास की कोठरी में एक आराम-कुरसी पर बिठा कर उसके मुँह की ओर देखने लगा।

ललिता ने कहा—मैं कलकत्ता जाऊँगी—मैं किसी तरह यहाँ नहीं रह सकी।

विनय ने पूछा—और वे लोग?

ललिता—अभी तक मेरे जाने की बात किसीने नहीं जानी है। मैं चिट्ठी रख आई हूँ। पढ़ने पर हाल ज़ाहिर होगा।

ललिता के इस दुःसाहस पर विनय को बड़ा क्षोभ हुआ। उसने लजाते हुए कहा—किन्तु—

ललिता ने रोककर कहा—जहाज़ चल दिया, अब "किन्तु" "परन्तु" से क्या होगा! स्त्री होकर जन्म लिया है, इसलिए चुपचाप सब सहना ही होगा, यह मैं नहीं जानती। हम लोगों के लिए भी न्याय-अन्याय, सम्भव-असम्भव है। आज के निमन्त्रण में जाकर अभिनय करने की अपेक्षा आत्महत्या करना मेरे लिए सहज है।

विनय ने समझा, जो होने को था सो हो गया। अब

इस काम को भला बुरा कह कर मन को कष्ट देने से कोई फल नहीं।

कुछ देर चुप रह कर ललिता ने कहा—देखिए, आपके मित्र गौरमोहन बाबू के प्रति मैंने मन ही मन बड़ा अविचार किया था। नहीं जानती, पहले उन्हें देखकर, उनकी बातें सुन कर मेरा मन क्यों उनके विरुद्ध हो गया था। वे बहुत ज़ोर देकर बातें करते थे, और आप लोग बराबर उसमें "जी हाँ" करते जाते थे। यही देख कर मेरे मन में क्रोध हो आता था। मेरा स्वभाव ही ऐसा है। जब मैं देखती हूँ, कोई किसी बात में या किसी तरह के व्यवहार में ज़बर्दस्ती कर रहा है तब वह मुझे कदापि सह्य नहीं होता। मैं किसी का अति भाषण नहीं सह सकती। किन्तु गौर बाबू का ज़ोर केवल दूसरे के ही ऊपर नहीं, वे अपने ऊपर भी उस बल का प्रयोग करते हैं। यह बल सच्चा है। ऐसा आदमी मैंने देखा नहीं।

इस प्रकार ललिता आप ही आप बकने झकने लगी। वह जो केवल गौरमोहन के सम्बन्ध में ही अनुताप करके ये बातें कह रही थी, सो नहीं; असल बात यह है कि जोश में आकर उसने जो काम कर डाला है, उसका संकोच मन के भीतर से सिर ऊपर उठाने की चेष्टा कर रहा था। यह काम उसने अच्छा नहीं किया। इसका कुछ कुछ लक्षण उसके चेहरे से झलक रहा था। विनय के सामने जहाज़ पर इस तरह अकेले बैठना इतना बड़ा कठिन काम है,

यह पहले उसे कुछ भी न जान पड़ा था। किन्तु लजाने से बात बिगड़ जायगी, इसलिए उसने बातों की झड़ी बाँध दी। विनय उसके मुँह की ओर देख रहा था, पर कुछ बोल न सकता था। मैं क्या कहूँ, यह उसकी समझ में न आता था। एक तो गौरमोहन का दुःख और अपमान, दूसरे मैजिस्ट्रेट के यहाँ आकर अभिनय न करने की लज्जा, अतःपर ललिता के साथ उसका यह आकस्मिक संकट, सबों ने इकट्ठा होकर विनय को मूक कर दिया।

पहले ऐसा होने से ललिता के इस दुःसाहस पर विनय के मन में तिरस्कार का भाव उत्पन्न होता—आज किसी तरह वह भाव उदित न हुआ, यहाँ तक कि उसके मन में जो विस्मय का भाव उदय हुआ था उसके साथ साथ कुछ श्रद्धा भी मिली थी। इस में एक ख़ुशी की बात यह भी थी कि उसके समस्त दल में गौरमोहन के अपमान की साधारण प्रतीकार-चेष्टा केवल विनय और ललिता ने ही की है। इस के लिए विनय को तो कुछ विशेष दुःख न भोगना होगा। किन्तु ललिता को अपने कर्मफल से बहुत दिनों तक विशेष कष्ट भोगना पड़ेगा। इस ललिता को आज तक विनय बराबर गौरमोहन के विरुद्ध ही जानता था। वह जितना ही सोचने लगा उतना ही ललिता का यह प्रचण्ड साहस और अन्याय के प्रति उसकी घृणा देख उस पर विनय की भक्ति उत्पन्न होने लगी। क्या कहकर या क्या करके मैं अपनी इस भक्ति को प्रकट करूँ,

यह उसकी समझ में न आया। विनय ने बार बार सोच कर निश्चय किया की ललिता मुझे परमुखापेक्षी और साहसहीन कहकर जो घृणा किया करती थी, वह घृणा यथार्थ है। गौर को कष्ट न हो इस भय से, या गौर पीछे उसें दुर्बल न समझे इस आशङ्का से विनय अनेक समय अपने स्वभाव के अनुसार चल नहीं सकता था। कितनी ही बार सूक्ष्म-युक्ति-जाल बिछाकर गौरमोहन के मत को अपना मत कह कर उसने अपने को भुलाने की चेष्टा की है। आज मन ही मन अपनी इस दुर्बलता को स्वीकार करके उसने ललिता को स्वाधीन बुद्धिबल के गुण से अपनी अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ माना। उसने पहले कई दफ़े मन ही मन जो ललिता की निन्दा की है उसे याद करके उसको बड़ी लज्जा हुई; यहाँ तक कि ललिता से उसने क्षमा माँगने की इच्छा की। किन्तु कैसे क्षमा माँगूँ, इसका कोई उपाय उसे न सूझा। ललिता की ओजस्विनी स्त्री-मूर्ति अपने आन्तरिक तेज-बल से विनय की आँखों में आज ऐसी उग्र रूप से दिखाई दी कि स्त्री के इस अपूर्व परिचय से उसने अपने मनुष्य जीवन को सार्थक समझा।

[३०]

विनय ललिता को साथ लेकर परेश बाबू के घर आया। ललिता के सम्बन्ध में विनय के मन का भाव कैसा था

यह अगिन-बोट पर चढ़ने के पूर्व समय तक वह ठीक ठीक नहीं जानता था। उसका मन ललिता के समीप विरोध से ही भरा था। किस तरह इस दुर्वश स्त्री के साथ मेल हो सकता है? कुछ दिन से प्राय: यही उसके मन की प्रधान चिन्ता थी। विनय के जीवन-काल में स्त्री-माधुर्य की कोमल प्रभा लेकर सुशीला ही प्रथम सायंकालिक तारे की भाँति उदित हुई थी। इस आविर्भाव के अनुपम आनन्द ने ही विनय की प्रकृति को पूर्णता प्रदान की है, विनय यही अपने मन में समभता था। किन्तु इस बीच में और भी जो तारा उग आया है और प्रकाश के उत्सव की भूमिका बाँध कर पहला तारा आगे की ओर धीरे धीरे खसकता जा रहा है, विनय यह स्पष्ट रूप से न समझ सका था।

ललिता जिस दिन स्टीमर पर चढ़कर कलकत्ते को चली थी, उस दिन विनय ने समझा कि ललिता और हम एक पक्ष का अवलम्बन करके मानों सारे संसार के विरुद्ध खड़े हुए हैं। इस घटना से ललिता और सबों को छोड़ कर उसी के पास आ खड़ी हुई है, यह बात विनय किसी तरह भूल न सका। जिस किसी कारण से हो, जिस किसी उपलक्ष्य से हो, ललिता के लिए विनय अब बहुतों के बीच एक हो कर पहले जैसा न रहा। अब वही उसके लिए एकमात्र आधार हो गया। उस के सभी आत्मीय स्वजन दूर हो पड़े, पास में वही एक रह गया। इस सामीप्य पुलकावली से भरा

हुआ हृत्स्पन्दन विद्युत्-गर्भ मेघ की भाँति उसके हृदय के भीतर घुमड़ने लगा। फ़र्स्ट क्लास के कैबिन पर ललिता जब सो गई तब विनय उसे छोड़ अपनी जगह पर सोने को नहीं जा सका। उस कैबिन के बाहर उसने डेक पर जूते खोलकर रख दिये और चुपचाप टहलने लगा। स्टीमर-पर ललिता के ऊपर कोई उत्पात होने की संभावना न थी, किन्तु विनय अपने अचानक पाये हुए अधिकार का पूर्णतया अनुभव करने की लालसा से कुछ प्रयोजन न रहने पर भी निश्चिन्त न रह सका।

रात गहरे अन्धकार में डूबी है। निर्मल आकाश तारों से ढका है, नदी के तीरवर्ती वृक्ष अँधेरी रात में मानों आकाश से बातें करती हुई घनी दीवार की तरह खड़े हैं; नीचे प्रशस्त नदी की प्रबल धारा गम्भीर गति से प्रवाहित हो रही है, इस सन्नाटे के समय में ललिता नींद में सोई है। और कुछ नहीं, इस सुन्दर विश्वास-पूर्ण निद्रा को ही ललिता ने आज, विनय के हाथ में समर्पण कर दिया है। विनय ने महामूल्य रत्न की भाँति इस निद्रा की रक्षा करने का भार लिया है। माँ-बाप, भाई-बहन, यहाँ कोई उसके नहीं हैं। एक अपरिचित शय्या के ऊपर ललिता अपनी कोमल कमनीय देह को रखकर निश्चिन्त पड़ी सो रही है। विनय उसके निद्रित शरीर-रूपी धन के रक्षार्थ पहरा दे रहा है। विनय का कृतज्ञ हृदय मानों बार बार पुकार कर कह रहा है कि ललिता, तुम बेखटके सोओ, मैं तुम्हारी रखवाली के लिए जागता हूँ।

इस अँधेरे पाख की रात में ललिता की दुःसाहसिकता के साथ साथ और एक बात विनय के हृदय में चोट पहुँचा रही थी। हा! मैं आज की रात सुख से बैठा हूँ, और गौरमोहन जेलखाने में है। विनय आज तक गौरमोहन के सभी सुख-दुःखों में भाग लेता आया है, इस बार उसका वह नियम भङ्ग हो गया। वह कारागार में गौर का साथ न दे सका, यही दुःख उसको बारंबार आघात दे रहा है। विनय यह जानता था कि गौरमोहन के सदृश वीर पुरुष के लिए जेल की सज़ा कुछ नहीं है, किन्तु शुरू से आख़ीर तक इस मामले में विनय के साथ गौरमोहन का कोई सम्बन्ध न था। गौरमोहन के जीवन-काल की यह प्रधान घटना विनय के साथ कोई सम्पर्क न रखती थी। दोनों मित्रों के जीवन की मिली धारा जो यहाँ आकर विलग हो गई है वह कभी मिल जाने पर भी क्या इस विच्छेद की जगह को पूरा कर सकेगी? मित्रता की सम्पूर्णता क्या इस बार भङ्ग नहीं हुई? आज एक ही रात में विनय अपनी एक ओर शून्यता और दूसरी ओर पूर्णता का एक साथ अनुभव कर के जीवन के सृजन-प्रलय के सन्धि-काल में इन सब बातों को मन में सोचता हुआ चुप चाप अन्धकार की ओर देखता रहा।

गाड़ी परेश बाबू के फाटक के पास आ खड़ी हुई। गाड़ी से उतरते समय ललिता के पैर काँपने लगे और घर के भीतर प्रवेश करते समय उसने अपने को सँभाल कर हृदय को

मज़बूत कर लिया। यह दशा विनय भली भाँति समझ गया। ललिता ने झोंक में आ कर यह काम कर डाला है, माँ की बात न मानकर चुप चाप अकेली वहाँ से विदा हो कलकत्ते लौट आई है, यह कितना बड़ा अपराध हुआ, इस का अन्दाज़ वह खुद न कर सकती थी। वह जानती थी कि परेश बाबू मुझ से ऐसी कोई बात न कहेंगे जो अपमान-सूचक समझी जा सके किन्तु इस के लिए उनका चुप हो रहना ही वह सब से बढ़कर भयङ्कर समझती थी।

ललिता के इस संकोच का भाव देख कर विनय की समझ में न आया कि अब क्या करना चाहिए। ललिता के साथ अब रहने से शायद उसका संकोच बढ़ जाय इस ख़याल से उसने ललिता से पूछा—तो अब मैं जाता हूँ।

ललिता झट बोल उठी—नहीं नहीं, चलिए, बाबू जी के पास चलिए।

ललिता के इस व्यग्रता-भरे अनुरोध से विनय मन ही मन आनन्दित हुआ। ललिता को उसके घर तक पहुँचा कर भी विनय का कर्तव्य अभी तक ख़तम नहीं हुआ है—इस आकस्मिक घटना में ललिता के साथ जो उसके जीवन की एक विशेष गाँठ बँध गई है—इसमें विनय ललिता के पास मानों एक विशेष निःशङ्क भाव से खड़ा हुआ। उसके प्रति ललिता की यह निर्भर कल्पना मानों उसके सारे शरीर में बिजली की तरह दौड़ गई। उसके मन में आया मानों ललिता मेरा दहना

हाथ ज़ोर से पकड़े हुए है। ललिता के इस सम्बन्ध से उसका हृदय दया से भर गया। उसने मन में सोचा, परेश बाबू ललिता के इस असामाजिक हठ पर अवश्य क्रोध करेंगे और उसे धिक्कारेंगे, तब मैं यथासंभव उसके सब अपराध और उत्तरदायित्व अपने ऊपर लूँगा। धिक्कार का अंश निःसंकोच होकर ग्रहण करूँगा, कवच का स्वरूप होकर ललिता को सब आघातों से बचाने की चेष्टा करूँगा।

किन्तु ललिता के मन का भाव विनय ठीक ठीक नहीं समझ सकता है। वह केवल अपने को अपमान से बचाने के ही लिए विनय को छोड़ना नहीं चाहती, यह बात नहीं है। सच तो यह है कि वह किसी बात को छिपा नहीं सकती। उसने जो कुछ किया है उसका वर्णन परेश बाबू के निकट पूरा पूरा करेगी और उस पर विचार कर वे जो कहेंगे वह ललिता क़बूल करेगी, यही उसके मन का भाव था।

आज सबेरे से ही ललिता मन ही मन विनय के ऊपर खीझ रही है। क्रोध का कोई विशेष कारण नहीं, यह वह जानती है, तो भी क्रोध घटता नहीं, वरन् बढ़ता ही जाता है।

ललिता अग्नि-बोट पर जब तक थी तब तक उसके मन का भाव कुछ और ही था। बचपन से वह कभी क्रोध करके कभी ज़िद करके एक न एक नया काम करती ही आई है किन्तु इस दफ़े की घटना बहुत भारी है। उसके इस अयुक्त व्यवहार में विनय भी उसके साथ सम्पृक्त हो पड़ने से एक

ओर लज्जा और दूसरी ओर एक गूढ़ हर्ष का अनुभव कर रहा था। यह हर्ष मानों निषेध के संघात से अधिक आलोड़ित हो रहा था। एक बाहरी आदमी को उस (ललिता) ने आज इस प्रकार गह लिया है, वह उसके इतने पास आ बैठा है, जो उन दोनों के बीच अपने समाज का कोई भेद नहीं रहा। इस में भेद रहने के अनेक कारण थे—किन्तु विनय की स्वाभाविक शिष्टता ने ऐसे संयम के साथ एक मर्यादा की रचना कर रक्खी थी कि इस आशङ्का-जनक अवस्था में विनय की कोमल सुशीलता का परिचय ललिता को विशेष आनन्द दे रहा था। जो विनय उसके घर सबके साथ सदा खेल-कौतुक करता, जो सबके साथ बेधड़क बात चीत करता था, घर के नौकरों के साथ भी जिसकी पूरी सहानुभूति थी, यह वह विनय नहीं, मानों यह दूसरा ही विनय था। सावधानता की दुहाई देकर जहाँ वह अनायास ही ललिता के साथ सामीप्य सुख ले सकता था वहाँ वह ऐसे दूरत्व की रक्षा करके चला था जिससे ललिता अपने हृदय में उसे और भी निकट अनुभव कर रही थी। रात को स्टीमर के कैबिन में अनेक प्रकार की चिन्ताओं से उसे अच्छी नींद न आती थी, करवटें बदलते बदलते एक समय उसे ऐसा जान पड़ा जैसे अब भोर होने में विलम्ब नहीं है। धीरे धीरे कैबिन का द्वार खोल कर उसने बाहर की ओर ध्यान करके देखा, रात के पिछले पहर का ठंडक-भरा अन्धकार तब भी नदी के ऊपर खुले आकाश और तटस्थ जंगल को जकड़ हुए

था। इसी समय ठंडी हवा ने चल कर नदी के जल में एक मधुर कलकल शब्द उत्पन्न कर दिया, स्टीमर के निचले खण्ड में एञ्जिन के खलासियों के काम आरम्भ करने की कुछ आहट पाई जा रही थी। ललिता ने कोठरी से बाहर आ कर देखा, विनय दर्वाज़े के पास ही एक गरम कपड़ा ओढ़े आराम-कुरसी पर लेटा हुआ सो रहा है। यह देखते ही ललिता का हृदय धड़क उठा। उसने सोचा, सारी रात विनय ने यहीं बैठ कर पहरा दिया है! समीप रह कर भी इतनी दूर! तब ललिता डेक से काँपते पैरों कोठरी में आई। दर्वाज़े के पास खड़ी होकर वह उस हेमन्त की रात्रि के पिछले पहर, उस अन्धकार से ढँके अपरिचित नदी के कतिपय दृश्यों के भीतर, एकाकी निद्रित विनय की ओर देखती रही। एक अनिर्वचनीय धैर्य और माधुर्य से मानों उसका हृदय परिपूर्ण हो उठा। देखते ही देखते ललिता की आँखों में क्यों आँसू भर आये, यह वह न समझ सकी। उसने अपने पिता से जिस देवता की उपासना करना सीखा है, मानों उस देवता ने दहने हाथ से आज उसका स्पर्श किया। इस नदी के ऊपर, इस तरु-पल्लवों से घिरे शान्त शून्यतट में, रात के अन्धकार के साथ जब नई प्रभा का प्रच्छन्न भाव से सम्मिलन हो रहा था, तब उस पवित्र आश्लेषण के समय भरी हुई नक्षत्र-सभा में एक दिव्य संगीत अनाहत महावीणा में दुःसह आनन्द-वेदना की तरह प्रतिध्वनित हुआ।

इसी समय गाढ़ी नींद में सोये हुए विनय का हाथ ज़रा हिल उठा, यह देख ललिता झट कोठरी का दर्वाज़ा बन्द करके बिछौने पर लेट गई । उसके हाथ पैर ठंडे हो गये । वह बड़ी देर तक हृदय के चाञ्चल्य भाव को नहीं रोक सकी । उसके हृदय में भाँति भाँति की तरङ्गें लहराने लगीं ।

अन्धकार दूर हो गया । आकाश में चारों ओर सफ़ेदी छागई । स्टीमर चलने लगा । ललिता मुँह-हाथ धो और कपड़े बदल बाहर आ रेलिङ्ग पकड़ कर खड़ी हुई । विनय भी जहाज़ रवाना होने की सीटी सुनकर पहले ही जाग उठा था और पूरब किनारे प्रभात का प्रथम अभ्युदय देखने की अपेक्षा कर रहा था । ललिता को बाहर आते देख वह संकुचित हो वहाँ से हट जाने की चेष्टा करने लगा, यह देख ललिता ने कहा—विनय बाबू, आप कहाँ जाते हैं ? मालूम होता है, रात में आपको अच्छी नींद नहीं आई ?

विनय ने कहा—नहीं, आई तो है ।

इसके बाद उन दोनों में और कोई बात न हुई । इतने में शिशिरसिक्त काशवन के उस पार सूर्योदय होने का लक्षण दिखाई दिया । प्रभातकालिक स्वर्णमयी प्रभा की अपूर्व शोभा पूर्व आकाश में छा गई । इन दोनों ने अपने जीवन में ऐसा रमणीय प्रभात कभी नहीं देखा था । प्रातःकाल के प्रकाश ने इन दोनों के चित्त को इस प्रकार कभी मोहित न किया था । आकाश शून्य नहीं है, वह आनन्द और विस्मय से भरी

निर्निमेष दृष्टि से सृष्टि की ओर देख रहा है, यह इन्होंने आज ही पहले पहल जाना। दोनों इस अनिर्वचनीय आनन्द में मुग्ध हो रहे। कोई कुछ न बोला।

स्टीमर कलकत्ते आ पहुँचा। विनय घाट पर एक किराये की गाड़ी करके ललिता को गाड़ी के भीतर बिठा आप कोचवान के पास जा बैठा। इस समय कलकत्ते की सड़क पर गाड़ी में जाती हुई ललिता के मन में क्यों उलटी हवा बहने लगी, यह कौन कहेगा। उस संकट के समय विनय अगिनबोट पर था, ललिता विनय के साथ इस प्रकार बद्ध हो पड़ी है, विनय अभिभावक की तरह उसे गाड़ी करके घर लिये जा रहा है, ये सभी बातें उसे दुःखद मालूम होने लगीं। दैवयोग से विनय ने उसके ऊपर एक तरह से पालक का अधिकार प्राप्त कर लिया है यह उसे असह्य हो उठा। क्यों ऐसा हुआ! रात का वह मधुर संगीत, दिन के कर्म्म-क्षेत्र के सामने पड़ कर, क्यों ऐसे कठोर सुर में बदल गया!

इसी से दर्वाज़े के पास आ कर विनय ने जब संकोच-वश पूछा—तो मैं अब जाता हूँ, तब ललिता का कोप और भी बढ़ गया। उसने समझा कि विनय बाबू सोच रहे हैं, मैं उनको साथ ले पिता के पास जाने में कुण्ठित हो रही हूँ। परन्तु इस सम्बन्ध में उसके मन में रंचक मात्र संकोच नहीं था, इस बात को वह बल-पूर्वक प्रमाणित करना चाहती थी और पिता के निकट सब बातें यथावत् वर्णन करने के लिए उसने

विनय को दर्वाज़े पर से ही अपराधी की भाँति बिदा कर देना नहीं चाहा।

[३१]

विनय और ललिता को देखते ही सतीश न मालूम कहाँ से दौड़ कर उनके पास आया और उन दोनों के बीच खड़ा हो दोनों के हाथ पकड़ कर बोला—कहो, बड़ी बहन कहाँ है? क्या वह नहीं आई?

विनय ने पाकेट में हाथ डाल कर और विस्मय-भरी दृष्टि से चारो ओर देख कर कहा—बड़ी बहन! ओफ्, थी तो साथ ही में, न मालूम कहाँ खो गई!

सतीश ने विनय को धक्का देकर कहा—नहीं, यह बात कभी नहीं है, कहो ललिता बहन, तुम कहो।

"बड़ी बहन कल आवेगी।" यह कह कर ललिता परेश बाबू के घर की ओर चली।

सतीश ने ललिता और विनय का हाथ पकड़ और अपनी ओर खींच कर कहा—हमारे घर में कौन आया है, देखो, चलो।

ललिता ने हाथ खींच कर कहा—तेरा कोई भी आवे, अभी दिक मत कर, अभी बाबूजी के पास जा रही हूँ।

सतीश—बाबूजी घूमने गये हैं, वे देर से आवेंगे।

यह सुन कर विनय और ललिता ने थोड़ी देर के लिए किञ्चित् शान्ति का अनुभव किया। ललिता ने पूछा—कौन आया है?

सतीश ने कहा—नहीं बताऊँगा! अच्छा, विनय बाबू, आप कहिए, कौन आया है! आप कभी नहीं बतला सकेंगे, कभी नहीं, कभी नहीं।

विनय ऊट-पटाँग नाम लेने लगा— कभी सिराजुद्दौला का, कभी राजा रामकृष्ण का और एक दफ़े नन्दकुमार का भी नाम लिया। ऐसे अतिथियों का आगमन एक दम असंभव है, सतीश ने इसका अकाट्य प्रमाण देकर ऊँचे स्वर से प्रतिवाद किया। विनय ने हार मान कर मीठे स्वर में कहा—हाँ यह तुम ठीक कहते हो, सिराजुद्दौला को इस घर में आने में अनेक प्रकार की बाधायें हैं इस बात को मैं ने अभी तक न सोचा था। जो हो, पहले तुम्हारी बहन जाकर उन्हें देख आवें, उसके बाद यदि मेरा काम हो तो पुकारने से मैं भी पहुँच जाऊँगा।

सतीश ने कहा—नहीं, आप दोनों साथ साथ चलें।

ललिता ने पूछा—किस कमरे में जाना होगा?

सतीश—तिमंज़िलेवाले में।

तिमंज़िले की छत के कोने पर जो एक छोटी सी कोठरी है, उसके दक्खिन ओर धूप और वर्षा के निवारणार्थ एक टीन का छोटा सा आवरण दे दिया गया है। सतीश के पीछे

पीछे इन दोनों ने जाकर देखा, एक छोटा सा आसन बिछा कर, उस छपरी के नीचे, एक अधेड़ स्त्री चश्मा लगाये रामायण पढ़ रही है। उसके चश्मे की एक ओर की कमानी टूटी थी, वह उसे डोरे से बाँध कर वही डोरा कान में लपेटे हुई थी। उसकी उम्र क़रीब पैंतालिस वर्ष की होगी। सिर के अग्रभाग के बाल कुछ उड़ हुए से जान पड़ते हैं और कोई कोई बाल सफ़ेद भी हो चले हैं। किन्तु गोरा चेहरा अब भी, पके फल की तरह, ज्यों का त्यों देख पड़ता है। दोनों भौंहों के बीच एक काला दाग़ है। न हाथ में चूड़ी है और न बदन में कोई गहना। विधवा सी दीखती है। पहले ललिता पर दृष्टि पड़ते ही उसने झट चश्मा खोल पुस्तक को एक ओर रख बड़ी उत्सुकता के साथ उसके मुँह की ओर देखा। इसी क्षण उसके पीछे विनय को देख वह झट उठ खड़ी हुई और घूँघुट बढ़ा कर भीतर जाना चाहा। सतीश झट दौड़ कर उससे लिपट गया और बोला, मौसी, तुम क्यों भागती हो? यह मेरी ललिता बहन है, और ये विनय बाबू हैं। बड़ी बहन कल आवेगी। विनय बाबू का यह संक्षिप्त परिचय ही यथेष्ट हुआ। इसके पहले ही विनय बाबू के सम्बन्ध में पूर्ण रूप से आलोचना हो गई है, इसमें सन्देह नहीं। संसार में सतीश के बोलने के जो कई एक विषय हैं, उन्हें समय पाकर सतीश बिना बोले नहीं रहता। एक बात भी उसकी छुटने नहीं पाती।

सतीश किसे मौसी कह रहा है, यह न जानने के कारण ललिता चुप चाप खड़ी रही। विनय ने इस अधेड़ स्त्री के पैर छू कर उसे प्रणाम किया। ललिता ने भी विनय का अनुसरण किया।

उस स्त्री ने झट घर के भीतर से एक चटाई लाकर बिछा दी और कहा—बैठो बाबू, बेटी तुम भी बैठो।

विनय और ललिता के बैठने पर वह भी अपने आसन पर बैठी और सतीश उसके बदन से सट कर बैठा। उसने सतीश को दहिने हाथ से भर कर कहा—मुझे आप नहीं जानते, मैं सतीश की मौसी हूँ। सतीश की माँ मेरी सगी बहन थी।

इस सामान्य परिचय के भीतर कोई ऐसी विशेष बात न थी किन्तु उस स्त्री के चेहरे और गले की आवाज़ में ऐसा एक विलक्षण भाव था, जिससे उसके जीवन का, गम्भीर शोक से भरा हुआ, पवित्र आभास प्रकाशित हो पड़ा। मैं सतीश की मौसी हूँ यह कह कर जब उसने सतीश को छाती से लगाया, तब उस स्त्री का जीवन-वृत्तान्त न जानने पर भी विनय का मन दया से पसीज गया। वह स्नेह-भरे स्वर से बोल उठा—आप अकेले सतीश की मौसी हो कर रहेंगी, तो कैसे होगा? अगर आप सतीश के बराबर मुझे न समझेंगी तो सतीश के साथ मेरा झगड़ा होगा। एक तो वह मुझे विनय बाबू कह कर पुकारता है, भाई नहीं कहता, तिस पर

भी अब वह मुझे आपसे मौसी का नाता न जोड़ने देगा, तो कैसे बनेगा।

किसी के मन को वश में कर लेना विनय के बाँये हाथ का खेल था। इस सुशील प्रियभाषी युवक ने बात की बात में उस स्त्री के हृदय में सतीश के साथ प्रेम का अंश ग्रहण किया।

सतीश की मौसी ने पूछा—बच्चा! तुम्हारी माँ कहाँ है?

विनय ने कहा—मुझे अपनी माँ को खोये बहुत दिन हो गये, किन्तु मेरे माँ नहीं है यह बात मैं मुँह से नहीं निकाल सकता।

यह कह कर आनन्दी की बात स्मरण करते ही इसकी आँखें आँसुओं से भर गईं।

बड़ी देर तक इन दोनों के बीच बातें होती रहीं। उस समय ऐसा नहीं जान पड़ा कि इनकी यह पहली मुलाक़ात है। सतीश इन दोनों की बातचीत में जब तब अप्रासङ्गिक बातें कह कर अपने लड़कपन का परिचय देने लगा। ललिता चुपचाप बैठ कर इन दोनों की बातें सुनती रही।

चेष्टा करने पर भी ललिता अपने मन की बात सहज ही व्यक्त करने वाली न थी। उस के प्रथम परिचय की रुकावट तोड़ने के लिए बहुत समय चाहिए। इसके सिवा आज उसकी तबीयत भी अच्छी न थी। विनय ने इतनी जल्दी एक अपरिचिता स्त्री के साथ इस प्रकार वार्तालाप का तार बाँध दिया, यह उसे अच्छा न लगा। ललिता के ऊपर जो

संकट आ पड़ा है, उसकी कुछ परवा न करके विनय इस प्रकार उद्वेगरहित होकर बातें कर रहा है, इससे वह विनय को निर्दय और निष्ठुर-हृदय कह कर मन ही मन कोसने लगी। किन्तु विनय गम्भीर भाव धारण कर उदासी के साथ चुपचाप बैठे रहनेही से ललिता के असन्तोष से नहीं बच सकता था। ऐसा होने से ललिता अवश्य ही क्रोध करके मन में कहती—मेरे काम का जमा-ख़र्च बाबूजी मुझी से लेंगे, तुमसे नहीं; तुम क्यों मरे जा रहे हो। विनय बाबू ऐसा भाव क्यों दिखला रहे हैं जैसे उन्हीं के ऊपर मेरे दायित्व का भार है। असल बात यह है कि कल रात को जिस आघात से संगीत का मधुर शब्द सुनाई दे रहा था, आज दिन में वही शब्द दुःख के सुर में बदल गया। उसके मन में कोई बात ठीक नहीं बैठती। वह जो बात मन में सोचती है, उसी में उसे आपत्ति सूझती है और क्रोध उत्पन्न होता है। यही कारण है कि आज ललिता पग पग पर विनय के साथ मनहीं मन झगड़ रही है। विनय के किसी व्यवहार से यह झगड़ा मिटने का नहीं। क्या करने से इस कलह का प्रतिकार होगा, यह ईश्वर जानें।

हा! हृदय ही से जिन स्त्रियों का व्यवहार चलता है उनके व्यवहार को युक्तिविरुद्ध कह कर दोष देने से संसार का काम कैसे चलेगा? यदि उचित रीति से व्यवहार किया जाय तो हृदय ऐसी स्वाभाविक और सुन्दर रीति से चलेगा कि युक्ति हार मान कर सिर नीचा कर लेगी। यदि उस व्यावहारिक

कार्य में कुछ भी विपर्य्यय हो तो बुद्धि का सामर्थ्य क्या जो उसका सुधार कर सके। तब राग-विराग, हँसना-रोना और दूसरी अनेक घटनाएँ हो सकती हैं, जिनका लेखा करना वृथा है।

बहुत देर हो गई, अब भी परेश बाबू नहीं आये। वहाँ से उठ जाने के लिए ललिता छटपटाने लगी। उसको किसी तरह रोक रखने ही के लिए विनय सतीश की मौसी के साथ जी लगा कर बातें कर रहा था। आखिर ललिता का क्रोध रोके न रुका, वह विनय की बात में सहसा बाधा देकर बोल उठी—आप इतनी देर क्यों कर रहे हैं? बाबूजी कब आवेंगे, इसका निश्चय नहीं। क्या आप गौर बाबू की माँ के पास एक बार न जायँगे?

विनय चौंक उठा। ललिता का क्रुद्ध स्वर विनय के लिए अपरिचित न था। वह ललिता के मुँह की ओर देख कर तुरन्त उठ खड़ा हुआ। जैसे गुण टूट जाने से धनुष सीधा हो जाता है वैसेही विनय भी सीधा खड़ा हो गया। वह किसके लिए विलम्ब कर रहा था? उसीके लिए। यहाँ उसका कोई विशेष प्रयोजन नहीं था, वह तो दरवाज़े पर से ही बिदा हो रहा था। ललिता ही तो उसे अनुरोध करके अपने साथ लाई थी, आखिर उसीके मुँह से ऐसा प्रश्न!

विनय इस प्रकार एकाएक आसन छोड़ उठ खड़ा हुआ कि ललिता अचम्भे के साथ उसकी ओर देखने लगी। उसने देखा, विनय के मुँह की स्वाभाविक प्रसन्नता एक दम लुप्त हो गई जैसे

फूँक मारने से चिराग़ बुझ जाता है। विनय का ऐसा म्लान मुख और उसके भाव का ऐसा परिवर्तन ललिता ने और कभी नहीं देखा था। विनय के मुँह की ओर देखते ही तीव्र अनुताप की ज्वालामय यन्त्रणा ने तुरन्त ललिता के सम्पूर्ण हृदय को आक्रान्त कर लिया। वह बार बार अपनी इस आतुरता पर पछताने लगी।

सतीश झट खड़ा हो गया और विनय का हाथ पकड़ सिर हिला कर विनती भरे स्वर में बोला—विनय बाबू बैठिए, अभी मत जाइए, भोजन करके जाइएगा। फिर मौसी की ओर देख कर उसने कहा—विनय बाबू को जलपान करने को कहो—ललिता बहन, विनय बाबू को क्यों जाने देती है?

विनय ने कहा—भाई सतीश, आज माफ़ करो; अगर मौसी चाहेंगी तो मैं और किसी दिन आकर प्रसाद पाऊँगा। आज देर होगई है।

विचारने से बात कुछ विशेष नहीं किन्तु विनय के कंठस्वर में ममता का भाव भरा था। उसकी करुणा और उसके मन के भाव को सतीश की मौसी समझ गई। उसने एक बार विनय के और एक बार ललिता के मुँह की ओर चकित होकर देखा।

ललिता तुरन्त वहाँ से उठी और कोई बहाना करके अपने घर चली गई। वह कई दिन इसी प्रकार अपनी करनी पर कुढ़ कर आपही आप रोती रही।

[३२]

विनय तब आनन्दी के घर की ओर चला। लज्जा और शोच के भार से उसका हृदय दबा जा रहा था। अब तक वह माँ के पास क्यों नहीं गया? सचमुच उसने यह बड़ी भूल की। वह यह समझ कर अटक रहा था कि मुझ से ललिता का कोई विशेष प्रयोजन है। सब प्रयोजनों का अतिक्रम करके वह जो कलकत्ते आकर आनन्दी के पास दौड़कर नहीं गया, इसलिए ईश्वर ने उसे यह उचित दण्ड दिया है। आखिर आज ललिता के मुँह से उसे ऐसा प्रश्न सुनना पड़ा—क्या गौर बाबू की माँ के पास एक बार न जायँगे? आज तक कभी ऐसा समय प्राप्त न हुआ था कि ललिता के मन में गौरमोहन की माता की बात विनय की अपेक्षा बड़ी हो उठे। ललिता उसे केवल गौर बाबू की माँ समझती है, किन्तु विनय के लिए वह संसार की सभी माताओं की एक प्रत्यक्ष मूर्ति है। वह उसके लिए जगन्माता है।

आनन्दी उस समय स्नान करके घर के बीच आसन बिछा कर बैठी थी। शायद वह मन ही मन परमेश्वर का नाम ले रही थी। विनय ने झट उसके पैरों पर मस्तक रख कर प्रणाम किया और कहा—माँ!

आनन्दी ने उसके सिर पर हाथ रख कर कहा—विनय!

अहा! माँ के ऐसा मीठा कण्ठस्वर और किस का होगा!

उस कोमल कण्ठस्वर से ही मानों विनय का सम्पूर्ण शरीर करुणा की वृष्टि से भीग गया! उसने बड़े कष्ट से आँखों के आँसू रोक कर दबी ज़बान से कहा—माँ, मुझे बहुत देर हो गई।

आनन्दी ने कहा—विनय, मैं सब बातें सुन चुकी हूँ।

विनय ने चकित होकर कहा—क्या आप सब सुन चुकी हैं?

गौरमोहन ने हाजत से ही एक पत्र लिख कर वकील के द्वारा उसके पास भेज दिया था। वह जेल जायगा, इसका अनुमान उसने पहले ही कर लिया था।

पत्र के अन्त में लिखा था—"क़ैदख़ाने में कोई तुम्हारे गोरा की कुछ भी हानि न कर सकेगा। किन्तु तुम मेरे लिए कुछ कष्ट मत करो, तुम्हारा कष्ट ही मेरे लिए कठिन दण्ड होगा। मैजिस्ट्रेट का सामर्थ्य नहीं जो वह और कोई दण्ड मुझे दे सके। माँ, तुम अपने ही लड़के की बात मत सोचो। और भी अनेक माताओं के पूत बेकसूर जेल काट रहे हैं। एक दफ़े मुझे उन लोगों के कष्ट के बड़े मैदान में खड़े होने की इच्छा हुई है। इस बार यदि मेरी यह इच्छा पूरी हुई तो तुम मेरे लिए शोच न करके हर्ष ही मानो।

"माँ! तुम्हें याद है कि नहीं, मैं नहीं जानता। पिछले दुर्भिक्ष के साल मैं सड़क के किनारे वाले घर की टेबल पर अपनी रुपयों की थैली रखकर पाँच मिनट के लिए दूसरे कमरे

में गया था । लौट कर देखा, थैली चोरी हो गई है । थैली में मेरे स्कालरशिप का ८५ रुपया जमा था । मैंने मन में यह संकल्प कर रक्खा था कि कुछ और रुपया जमा होने पर मैं तुम्हारे पैर धोने के लिए एक चाँदी का लोटा बनवा दूँगा । रुपया चोरी हो जाने पर जब मैं चोर के ऊपर क्रोध करके मारे शोच के मरा जा रहा था, तब ईश्वर ने सहसा मेरे मन में यह सुबुद्धि दे दी । मैंने मन में कहा—जिस व्यक्ति ने मेरा रुपया लिया है, उसी को वह रुपया आज दुर्भिक्ष के दिन मैंने दान कर दिया । इस भाव का उदय होते ही चोरी होने का सब दुःख मेरे मन से जाता रहा । आज मैं अपने मन को वैसा ही शान्त पाकर कहता हूँ कि मैं अपनी इच्छा से जेल जा रहा हूँ । मेरे मन में कोई कष्ट नहीं है । किसी के ऊपर मेरा क्रोध नहीं है, क़ैदख़ाने में मैं आतिथ्य ग्रहण करने जाता हूँ । वहाँ आहार-विहार का कुछ कष्ट होगा । कष्ट हो, इस से क्या । इस दफ़े घूमते समय मैंने अनेक लोगों के घर आतिथ्य ग्रहण किया है । उन सब स्थानों में मुझे अपने अभ्यास और आवश्यकता के अनुसार जैसा चाहिए आराम नहीं मिला । इच्छापूर्वक जो काम किया जाता है, उस में जो कष्ट होता है, वह कष्ट नहीं है । कारागार का कष्ट आज मैं अपनी इच्छा से स्वीकार करता हूँ । जितने दिन जेल में रहूँगा अपने मन से रहूँगा । एक दिन भी कोई मुझे बरजोरी यहाँ नहीं रख सकेगा । यह तुम निश्चय जानो ।

"इस विश्व-ब्रह्माण्ड के भीतर जब मैं घर में बैठ कर बिना परिश्रम किये आहार-विहार करता था, बाहर की किसी वस्तु से विशेष परिचय न रखता था, उस समय दुनियाँ के बहुतेरे मनुष्य दोष से या बिना दोष से ईश्वर के दिये हुए सांसारिक अधिकार से वञ्चित होकर जो बन्धन और अपमान भोग रहे थे, उनकी बातों को आज तक मैंने नहीं सोचा था। उस समय मैं उन लोगों के साथ कोई सम्बन्ध न रखता था। इस दफ़े मैं उन लोगों के दुःख का समान भाग लेकर उनका साथ देना चाहता हूँ। संसार के अधिकांश कृत्रिम अच्छे लोग जो अपने को सज्जन बना रहे हैं उनके दल में मिलकर मैं सम्मान की रक्षा करके चलना नहीं चाहता।

"माँ, इस संसार के साथ परिचय होने से मुझे बहुत शिक्षा मिली है। संसार में जिन्हों ने अपने ऊपर विचार का भार लिया है, वही विशेष कर कृपापात्र हैं। जो लोग अपने अपराध का दण्ड न पा कर दूसरे को दण्ड देते हैं, उन्हीं के पाप का फल जेल के कितने ही कैदी भोगते हैं। अपराध करते हैं और लोग, प्रायश्चित्त करते हैं यही निर्दोषी बेचारे*। जो लोग जेल के बाहर आराम से हैं, सम्मान से हैं, उन लोगों के पापों का नाश कब कैसे होगा, यह मैं नहीं जानता। मैं उस आराम और सम्मान को लात मार कर मनुष्य के कलङ्क का चिह्न हृदय में अङ्कित करके बाहर हूँगा। माँ, तुम मुझे आशीर्वाद दो,

* आन करै अपराध कोई और पाव फलभोग।—तुलसीदास।

तुम मेरे लिए आँसू मत बहाओ। भृगु के लात मारने का चिह्न श्रीकृष्णचन्द्र ने सदा के लिए अपने वक्षःस्थल में धारण किया है। संसार में उद्दण्डतावश जहाँ जो लोग जितना अन्याय कर रहे हैं, वे भगवान् के हृदय के उस चिह्न को उतना ही मज़बूत कर रहे हैं। वह चिह्न यदि उनके हृदय का भूषण है तो मुझे चिन्ता क्या है? या तुम्हीं को क्या दुःख है?"

यह पत्र पा कर आनन्दी ने महिम को गौरमोहन के पास भेजना चाहा था। महिमचन्द्र ने कहा—कचहरी का काम जारी है, साहब किसी तरह छुट्टी नहीं देंगे।—यह कह कर वह गौरमोहन की अज्ञता और उद्दण्डता पर गाली देने लगा, और बोला, उसके सम्बन्ध से किसी दिन हमारी भी नौकरी जाती रहेगी। आनन्दी ने कृष्णदयाल से इस सम्बन्ध में कुछ कहना अनावश्यक समझा। गौरमोहन के विषय में स्वामी के प्रति उसकी एक मर्मान्तिक ईर्ष्या थी। वह जानती थी, कृष्णदयाल गोरा को अपने हृदय में पुत्र का स्थान नहीं देते। यहाँ तक कि गोरा के सम्बन्ध में उनके हृदय में एक विरुद्ध भाव था। गौरमोहन आनन्दी के दाम्पत्य-सम्बन्ध को विन्ध्याचल की तरह दो हिस्सों में बाँट कर उसके मध्य भाग में खड़ा था। उसके एक तरफ़ बड़ी सावधानी के साथ शुद्ध आचार सहित कृष्णदयाल खड़े थे, और दूसरी ओर अपने म्लेच्छ गोरा को लिये अकेली आनन्दी खड़ी थी। संसार में यही दोनों व्यक्ति गोरा के जीवन का इतिहास जानते हैं। उनके बीच जाने-आने

का मार्ग मानों बन्द सा हो गया है। इन सब कारणों से संसार में गोरा के प्रति आनन्दी का स्नेह एक अपूर्व गुप्त धन सा था। वह इस परिवार में गोरा को सब ओर से सुरक्षित रखने की चेष्टा करती थी। उसके मन में इस बात का भय बराबर लगा रहता था कि पीछे कोई यह न कहे कि तुम्हारे गोरा से यह काम हुआ, तुम्हारे गोरा के चलते मुझे यह बात सुननी पड़ी, या तुम्हारे गोरा ने हमारी यह हानि कर दी। आनन्दी के मन में सदा यह चिन्ता लगी रहती थी। गोरा के समस्त उत्तरदायित्व को वह अपना ही समझती थी। फिर उसका गोरा भी साधारण स्वभाव का गोरा नहीं है। जहाँ वह रहता है वहाँ उसके कामों को छिपा रखना सहज बात नहीं। उसने अपनी गोद के दुलारे गोरा को इस विरुद्ध परिवार के बीच अब तक दिन-रात सँभाल कर इतना बड़ा किया है। गोरा के सम्बन्ध में उसने कई बार कितनी ही बातें सुनी हैं, जिन्हें चुपचाप सुन लिया है, कभी कुछ जवाब नहीं दिया। उसके कारण अनेक दुःख सहे हैं, जिन दुःखों का कुछ भी अंश दूसरे को सहने नहीं दिया। सब दुःख उसने अपने ही ऊपर लिया।

आनन्दी चुपचाप खिड़की के पास बैठी थी। देखा, कृष्ण-दयाल ने प्रातःस्नान करके कपार, बाहु और हृदय में गङ्गौट मिट्टी का लेप कर, स्तोत्र पाठ करते हुए घर के भीतर प्रवेश किया। आनन्दी उनके पास न जा सकी, क्योंकि कृष्णदयाल

बात बात में निषेध की धूम लगाये रहते थे। वे दूसरे को अपवित्र समझ किसी के साथ बात करने में भी पाप समझते थे। आखिर आनन्दी एक लम्बी साँस ले वहाँ से उठ कर महिम के घर गई। महिम घर में चटाई पर बैठ कर अखबार पढ़ रहा था और स्नान के पूर्व नौकर से तेल की मालिश करवा रहा था। आनन्दी ने महिम से कहा—तुम मेरे साथ एक आदमी कर दो, मैं जाकर गोरा को देख आती हूँ। वह जेल में जाने के लिए चित्त को स्थिर किये बैठा है। उसके जेल में जाने के पहले क्या मैं उसे एक बार देख न सकूँगी?

महिम का बाहरी व्यवहार जैसा हो, पर गौरमोहन के ऊपर उसका कुछ प्रेम अवश्य था। वह क्रोध में आकर बोलने लगा—वह अभागा भले ही जेल में जाय! इतने दिन तक जेल नहीं गया, यही आश्चर्य है। यह कह कर कुछ ही देर में उसने अपने साथी प्राणधन गोप को बुला कर उसके हाथ खर्चे के लिए कुछ रुपया दिया और उसी वक्त उसे रवाना कर आफ़िस में जा साहब से छुट्टी माँगी। अब अगर उसे छुट्टी मिल गई, और गृहिणी ने उसे जाने की सम्मति देदी, तो वह वहाँ ज़रूर जायगा।

आनन्दी भी इतना जानती थी कि महिम गोरा के लिए बिना कुछ किये न रहेगा। महिम को यथासंभव जाने की व्यवस्था करते देख वह अपने घर लौट आई। वह खूब जानती थी, गोरा जहाँ है उस अपरिचित स्थान में, इस संकट के समय

कोई उसका साथ देने वाला इस परिवार में नहीं है। वह जी मसोस कर चुप हो रही। लखमिनिया जब गला फाड़ फाड़ कर रोने लगी तब आनन्दी ने उसे डाँट कर वहाँ से दूर हटा दिया। सब विघ्न-बाधाओं को चुप चाप सह लेना ही उसके चिरकाल का अभ्यास था। सुख और दुःख दोनों को ही वह शान्त भाव से स्वीकार कर लेती थी। उसके हृदय का भाव केवल भगवान् ही जानते थे।

विनय आनन्दी को क्या कह कर समझावे, यह उसकी समझ में न आया। आनन्दी किसी के सान्त्वना-वाक्य की अपेक्षा न रखती थी। जिस दुःख का कोई प्रतिकार नहीं है, उस दुःख की बात पर जब कोई उसके साथ आलोचना करने आता था तब वह चुप हो रहती थी। उसने गौरमोहन की बात को आगे न बढ़ा कर विनय से कहा—विनय, तुमने अभी तक स्नान नहीं किया है, जाओ, शीघ्र स्नान कर आओ। बहुत बेर हो गई है।

विनय नहा कर आया और जब भोजन करने बैठा, तब चौक में उसके पास गौरमोहन की जगह ख़ाली देख कर आनन्दी के हृदय में बड़ा खेद हुआ। उसकी आँखों में आँसू भर आये। गोरा आज जेल का अन्न खाता होगा। वह अन्न क्या घर के ऐसा स्वादिष्ट होगा? वह उसे कैसे रुचता होगा? यह सोच कर आनन्दी शोक से व्याकुल हो वहाँ से कोई बहाना करके उठ गई।

[३३]

परेश बाबू घर आ कर ललिता को देखते ही समझ गये कि यह उद्दण्ड लड़की ज़रूर कोई अनोखी करतूत करके वहाँ से आई है। जिज्ञासा-भरी दृष्टि से उसके मुँह की ओर देखते ही वह बोल उठी—बाबू जी, मैं चली आई हूँ। किसी तरह वहाँ नहीं रह सकी।

परेश बाबू ने पूछा—क्यों चली आई? क्या हुआ?

ललिता ने कहा—गौर बाबू को मैजिस्ट्रेट ने क़ैद की सज़ा दी है।

गौर इसके बीच कहाँ से आ पड़ा, कैसे उसे जेल हुआ, यह परेश बाबू कुछ न समझ सके। ललिता से सब वृत्तान्त सुनकर कुछ देर वे क्षुब्ध हो रहे। तत्क्षणात् गौर की माँ की बात सोच कर उनका हृदय बहुत दुखी हुआ। वे मन में सोचने लगे। चोर को जो दण्ड देना चाहिए था, वही दण्ड गौरमोहन को भी देना मैजिस्ट्रेट के लिए सर्वथा धर्म-विरुद्ध कार्य हुआ है। मनुष्य के प्रति मनुष्य का अनिष्ट-साधन संसार की और सब हिंसाओं से कितना भयानक है, यह कहा नहीं जा सकता। उसके पीछे समाज की शक्ति और राजा की शक्ति ने एक साथ मिल कर उसे कैसा भयानक कर दिया है, यह दृश्य गौरमोहन के कारागार की बात सुन कर उनकी आँखों के सामने प्रत्यक्ष हो गया।

परेश बाबू को इस प्रकार चुप हो सोचते देख ललिता उत्साहित होकर बोल उठी—अच्छा, बाबू जी, आप ही कहिए क्या यह घोर अन्याय नहीं है ?

परेश बाबू ने अपने स्वाभाविक शान्त स्वर में कहा—गौर ने कब क्या किया है, यह हम ठीक नहीं जानते । हाँ, इतना कह सकते हैं कि गौर अपनी कर्तव्य-बुद्धि की प्रबलता के झोंके में आ कर सहसा अपने अधिकार की सीमा पार कर सकता है । किन्तु अँगरेज़ी भाषा में जिसको क्राइम (जुर्म) कहते हैं, वह गौर के लिए एक दम प्रकृति-विरुद्ध है । इसमें कुछ भी सन्देह नहीं । किन्तु हम लोग क्या करेंगे ? वह समयानुसार काम नहीं करता, आज कल का जो न्याय है, उस पर वह विचार नहीं करता । जिस ज़माने का ख़याल उसके दिमाग़ में घुसा है, अब वह ज़माना नहीं । इस समय जान बूझ कर अपराध करने का जो दण्ड है वही भूल से भी करने का दण्ड है । दोनों प्रकार के क़ैदी एक ही जेल में एक ही साथ ठूँसे जाते हैं । ऐसा क्यों होता है, इसका दोष एक ही आदमी के माथे मढ़ा नहीं जा सकता । कितने ही लोग इस दोष के भागी हैं । एकाएक इस प्रसङ्ग को रोक कर परेश बाबू पूछ बैठे—तुम किसके साथ आई हो ?

ललिता ने हृदय को दृढ़ करके कहा—विनय बाबू के साथ।

बाहर से वह चाहे जितनी प्रबलता प्रकट करती किन्तु उसके भीतर दुर्बलता थी । विनय बाबू के साथ आने की बात कहते

समय लाख चेष्टा करने पर भी उसका स्वर स्वाभाविक नहीं रहा। उसमें कुछ विकार आ ही गया। लज्जा से बचने के लिए खूब सावधान रहने पर भी न मालूम कहाँ से कुछ लज्जा आ ही गई। चेहरे पर लज्जा का भाव छा गया है, यह समझ कर उसे और भी लज्जा हुई।

परेश बाबू इस उद्धत-स्वभाव की लड़की पर अपनी और लड़कियों की अपेक्षा कुछ अधिक प्यार करते थे। इसके व्यवहार की और लोगों के द्वारा निन्दा होने पर भी उसके आचरण में जो सत्यनिष्ठता थी उसे वे विशेष श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे। वे जानते थे, ललिता में जो दोष है वही लोगों की नज़र में विशेष रूप से पड़ेगा, किन्तु इसमें जो गुण है वह चाहे जितना ही दुर्लभ क्यों न हो लोगों के निकट आदरणीय न होगा। परेश बाबू उसके दोष पर लक्ष्य न करके उसके गुण को ही यत्नपूर्वक आश्रय देते आये हैं। वे ललिता की दुरन्त प्रकृति को दबाने की चेष्टा करते हुए भी उसके भीतर का महत्व नष्ट करना नहीं चाहते थे। उनकी और दो बेटियों को सब लोग सुन्दरी कहते थे, उनका रङ्ग गोरा था। उनके मुख के सभी अवयव अच्छे थे। किन्तु ललिता का रङ्ग उन दोनों की अपेक्षा कुछ साँवला था। उसके चेहरे के सौन्दर्य में भी भेद था। शिवसुन्दरी इसी कारण ललिता के लिए योग्य वर की बात चला कर स्वामी के समीप सदा उद्वेग प्रकट करती थी। किन्तु परेश बाबू ललिता के चेहरे पर जो एक प्रकार की शोभा

देखते थे, वह न रङ्ग की शोभा थी और न अवयव की शोभा; वह अन्तःकरण की गम्भीर शोभा थी। उसमें केवल लालित्य ही नहीं था किन्तु स्वतन्त्रता का तेज और मानसिक शक्ति की दृढ़ता भी भरी थी। वह दृढ़ता सब के हृदय को मोह नहीं सकती थी। वह व्यक्ति विशेष को अपनी ओर खींचती थी किन्तु बहुतेरों को दूर फेंक देती थी। संसार में ललिता का स्वभाव लोगों को प्रिय न होगा, यह समझ परेश बाबू उसपर कुछ खेद करते हुए उसे अपने पास बिठाते—और उससे कोई ख़ुश नहीं रहता यह जान कर ही उसके दोषों पर ध्यान न दे उसे दया की पात्री समझते थे।

परेश बाबू ने जब सुना कि ललिता अकेली विनय के साथ हठात् चली आई तब वे तुरन्त समझ गये कि इसके लिए उसे बहुत दिनों तक दुःख सहने पड़ेंगे। उसने जो कुछ अपराध किया है, उसकी अपेक्षा भारी अपराध का दण्ड लोग उसके प्रति निर्धारित करेंगे। वे इस बात को मन ही मन चुप चाप सोच रहे थे, इसी समय ललिता बोल उठी—मैंने अपराध किया है। किन्तु इस बार मैं भली भाँति समझ गई हूँ कि मैजिस्ट्रेट के साथ हमारे देश के लोगों का ऐसा सम्बन्ध है कि उनके आतिथ्य में सम्मान का नाम नहीं, केवल अनुग्रह का है। यह सह कर भी वहाँ रहना क्या मेरे लिए उचित था?

परेश बाबू ने इस प्रश्न का कुछ उत्तर न दे सिर्फ़ मुसकुरा कर कहा—तू पगली है।

इस घटना के सम्बन्ध में मन ही मन चिन्ता करते हुए परेश बाबू जब शाम को बाहर टहल रहे थे तब विनय ने आकर उन्हें प्रणाम किया। परेश बाबू ने गौरमोहन के क़ैद-ख़ाने की सज़ा के सम्बन्ध में उसके साथ बड़ी देर तक बात-चीत की, किन्तु ललिता के साथ स्टीमर पर आने के प्रसङ्ग में कुछ न पूछा। अँधेरा होने पर कहा—चलो विनय, भीतर चलो।

विनय ने कहा—मैं अभी अपने घर जाऊँगा।

परेश बाबू ने उसे दूसरी बार ठहरने का अनुरोध न किया। विनय एक बार सचकित दृष्टि से दो-मंज़िले की ओर देख कर धीरे धीरे चला गया।

ऊपर से ललिता ने विनय को देख लिया था। जब परेश बाबू अकेले घर के भीतर पैठे, तब ललिता ने समझा कि कुछ देर में विनय भी घर में आवेगा। परन्तु विनय न आया। तब टेबल के ऊपर की कुछ किताबों को उलट पलट कर ललिता कोठे से चली गई। परेश बाबू ने फिर ललिता को पुकारा—उसके उदास मुँह की ओर स्नेह-भरी दृष्टि से देख कर कहा—बेटी! मुझे एक ब्रह्म-संगीत सुनाओ। यह कह कर उन्होंने बत्ती की रोशनी में काग़ज़ की आड़ कर दी।

[३४]

दूसरे दिन शिवसुन्दरी और उसके दल के सभी लोग

कलकत्ते आ पहुँचे। हरि बाबू ललिता के सम्बन्ध में अपने क्रोध को न रोक सका, इस कारण अपने घर न जा इन लोगों के साथ एकाएक परेश बाबू के पास आ गया। शिवसुन्दरी मारे क्रोध और ग्लानि के ललिता की ओर न देख और न उसके साथ कोई बात करके सीधी अपने कमरे में चली गई। लावण्य और लीला भी ललिता के ऊपर बहुत रुष्ट थीं। ललिता और विनय के चले आने से उनका अभिनय अङ्गहीन हो पड़ा था। बीच बीच में उन दोनों का पार्ट ख़ाली हो जाने से वे सब बड़ी लज्जा में पड़ गई थीं। सुशीला हरि बाबू की क्रोध-भरी उत्कट उत्तेजना में, शिवसुन्दरी के आँसू-भरे कटु वाक्यों में, तथा लावण्य और लीला के लज्जा-भरे निरुत्साह में कुछ भी योग न देकर एकदम चुप हो रही थी। अपने निर्दिष्ट काम को वह मैशीन की तरह करती गई। आज भी वह यन्त्र परिचालित पुतली की भाँति सब के पीछे घर में आई। सुधीर लज्जा और पश्चात्ताप से संकुचित होकर परेश बाबू के घर के फाटक से ही अपने घर को चला गया। लावण्य उसको घर आने के लिए बारबार अनुरोध करके कृत-कार्य्य न होने पर उससे बिगड़ बैठी और बोली—आज से मैं तुमसे कुछ न कहूँगी।

हरिश्चन्द्र परेश बाबू के घर में प्रवेश करते ही बोल उठा—एक बहुत बड़ा अन्याय होगया है।

पास वाले कमरे में ललिता थी, यह बात उसके कान में

पड़ते ही वह आकर अपने पिता की कुरसी के पीछे दोनों हाथ रख कर खड़ी हुई, और हरि बाबू के मुँह की ओर टकटकी बाँध कर देखने लगी।

परेश बाबू ने कहा—मैं ललिता के मुँह से सब बातें सुन चुका हूँ। जो बात हो गई, उसकी आलोचना करने से अब कोई फल नहीं।

शान्त-स्वभाव, क्षमाशील परेश बाबू को हरिश्चन्द्र अत्यन्त दुर्बल-हृदय समझता था। इससे उसने कुछ अनादर के साथ कहा—घटना तो हो ही जाती है, परन्तु कलङ्क सहसा नहीं मिटता, इसलिए जो बात हो जाती है उसकी आलोचना की भी आवश्यकता है। यदि आप से ललिता इस प्रकार बराबर सहारा न पाती तो उसने जो काम आज किया है, वैसा वह कभी न कर सकती। आपही ने उसे इतना उद्दण्ड बना डाला है। आपने उसे उद्दण्ड बनाकर उसका कहाँ तक अनिष्ट किया है, यह आज का सब हाल सुनने से आप बख़ूबी समझ जायँगे।

परेश बाबू ने पीछे की ओर ललिता को खड़ी देख उसका हाथ पकड़ सामने खींच कर हरि बाबू से ज़रा हँस कर कहा—हरि बाबू, जब समय आवेगा तब आप जान सकेंगे कि सन्तान को सुशिक्षित करने के लिए स्नेह की भी आवश्यकता होती है।

ललिता ने झुककर पिता के कान के पास मुँह ले जाकर कहा—बाबूजी, आपका पानी ठण्डा हुआ जा रहा है। आप नहाने जायँ।

परेश बाबू ने हरिश्चन्द्र की ओर देख कर कोमल स्वर में कहा—हाँ, जाता हूँ, अभी उतनी बेर नहीं हुई है।

ललिता ने स्नेह भरे स्वर में कहा—नहीं, आप स्नान कर आवें, तब तक हम लोग हरि बाबू के पास बैठती हैं।

परेश बाबू जब चले गये तब ललिता एक कुरसी पर जमकर बैठी और हरि बाबू के मुँह की ओर देख कर बोली—आप समझते ही हैं, सभी को अपनी बातें कहने का अधिकार है।

ललिता को सुशीला जानती थी। और दिन ललिता की ऐसी मूर्ति देखने पर वह मनही मन उद्विग्न हो उठती, किन्तु आज वह खिड़की के पास कुरसी पर बैठकर, एक किताब हाथ में ले, सिर झुकाये चुप चाप उसके पन्ने उलटने लगी। अपने को रोक रखना सुशीला जानती थी। वह स्वभाव की बड़ी गम्भीर थी। इन कई दिनों के अनेक आघातों से उसके मन में जितनी ही अधिक वेदना होती थी उतनी ही वह अपने आवेग को रोक कर मन मारे बैठी रहती थी। आज उसे अपना मौन असह्य हो गया है। इसलिए ललिता जब हरिश्चन्द्र के आगे अपना मन्तव्य प्रकट करने बैठी तब सुशीला ने अपने हृदय के रुके हुए वेग को मुक्त कर देने का अवसर पाया।

ललिता ने कहा—हमारे लिए पिता जी को क्या करना उचित है यह, आपकी समझ में, पिताजी की अपेक्षा आप ही अच्छा जानते हैं। ऐसा आपको समझना ही चाहिए, क्योंकि आप समस्त ब्राह्मसमाज के हेडमास्टर हैं न।

ललिता की ऐसी उद्दण्डता-भरी बात सुन हरि बाबू पहले तो हतबुद्धि हो रहे किन्तु फिर उन्होंने इसका ख़ूब कड़ा जवाब देना चाहा। उन्हें कुछ बोलने की भूमिका बाँधते देख ललिता ने रोक कर कहा—हम लोग इतने दिन से आपकी श्रेष्ठता का बराबर लिहाज़ करती आती हैं किन्तु आप यदि पिता जी से भी बढ़ कर अपने को मान्य समझते हैं, और उनकी अपेक्षा अपना आदर बढ़ाना चाहते हैं तो इस घर में आपका आदर कोई न करेगा। हमारे नौकर तक आपको न पूछेंगे।

हरि बाबू आँखें लाल कर बोल उठे—ललिता तुम बहुत बढ़ कर बातें—

ललिता ने उनकी बात काट कर तीव्र स्वर में कहा—शान्त रहिए। आप की बातें हम ने बहुत सुनी हैं। आज मेरी बात सुनिए। अगर आप को मेरी बात पर विश्वास न हो तो आप सुशीला बहिन से पूछ लीजिए। आप अपने को जितना बड़ा समझते हैं, उसकी अपेक्षा हमारे पिताजी बहुत बड़े हैं। इस दफ़े आपको जो कुछ उपदेश मुझे देना है, दे डालिए।

हरि बाबू का चेहरा उतर गया। उन्होंने कुरसी से उठ कर कहा—सुशीला!

सुशीला ने किताब के पन्ने की ओर से नज़र उठा कर उन की ओर देखा। हरि बाबू ने कहा—देखो, ललिता तुम्हारे सामने मेरे साथ गुस्ताख़ी कर रही है। क्या इसे मेरा अपमान करना उचित है?

सुशीला ने गम्भीर स्वर में कहा—वह आपका अपमान करना नहीं चाहती। उसके कहने का मतलब यह है कि आप पिताजी को सम्मान की दृष्टि से देखा करें। उनसे बढ़ कर सम्मान के योग्य और कोई है, यह हम लोग नहीं जानतीं।

हरि बाबू की चेष्टा से जान पड़ा कि वह अभी कुरसी छोड़ कर चला जायगा। किन्तु वह दो एक बार उठने का लक्षण दिखा कर भी न उठा, मुँह लटका कर बैठा रहा। इस घर में उसकी प्रतिष्ठा धीरे धीरे नष्ट हो रही थी, इस बात को वह जितना ही सोचता था, उतना ही वह यहाँ अपने आसन को दृढ़ जमा कर बैठने के लिए विशेष चेष्टा करता था। वह इस बात को सोच कर अपनी अप्रतिष्ठा को भूल जाता था कि पुरानी वस्तु को जितना ही ज़ोर लगा कर लोग दबा रखना चाहते हैं वह उतनी ही खण्ड खण्ड होकर टूटती है।

हरि बाबू मुँह लटकाये बैठा है। यह देख, ललिता वहाँ से उठ सुशीला के पास जा बैठी। और उसके साथ मीठे स्वर में इस प्रकार बातें करने लगी मानों हरि बाबू के साथ कुछ छेड़ छाड़ ही नहीं हुई है।

इसी समय सतीश ने घर के भीतर प्रवेश कर सुशीला का हाथ खींच कर कहा—बड़ी बहिन, इधर आओ।

सुशीला ने कहा—कहाँ जाना है ?

सतीश—चलो, तुम को एक चीज़ दिखाऊँगा। ललिता बहिन, तुमने कह तो नहीं दिया !

ललिता—नहीं ।

मौसी के आने की बात ललिता सुशीला से न कहे, ऐसा ही ललिता का निश्चय सतीश के साथ हुआ था । इसी से ललिता ने अपनी प्रतिज्ञा का स्मरण कर सुशीला से कुछ नहीं कहा ।

अतिथि (हरि बाबू) को छोड़ कर सुशीला न जा सकी । उसने सतीश से कहा—बख्तियार! ज़रा ठहर कर चलूँगी । बाबू जी स्नान कर आ लें ।

सतीश छटपटाने लगा । वह हरि बाबू से बहुत डरता था, इसी से वह कुछ बोल न सका । हरि बाबू सतीश को कभी कभी शिक्षा देने के सिवा उसके साथ और किसी प्रकार का सम्पर्क नहीं रखता था ।

परेश बाबू को स्नान कर घर में आते देख सतीश अपनी दोनों बहिनों को वहाँ से खींच कर ले गया ।

हरि बाबू ने परेशचन्द्र से कहा—सुशीला के सम्बन्ध में जो प्रस्ताव पक्का हो गया है उसमें अब विलम्ब करना ठीक नहीं । मैं चाहता हूँ कि अगले रविवार को यह काम हो जाय ।

परेश बाबू—मुझे उस में कोई उज्र नहीं । यह बात सुशीला की इच्छा पर निर्भर है ।

हरि—उसकी इच्छा तो पहले ही ज्ञात हो चुकी है ।

परेश बाबू ने कहा—अच्छा, तो आप की ही बात रही ।

[३५]

उस दिन ललिता के पास से आ कर परेश बाबू के घर जाना विनय के लिए असम्भव हुआ, और अपने सूने घर में भी बैठना कठिन हो गया। दूसरे दिन तड़के ही उठ कर वह आनन्दी के पास पहुँचा और कहा—माँ, मैं कुछ दिन तुम्हारे ही यहाँ रहूँगा।

आनन्दी को गोरा के विच्छेद से जो शोक हुआ था, उसकी सान्त्वना देने का अभिप्राय भी विनय के मन में था। यह समझ कर आनन्दी का हृदय प्रेम से पिघल गया। वह कुछ न कह कर बड़े स्नेह से विनय की पीठ पर हाथ फेरने लगी।

विनय ने अपने खाने-पीने और सोने आदि का बहुत बड़ा झमेला खड़ा कर दिया। वह बीच बीच में आनन्दी के साथ झूठ मूठ का झगड़ा करने लगा कि यहाँ मेरा जैसा चाहिए प्रबन्ध नहीं होता। उसने हमेशा ही इधर उधर की बातें सुना कर आनन्दी को और अपने को गौरमोहन की चिन्ता से अलग रखने की चेष्टा की। साँझ को जब मन को बाँध रखना कठिन हो जाता, तब विनय उत्पात करके आनन्दी को घर के कामों से हठात् रोक द्वार के सामने बरामदे में चटाई बिछा कर बैठता था। वह आनन्दी से उसके लड़कपन की बातें और उसके बाप के घर की कहानी कहलवाता।

जब उसका विवाह नहीं हुआ था, जब वह अपने अध्यापक पितामह की पाठशाला के विद्यार्थियों के बड़े आदर की बालिका थी, और जब सभी मिल कर सब विषयों में उस पितृहीना बालिका का पक्ष करते थे, जिससे उसकी विधवा माता के मन में विशेष उद्वेग होता था, उस दिन की सब कथा कहने को विनय उसे बाध्य करता था। विनय कहता—माँ, तुम कभी मेरी माँ न थी, यह बात मन में आने से मुझे बड़ा आश्चर्य होता है। मैं तो समझता हूँ कि महल्ले के सभी लड़के तुमको अपनीही माँ समझते हैं।

एक दिन साँझ को आनन्दी चटाई पर दोनों पैर पसारे बैठी थी। विनय ने उसके पैर के तलुवों पर सिर रख कर कहा—माँ, जी चाहता है कि मैं अपनी सब विद्या, बुद्धि भुला कर बालक बन तुम्हारी गोद में बैठूँ। संसार में तुम्हीं मेरी सब कुछ हो, तुम्हें छोड़ मैं और कुछ नहीं चाहता।

विनय के कोमलता-भरे कंठ से एक ऐसा आन्तरिक भक्ति-भाव प्रकट हुआ जिससे आनन्दी ने व्यथा के साथ आश्चर्य का अनुभव किया। वह खिसक कर विनय के पास बैठ गई और धीरे धीरे उसके माथे पर हाथ फेरने लगी। बड़ी देर तक चुप रह कर आनन्दी ने पूछा—विनय, परेश बाबू के घर का समाचार कैसा है?

इस प्रश्न से विनय सहसा लज्जित हो चौंक उठा। सोचा, माँ से कोई बात छिपाना ठीक नहीं, मेरी माँ अन्तर्यामिनी है।

उसने ठिठकते हुए कहा—हाँ, उनके घर का समाचार अच्छा है, सभी लोग कुशलपूर्वक हैं ।

आनन्दी—मेरी बड़ी इच्छा है कि परेश बाबू की लड़कियां से मेरी जान-पहचान हो जाय । पहले तो उनके ऊपर गौरमोहन के मन का भाव अच्छा न था, किन्तु अब जब उन लोगों ने उसे वश में कर लिया है तब वे साधारण लोगों में नहीं हैं ।

विनय ने उत्साहित होकर कहा—मेरी भी कई बार यह इच्छा हुई है कि परेश बाबू की लड़कियां के साथ किसी तरह तुम्हारी भेंट करा दूँ, किन्तु गौर बाबू नाराज़ न हों इस भय से मैंने कभी इसका ज़िक्र भी तुमसे नहीं किया ।

आनन्दी ने पूछा—बड़ी लड़की का नाम क्या है ?

इस प्रकार प्रश्नोत्तर होते होते जब ललिता का प्रसंग आया तब विनय ने इस प्रसंग को थोड़े ही में ख़तम कर डालना चाहा । किन्तु आनन्दी ने न माना । वह ललिता के सम्बन्ध में प्रश्न पर प्रश्न करने लगी । उसने मुसकुरा कर कहा—सुनती हूँ, ललिता की बुद्धि बड़ी तीव्र है ।

विनय ने कहा—तुमने किससे सुना है ?

आनन्दी—तुम्हीं से !

पहले एक ऐसा समय था जब ललिता के सम्बन्ध में विनय को कुछ संकोच न था । उस निर्बन्ध अवस्था में उसने आनन्दी के आगे ललिता की तीक्ष्ण बुद्धि पर जो बेरोक आलोचना की थी, वह उसे याद ही थी ।

आनन्दी सुनिपुण नाविक की भाँति सब बाधाओं को बचाकर ललिता की बात को इस प्रकार ले चली कि विनय के द्वारा उसके जीवनवृत्तान्त का प्रायः सभी प्रधान अंश प्रकट हो गया। गौरमोहन के जेल जाने की घटना से दुखी होकर ललिता चुपचाप अकेली भाग कर स्टीमर पर विनय के साथ आई, यह बात भी विनय ने आज कह डाली। कहते कहते उसका उत्साह बढ़ गया। साँझ को जिस विषाद के बोझ से वह दबा जा रहा था, वह एक दम हलका पड़ गया। उसने ललिता के सदृश बालिका के अद्भुत चरित्र को जाना और उसके चरित्र का इस प्रकार वर्णन किया, इसीको वह परम लाभ मानने लगा। रात को जब भोजन के लिए बुलाहट हुई, और बात ख़तम हुई तब विनय मानों स्वप्न से जाग उठा; उसे मालूम हुआ कि मेरे मन में जो कुछ बात थी वह सभी आनन्दी से कही जा चुकी है। आनन्दी ने विनय के मुँह से आज सभी बातें सुनीं। आज तक माँ से छिपाने की कोई बात विनय के मन में न थी। सामान्य से सामान्य बात भी वह आनन्दी के पास आकर कह सुनाता था। किन्तु परेश बाबू के घर के लोगों के साथ जब से परिचय हुआ है तब से कोई एक बात उसके हृदय में कहीं अटक रही थी, वह उसे बराबर कसकती थी। आज ललिता के सम्बन्ध की जो बातें उसके मन में थीं वे एक प्रकार से सभी आनन्दी पर प्रकट हो गई हैं। यह सोच कर विनय का मन उल्लसित हो गया, वह

अपने जीवन के इस व्यापार को सम्पूर्ण रूप से निवेदन न कर सकने के कारण अपने को किसी प्रकार निष्कपट नहीं कह सकता था । यह बात उसकी मानसिक चिन्ता में काले दाग़ के बराबर थी ।

भोजन करके रात में अकेली बैठ कर आनन्दी इन बातों को बड़ी देर तक सोचती रही। गोरा के जीवन की समस्या उत्तरोत्तर जटिल होती जा रही है और परेश बाबू के घर में ही उसकी कोई मीमांसा हो सकती है, यह सोच कर उसने निश्चय किया कि जैसे होगा एक बार परेश बाबू की लड़कियों के साथ अवश्य भेंट करनी होगी ।

[३६]

शशिमुखी के साथ विनय का ब्याह मानों एक प्रकार से स्थिर हो गया है, इस भाव पर महिम और उसके घर के लोग विश्वास करके काम कर रहे थे । शशिमुखी विनय के पास आती न थी, उसे देखते ही लजा कर घर के भीतर भाग जाती थी। शशिमुखी की माँ के साथ विनय का कुछ विशेष परिचय न था । वह वास्तविक लज्जावती तो नहीं थी, किन्तु अस्वाभाविक रूप से परदे के भीतर छिपी रहती थी । वह नहीं चाहती थी कि हर कोई मुझे देखे, या मेरे पास बैठकर कुछ बातें करे। उसके घर का दरवाज़ा प्रायः बंद रहा करता

था। स्वामी के सिवा उसका सब कुछ ताले-कुञ्जी के भीतर रहा करता था। स्वामी भी उसके बन्द घर को यथेष्ट रूप से खोलने नहीं पाते थे। स्त्री के शासन से उसकी सभी गति-विधि निर्दिष्ट थी। उसके पति के सञ्चरण-क्षेत्र की परिधि बहुत ही संकीर्ण थी। इस प्रकार शशिमुखी की माँ कमला देवी अपने को घर के बीच रख कर सबसे अलग रहा करती थी। सहसा उसके पास न कोई जा सकता, और न वह अपने घर से किसी के पास जा सकती थी। यहाँ तक कि गौरमोहन को भी कमला के महल में जाने का वैसा अवसर नहीं मिलता था। कमला अपने घर की आपही ख़ुद-मुख़तार थी। बाहरी लोगों के साथ व्यवहार में महिम ख़ूब ज़बरदस्त मालूम होता था। किन्तु कमला देवी के घर में अपनी इच्छा से चलने का उसे कोई मार्ग न था। सामान्य से सामान्य विषय में भी वह बिना कमला देवी की अनुमति के कोई काम नहीं कर सकता था।

कमला ने विनय को आड़ से देखा था और पसन्द भी किया था। महिम विनय को बाल्यकाल से ही गोरा के मित्र-रूप में देखता आया है। अत्यन्त परिचय होने ही से वह विनय को अपनी कन्या देने का पात्र नहीं समझता था। कमला ने जब विनय के प्रति अपनी दृष्टि डाली, तब सहधर्मिणी की बुद्धि पर महिम की श्रद्धा बढ़ गई। कमला ने बड़ी दृढ़ता से निश्चय किया कि विनय के ही साथ मेरी कन्या का विवाह

होगा। इस प्रस्ताव में उसने अपने स्वामी के मन में एक बड़ी सुविधा की बात यह अङ्कित कर दी कि विनय आप से कुछ ठहरौनी न लेगा।

विनय को अपने यहाँ देख कर दो एक दिन महिम ने उसके आगे विवाह की चर्चा न की। गौर के जेल जाने से उसका मन उदास था। इसीसे वह इस विषय में कुछ न बोला।

आज रविवार था। गृहिणी ने महिम की हफ्तेवारी—दोपहर की—नींद पूरी न होने दी। विनय एक नया मासिक पत्र ले कर आनन्दी को सुना रहा था। पान का डिब्बा हाथ में लिये हुए महिम वहाँ आकर चौकी के ऊपर धीरे धीरे बैठ गये।

उन्होंने विनय के हाथ में एक बीड़ा देकर पहले गोरा की उद्दण्डता और अज्ञानता पर खेद प्रकट किया। इसके बाद उसकी रिहाई होने में अब कै दिन बाक़ी हैं, इस बात की आलोचना करते हुए धक से उसे स्मरण हो आया कि अगहन महीने का आधा पाख प्रायः बीत चला।

महिम ने कहा—सुनो विनय, तुम ने जो कहा था कि अगहन महीने में हमारे वंश में विवाह नहीं होता, सो यह किसी काम की बात नहीं। यह बिलकुल फ़ुज़ूल है। एक तो पोथी-पत्रे में निषेध छोड़ कोई बात ही नहीं; उस पर यदि घर का शास्त्र माना जाय तो वंश की रक्षा कैसे होगी?

विनय के ऊपर यह संकट देख आनन्दी ने कहा—शशिमुखी को विनय बहुत दिनों से दूसरी दृष्टि से देखता आया है,

इसीसे उसको उसके साथ ब्याह करना पसन्द नहीं है। इसीलिए वह अगहन मास के निषेध का बहाना कर बैठा है।

महिम ने कहा—यह बात तो शुरू में ही उसे कहनी चाहिए था।

आनन्दी ने कहा—अपने मन की बात समझने में भी समय लगता है। लड़कों की कमी क्या है? गोरा को लौट आने दो, कितने ही अच्छे अच्छे लड़कों से उसकी जान-पहचान है। वह एक लड़का कहीं ठीक कर देगा।

महिम ने मुँह बना कर कहा—हूँ। कुछ देर चुप रह कर फिर बोला—माँ, यदि तुम विनय के मन को न भटकाती तो वह इस काम में आपत्ति न करता।

विनय घबड़ा कर कुछ कहना चाहता था। आनन्दी ने उसे रोक कर कहा—महिम, तुम सच कहते हो, मैं उसको इस काम में उत्साह नहीं दे सकती। विनय अभी लड़का है। कदाचित् वह बिना समझे-बूझे कोई काम कर भी सकता है। किन्तु अन्त में उसका परिणाम अच्छा न होगा।

आनन्दी ने विनय के आगे खड़ी होकर महिम के क्रोध का धक्का अपने ऊपर लिया। विनय यह समझ कर अपनी दुर्बलता के कारण लज्जित हो गया। उसे अपनी असम्मति प्रकट करने के लिए उद्यत होते देख महिम कुछ सुनने की अपेक्षा न कर बड़बड़ाता हुआ घर से बाहर आ गया कि सौतेली माँ कभी अपनी नहीं होती।

महिम के मन की बात आनन्दी जानती थी । किन्तु लोग मन ही मन क्या समझते हैं, यह बात सोच कर चलने का उसे अभ्यास न था । जिस दिन उसने गोरा को गोद लिया था, उसी दिन से लोगों के आचार-विचार से उसकी प्रकृति एकदम स्वतन्त्र हो गई है । उस दिन से वह ऐसा ही आचरण करती आई है, जिससे लोग उसकी निन्दा ही करें । उसके जीवन के मर्मस्थान में जो एक सत्य गूढ़ रहस्य छिप कर उसे बराबर कष्ट दे रहा है, लोक-निन्दा ही उसे इस कष्ट से कुछ बचाती है । लोग जब उसे किरिस्तान कहते थे, तब वह असहाय गोरा को अपने गले से लगा कर कहती थी, भगवान जानते हैं, किरिस्तान कहने से मेरी निन्दा नहीं होती; लोग भले ही मुझे किरिस्तान कहा करें । इस प्रकार क्रमशः सभी विषयों में लोगों की बात से अपने व्यवहार को अलग रखने का उसे अभ्यास हो गया था । इस लिए महिम जब उसे मन ही मन या प्रकट रूप से सौतेली माँ कह कर दोष देता था, तब भी वह अपने पथ से विचलित न होती थी ।

आनन्दी ने विनय से कहा—तुम परेश बाबू के घर बहुत दिनों से नहीं गये ?

विनय—क्या इसी को बहुत दिन कहते हैं ?

आनन्दी—स्टीमर पर आने के दूसरे दिन से तो तुम एक बार भी वहाँ नहीं गये हो ।

विनय का यह कहना यद्यपि ठीक था कि वहाँ गये अभी

बहुत दिन नहीं हुए हैं, किन्तु वह जानता था कि इस बीच में परेश बाबू के घर उसका जाना-आना यहाँ तक बढ़ गया था कि आनन्दी को भी उसका दर्शन दुर्लभ हो गया था। इस हिसाब से परेश बाबू के घर गये बहुत दिन हुए, यह असंगत नहीं कहा जा सकता। इन थोड़े दिनों का न जाना भी लोगों की दृष्टि में बहुत दिनों की भाँति मालूम होने लगा।

विनय अपनी धोती के छोर से एक सूत निकाल कर उसे तोड़ते तोड़ते चुप हो रहा।

इतने में दरवान ने आकर ख़बर दी—माँजी, न मालूम कहाँ से माई लोग आई हैं, फाटक पर गाड़ी लगी है।

विनय झट पट उठ खड़ा हुआ। कौन आया है, कहाँ से आया है, यह सोचता ही था कि इतने में सुशीला और ललिता घर के भीतर आ पहुँचीं। विनय को घर से बाहर जाने का मौक़ा न मिला। वह ठिठक कर वहीं खड़ा होरहा।

दोनों ने आनन्दी के पैर छू कर प्रणाम किया। ललिता ने विनय की ओर कुछ लक्ष्य न किया। सुशीला ने उसे नमस्कार करके कहा—आप अच्छे हैं? आनन्दी की ओर देख कर कहा—हम परेश बाबू के घर से आई हैं।

आनन्दी ने उन्हें आशीर्वाद दे आदर से बिठाकर कहा—बेटी! तुम्हें मुझको परिचय न देना होगा। मैं ने तुम लोगों को कभी देखा नहीं, किन्तु तुम्हें अपने घर की लड़की के बराबर जानती हूँ।

परस्पर वार्तालाप होने लगा। विनय को चुपचाप बैठा देख सुशीला ने उसे बातचीत में शरीक कर लेना चाहा। उसने कोमल स्वर में उससे पूछा—आप तो बहुत दिन से हमारे यहाँ नहीं गये हैं?

विनय ने ललिता के मुँह की ओर देख कर कहा—बार बार आप को दिक़ करने से डर लगता है कि कहीं आपके स्नेह से वञ्चित न हो जाऊँ।

सुशीला ने मुसकुरा कर कहा—स्नेह दिक़ करने की कुछ परवा नहीं करता। क्या आप यह नहीं जानते?

आनन्दी ने कहा—बेटी, वह इस बात को अच्छी तरह जानता है। मैं तुम लोगों से क्या कहूँ। दिन भर उसकी फ़रमायश और दुलार से मुझे फ़ुरसत नहीं मिलती।—यह कह कर उसने स्नेह-भरी दृष्टि से विनय की ओर देखा।

विनय ने कहा—ईश्वर ने तुमको जो धैर्य दिया है, उस की परीक्षा मेरे ही द्वारा ली जा रही है।

सुशीला ने ललिता को ज़रा ठेल कर कहा—सुनती हो बहन, हम लोगों की परीक्षा हो गई। मालूम होता है, हम लोग पास नहीं कर सकीं।

ललिता ने इस बात पर कुछ ध्यान न दिया, यह देखकर आनन्दी हँस कर बोली—इस दफ़े हमारा विनय अपने धैर्य्य की परीक्षा दे रहा है। तुम लोगों को यह किस दृष्टि से देखता है, यह तुम लोग नहीं जानतीं। सन्ध्या समय तुम

लोगों की चर्चा छोड़ और कोई बात ही नहीं करता। जब परेश बाबू की चर्चा होती है तब तो वह एकदम पिघल जाता है। भक्ति भाव से उसका हृदय भर जाता है।

आनन्दी ने ललिता के मुँह की ओर देखा, वह ज़बरदस्ती देखती रही सही किन्तु एकाएक उसकी आँखों में लाली क्यों छा गई?

आनन्दी ने कहा—तुम्हारे पिता के कारण यह कितने लोगों के साथ झगड़ता है, इसके दल के लोग तो इसे ब्राह्म कह कर जाति से बाहर कर देने का यत्न कर रहे हैं। देखो विनय, तुम इस तरह चञ्चल क्यों हुए जाते हो? मैं सच कहती हूँ, इतना संकोच करने का तो कोई कारण नहीं दीखता। कहो बेटी, इसमें लजाने की कौन सी बात है?

इस बार ललिता के मुँह की ओर देखते ही उसने सिर नीचा कर लिया। सुशीला ने कहा— विनय बाबू हम सबको अपने घर के लोगों की तरह जानते हैं, यह हम बखूबी जानती हैं, परन्तु यह बात हम लोगों के गुण से नहीं है वरन् यह तो इन्हीं की योग्यता के कारण है। ये जो हम लोगों को इतना चाहते हैं यह इनकी उदारता है।

आनन्दी ने कहा—बेटी, मैं यह ठीक नहीं कह सकती, इसकी उदारता तो मेरे देखने में नहीं आती। इतने दिनों में हमारा गोरा ही इसका एक मित्र हुआ है। मैंने तो यहाँ तक देखा है कि यह अपने दल के लोगों के साथ भी मिलने नहीं जाता।

किन्तु तुम लोगों के साथ दो दिन की भेट-मुलाक़ात से इसका ऐसा मन मिल गया है कि हम लोग भी अब इसकी आहट नहीं पातीं। सोचा था, मैं इस बात पर तुम लोगों से झगड़ा करूँगी किन्तु अब देखती हूँ कि मुझे भी इसके साथ झगड़ना होगा । जीत तुम्हारी ही होगी, तुमसे सब हार मानेंगे ।

यह कहकर आनन्दी ने एक बार ललिता का और एक बार सुशीला का चिबुक छूकर अपने हाथ की अँगुली चूमी ।

सुशीला ने विनय की दुरवस्था पर लक्ष्य करके सदय हृदय से कहा—विनय बाबू, बाबू जी आये हैं। वे बाहर कृष्णदयाल बाबू के साथ वार्तालाप कर रहे हैं।

यह सुनकर विनय झटपट बाहर चला गया। आनन्दी अब गौरमोहन और विनय की असाधारण मित्रता का वर्णन करने लगी। दोनों श्रोता उन बातों को जी लगाकर सुन रहे थे, यह आनन्दी अच्छी तरह समझ गई। आनन्दी अपनी ज़िन्दगी में इन दोनों लड़कों को अपने मातृस्नेह का पूरा परिचय देती आई है। संसार में इन दोनों से बढ़कर उसके और कोई न था। उन दोनों को इसी ने सिखा पढ़ाकर बड़ा किया है। उसके मुँह से इन दोनों प्यारे बच्चों की कहानी, स्नेह-रस का योग पाकर, ऐसी मीठी हो गई कि सुशीला और ललिता अतृप्त हृदय से सुनने लगीं। गौरमोहन और विनय के प्रति इन दोनों की श्रद्धा का अभाव न था। किन्तु आनन्दी

सी माता के मुँह से ऐसी स्नेह-भरी कहानी सुनकर इन दोनों के हृदय में एक अपूर्व आनन्द का सञ्चार हुआ।

आज आनन्दी के साथ जान-पहचान होने से मैजिस्ट्रेट के ऊपर ललिता का क्रोध और भी बढ़ गया। ललिता के मुँह से दो एक जली-कटी बातें सुनकर आनन्दी हँसी और बोली—बेटी, गोरा आज जेलखाने में है, उसका जो दुःख मेरे हृदय में है, वह अन्तर्यामी ही जानता है। किन्तु साहब के ऊपर मैं क्रोध नहीं कर सकती। मैं गोरा को जानती हूँ, वह जो कुछ अच्छा समझता है वही करता है। उसके आगे आईन-क़ानून कुछ नहीं चलता। गोरा का काम गोरा के सिवा और कौन कर सकता है। उन लोगों ने भी अपना कर्तव्य ही किया है। इसमें जिनको जो दुःख होना है वह उन्हें होगा ही। मेरे गोरा की चिट्ठी पढ़ोगी तो समझ सकोगी कि वह दुःख से नहीं डरता और न किसी के ऊपर झूठ मूठ का क्रोध ही करता है। क्या करने से क्या फल होगा, यह जानकर ही वह काम करता है। यह कह कर उसने गोरा की लम्बी चिट्ठी बक्स से निकाल कर सुशीला के हाथ में दी और कहा, बेटी, तुम ज़ोर से पढ़ो, मैं भी सुनूँगी।

गोरा की यह विचित्र चिट्ठी सुशीला ने बड़ी धीरता से पढ़ डाली। इसके बाद कुछ देर तक तीनों चुप रहीं। आनन्दी ने आँचल से अपनी आँखें पोछीं। उस नयन-जल में केवल माता के हृदय की वेदना ही न थी, किन्तु उसके साथ आनन्द

और गौरव भी मिला हुआ था; उसका गोरा कुछ साधारण गोरा नहीं है, मैजिस्ट्रेट उसका क़सूर माफ़ कर उसे दया करके छोड़ देंगे वह ऐसा गोरा नहीं। उसने जो अपराध स्वीकार करके जेल का दुःख अपनी इच्छा से सिर पर चढ़ा लिया है, वह उस दुःख के लिए किसी के साथ झगड़ा क्यों करेगा, वह उस दुःख को बड़ी धीरता के साथ सहलेगा, और आनन्दी भी इसे सहन कर सकेगी।

ललिता आश्चर्य के साथ आनन्दी के मुँह की ओर देखने लगी। ब्राह्म परिवार का संस्कार ललिता के मन में ख़ूब दृढ़ था। जिन स्त्रियों ने आधुनिक प्रथा के अनुसार शिक्षा नहीं पाई है, और जिन्हें वह हिन्दू घर की लड़की समझती है उन-पर उसकी श्रद्धा नहीं। बचपन में शिवसुन्दरी अपनी लड़कियों के जिस अपराध पर लक्ष्य करके कहती थी कि हिन्दू घर की स्त्रियाँ भी वैसा काम नहीं करतीं उस अपराध के लिए ललिता ने बार बार संकुचित होकर सिर नीचा कर लिया है। आनन्दी के मुँह से ये कई बातें सुन कर उसका हृदय बार बार आश्चर्य्य का झोंका खाने लगा। जैसा बल, वैसी शान्ति, और वैसी ही विचित्र विवेचना, आनन्दी में सभी गुण एक से एक बढ़कर देखने में आये। अपने असंयत हृदय की तीव्रता के लिए ललिता ने अपने को इस अर्द्धवयस्क रमणी के सामने बहुत हीन समझा। आज उसके मन में बड़ा ही क्षोभ हो रहा था इसलिए उसने विनय के मुँह

की ओर न तो देखा और न उसके साथ कोई बात ही की, किन्तु आनन्दी के स्नेह, करुणा और शान्ति से भरे मुँह की ओर देख कर उसके हृदय की मानों समस्त विद्रोहज्वाला ठण्ढी हो गई। चारों ओर सभी के साथ उसका सम्बन्ध सरल हो गया। ललिता ने आनन्दी से कहा—गौर बाबू ने इतनी शक्ति कहाँ से पाई है, यह आज आपको देखने से मालूम हो गया।

आनन्दी ने कहा—तुमने ठीक नहीं समझा। अगर मेरा गोरा साधारण लड़के की तरह होता तो मुझे आन्तरिक बल कहाँ से मिलता। वैसा होने से क्या उसका दुःख मैं इस तरह सह सकती?

ललिता का मन आज क्यों इतना विकल हो गया था, इसका कुछ हाल यहाँ कह देना आवश्यक जान पड़ता है।

कुछ दिनों से प्रति दिन सबेरे बिछौने से उठते ही ललिता के मन में पहली बात यही आती थी कि आज विनय बाबू नहीं आवेंगे। यह समझ कर भी वह सारे दिन उसके आने की प्रतीक्षा करती थी। घड़ी भर के लिए भी उसका मन दूसरी ओर न जाता था। पत्ते की खड़खड़ाहट सुनकर वह चौंक उठती थी। शायद विनय आ रहा है, कदाचित् वह ऊपर न आकर नीचे के कमरे में परेश बाबू के साथ बातें कर रहा हो। यह सोच कर वह दिन भर में कितनी बार बिना कारण इस कमरे से उस कमरे में, घूमती-फिरती थी, इसका कुछ

ठिकाना नहीं था। आख़िर किसी तरह दिन बिता डालने पर रात को जब वह बिछौने पर सोने जाती, तब उसकी समझ में न आता था कि अपने इस निठल्ले मन को लेकर मैं क्या करूँ। उसे खूब रुलाई आती थी। साथही साथ क्रोध भी होता था, परन्तु यह क्रोध किसके ऊपर होता था, और क्यों होता था यह समझना कठिन है। शायद उसको अपने ही ऊपर क्रोध होता था, वह आपही अपने ऊपर खीझती थी। वह सोचती थी कि यह क्या हुआ, मैं इस प्रकार क्यों व्याकुल हो पड़ी हूँ। मेरा यह उन्माद कैसे दूर होगा। इस दुःख से निकलने का उसे कोई रास्ता नहीं सूझता था। इस तरह और कितने दिन चलेंगे।

ललिता जानती थी कि विनय हिन्दू है, किसी तरह उसके साथ मेरा ब्याह नहीं हो सकता। ललिता अपने हृदय को किसी तरह अपने वश में न ला सकने के कारण लज्जा और भय से सूखी जा रही थी। विनय का हृदय मेरे विमुख नहीं है; यह बात वह जानती थी। यह जानने ही से अपने को रोक रखना आज उसके लिए इतना कठिन हो गया है। इसलिए जब वह उतावली होकर विनय के आने की आशा में निमग्न हो रहती थी तब इसके साथ ही साथ उसके मन में यह आशङ्का होती थी कि विनय मेरी पीठ के पीछे आकर खड़ा तो नहीं है। इस तरह अपने मन के साथ खैंचा-तानी करते करते आज सबेरे पहर उसका धैर्य्य रोके न रुका। वह एक-

दम अधीर हो उठी । उसने निश्चय किया कि विनय के न आने ही से मेरे मन में इस प्रकार की अशान्ति फैल रही है। एक बार उसको देखने ही से वह अशान्ति दूर हो जायगी, और चित्त स्थिर हो जायगा।

वह उसी समय सतीश को अपने घर के भीतर खींच लाई। सतीश आज कल्ह मौसी को पाकर विनय के साथ मित्रता की बात एक प्रकार से बिलकुल भूल ही गया था। ललिता ने उससे कहा—क्या विनय बाबू के साथ तेरा झगड़ा हो गया है ?

उसने इस अपवाद को हर्गिज़ मंजूर न किया। ललिता ने कहा—ऐसा मित्र तो कहीं देखा नहीं। तू विनय बाबू, विनय बाबू जपता रहता है। वे तो तुझे घूम कर भी नहीं ताकते।

सतीश ने कहा—नहीं, यह तुम क्या कहती हो। यह कभी हो नहीं सकता, मैं अभी उन्हें बुला लाता हूँ।—यह कह कर वह विनय के घर की ओर दौड़ पड़ा, कुछ देर में लौट कर कहा—वे घर पर नहीं हैं, इसी से वे नहीं आये।

ललिता ने पूछा—वे इधर कई दिनों से क्यों नहीं आये ?

सतीश—कई दिनों से वे घर पर नहीं थे।

तब ललिता ने सुशीला के पास जाकर कहा—बहन! गौर बाबू की माँ के पास हम लोगों को एक बार चलना चाहिए।

सुशीला ने कहा—उनके साथ परिचय जो नहीं है।

ललिता—वाह? गौर बाबू के बाप पिताजी के बाल्य-सखा हैं।

सुशीला को याद हो आया। उसने कहा—हाँ यह तो सही है।

सुशीला भी अत्यन्त उत्साहित हो कर बोली—तुम यह बात बाबू जी से कहो।

ललिता—नहीं, मैं न कह सकूँगी। तुम्हीं जाकर कहो।

आख़िर सुशीला ने ही परेश बाबू के पास जाकर यह बात कही। उन्होंने कहा—ठीक है, इतने दिन नहीं गये, यही अनुचित हुआ।

भोजन के अनन्तर जब जाने की बात स्थिर हुई तब ललिता मुँह फुला बैठी। कहीं से ग्लानि और संशय आकर उसको विपरीत दिशा की ओर खींचने लगा। कहाँ तो वह जाने के लिए छटपटा रही थी और कहाँ अब न जाने ही के लिए प्रण कर बैठी है! आख़िर उसने सुशीला के पास जाकर कहा—बहिन, तुम पिता जी के साथ जाओ; मैं न जाऊँगी।

सुशीला ने कहा—यह क्या हुआ? तुम्हारे चले बिना मैं अकेली न जा सकूँगी। वह ललिता का हाथ पकड़ कर बोली—मेरी आँखों की पुतली, मेरे प्राणों की प्यारी, मेरे हृदय की देवी, ललिता बहिन! मेरे साथ चलो, विघ्न मत करो।

कई प्रकार से विनय अनुनय करने पर ललिता उसके साथ गई। विनय उसके घर न गया और वह हार कर उस को देखने चली है। इस अपमान पर उसे क्रोध होने लगा। विनय को देखने की आशा से आनन्दी के घर जाने के लिए जो उसके मन में एक आग्रह उत्पन्न हुआ था, उसे वह मनही

मन एकबारगी अस्वीकार करने की चेष्टा करने लगी । और अपने इस हठ को अभङ्ग रखने के लिए उसने न विनय की ओर देखा, न उसको नमस्कार किया और न उसके साथ कोई बात की । विनय ने समझा कि मेरे मन की छिपी बात शायद ललिता पर प्रकट हो पड़ी है, इसी से वह अपमान के द्वारा मुझे एक प्रकार से इसकी सूचना दे रही है । ललिता मुझे अनुराग की दृष्टि से देख सकती है, ऐसी आशा विनय को स्वप्न में भी न थी ।

विनय ने आकर संकोच से दरवाज़े के पास खड़े होकर कहा—परेश बाबू अब घर जाना चाहते हैं । उन्हों ने इन सबों को ख़बर देने के लिए कहा है । वह इस तरह खड़ा था जिसमें ललिता उसे न देख सके ।

आनन्दी ने कहा—यह क्या ? मालूम होता है, वे बिना कुछ जलपान किये ही चल देना चाहते हैं । अब अधिक देर न होगी । विनय, तुम यहाँ ज़रा बैठो, मैं एक बार देख आऊँ । तुम बाहर दब कर क्यों खड़े हो, घर के भीतर आकर बैठो ।

विनय ललिता की ओर पीठ करके उससे कुछ दूर एक जगह जा बैठा । यह देखकर ललिता का भाव बदल गया । मानों विनय के प्रति उसने कोई कुव्यवहार नहीं किया, ऐसा सहज भाव धारण कर ललिता ने कहा—विनय बाबू, क्या आप अपने छोटे मित्र सतीश को एकदम भूल ही गये । वह अपनी याद दिलाने के लिए आज सबेरे आपके घर गया था ।

सहसा आकाश-वाणी होने से मनुष्य जैसे चौंक उठता है, उसी तरह विनय आश्चर्य से चौंक उठा। उसका यह चौंकना छिपा न रहा, इससे वह अत्यन्त लज्जित हुआ। वह अपनी स्वाभाविक धीरता के अनुसार कोई जवाब न दे सका। उस का चेहरा लाल हो गया। उसने किसी तरह अपने मन की चञ्चलता को दबा कर कहा—क्या सतीश गया था? मैं तो घर पर न था।

ललिता की साधारण बात से विनय के मन में एक अतर्कित आनन्द हुआ। मानों पलक मारने के साथ एक बहुत बड़ा सन्देह दुःस्वप्न की भाँति उसके मन से दूर हो गया। मानों इसके सिवा संसार में उसके लिए प्रार्थना की और कोई वस्तु ही न थी। वह मन में कहने लगा, हा! अब प्राण बचे! अब कोई चिन्ता नहीं, ललिता मुझसे नाराज़ नहीं है, उसको मुझपर किसी तरह का सन्देह नहीं है।

देखते देखते सब बाधा मिट गई। सुशीला ने हँस कर कहा—विनय बाबू हम लोगों को एक भयङ्कर जानवर समझ दूर हो गये हैं।

विनय ने कहा—संसार में जो लोग मुँह खोल कर नालिश नहीं कर सकते, गूँगे की भाँति चुप हो रहते हैं, उन्हीं पर प्रायः दोष लगाया जाता है। बहन, तुम्हें यह बात न कहनी चाहिए। तुम आप कितनी दूर चली गई हो, यह नहीं सोचती और दूसरे को बहुत दूर जाने का दोष देती हो।

विनय ने आज पहले पहल सुशीला को बहन कहा। सुशीला के कान में यह शब्द बहुत मीठा मालूम हुआ। विनय के प्रति पहले दिन की मुलाक़ात से ही सुशीला के मन में जो एक सुहृद्भाव उत्पन्न हुआ था, वह इस "बहन" सम्बोधन से मानों पूर्णता को प्राप्त हो गया।

परेश बाबू अपनी लड़कियों को लेकर जब चले गये तब दिन नाम मात्र को बच रहा था। सूर्य्यास्त होने में कुछ विलम्ब न था। विनय ने आनन्दी से कहा—माँ, आज मैं तुम को कोई काम करने न दूँगा, चलो थोड़ा छत के ऊपर बैठें।

विनय अपने चित्त के आवेग को किसी प्रकार रोक नहीं सका। आनन्दी को छत के ऊपर लेजाकर अपने हाथ से चटाई बिछा कर उसे बिठाया। आनन्दी ने विनय से पूछा—कहो, तुम क्या कहना चाहते हो?

विनय ने कहा—मैं कुछ कहना नहीं चाहता। तुम्हीं को कहना होगा। परेश बाबू की लड़कियाँ आनन्दी को कैसी लगीं, यह बात सुनने के लिए विनय का मन छटपटा रहा था।

आनन्दी ने कहा—वाह! इसी लिए तुम मुझे यहाँ बुला लाये हो! मैंने समझा, कोई और ही बात होगी।

विनय ने कहा—मैं अगर तुमको यहाँ बुला न लाता तो तुम सूर्य्यास्त-समय की ऐसी शोभा न देख पातीं।

यद्यपि अगहन मास के सूर्य्यास्त में कोई विलक्षणता न थी, तोभी विनय को आज उसमें एक अपूर्व शोभा देख पड़ी।

आनन्दी ने उसकी बात पर कुछ लक्ष्य न कर के कहा—दोनों लड़कियाँ बड़ी अच्छी हैं।

विनय ने बड़ी उत्सुकता के साथ उन दोनों के सम्बन्ध में तरह तरह की बातें कहकर आनन्दी के चित्त को आनन्द से भर दिया।

आनन्दी इस बीच में एक बार ज़ोर से साँस लेकर बोली—यदि सुशीला के साथ गोरा का ब्याह होता तो बड़ी खुशी होती।

विनय ने उमङ्ग-भरे स्वर में कहा—माँ यह बात मैंने कई बार सोची है। सुशीला ठीक गोरा के उपयुक्त है।

आनन्दी ने कहा—परन्तु होगा कैसे ?

विनय—क्यों न होगा ? मैं जहाँ तक समझता हूँ, गौरमोहन सुशीला को नापसन्द नहीं कर सकता।

गोरा का मन जो किसी एक जगह आकर्षित हुआ है यह बात आनन्दी से छिपी न थी। वह आकर्षित करने वाली और कोई नहीं, सुशीला ही है।

यह बात विनय की बातचीत से पहले ही वह जान चुकी थी। कुछ देर चुप रह कर आनन्दी ने कहा—क्या सुशीला हिन्दू के घर में ब्याह करना चाहेगी ?

विनय ने कहा—अच्छा माँ, एक बात तो कहो। क्या गोरा ब्राह्म के घर में ब्याह नहीं कर सकता ? क्या तुम इस कार्य्य में अपनी सम्मति न दोगी ?

आनन्दी—सम्मति क्यों न दूँगी? इसमें मुझे कोई आपत्ति नहीं है।

विनय ने फिर पूछा—कोई आपत्ति नहीं?

आनन्दी ने कहा—विनय, आपत्ति की बात क्या पूछते हो? कन्या और वर दोनों के मन का परस्पर मिलना ही तो ब्याह है। मन की एकता न हो तो ब्याह के समय केवल मन्त्र पढ़ने ही से क्या?

विनय के मन से एक बोझ उतर गया। उसने उत्साहित होकर कहा—माँ, जब मैं तुम्हारे मुँह से ये बातें सुनता हूँ तब मुझे बड़ा आश्चर्य्य होता है। ऐसी उदारता तुमने कहाँ से पाई?

आनन्दी ने हँस कर कहा—गोरा से।

विनय ने कहा—गौर बाबू तो इसके विरुद्ध ही भाषण करता है।

आनन्दी ने कहा—भाषण करने से क्या होगा? मेरी जो कुछ शिक्षा हुई है, सब गोरा से ही हुई है। मनुष्य कितना सत्य है, और मनुष्य जिसके लिए दिन-रात लड़ते-झगड़ते हैं वह कितना असत्य है—इस बात का ज्ञान, भगवान् ने जिस दिन गोरा को प्रदान किया उसी दिन मुझे भी दे दिया। लोग मत-मतान्तर के झगड़े में जो बात करने की नहीं वही कर बैठते हैं। विचार कर देखो, ब्राह्म क्या, और हिन्दू ही क्या, मनुष्य के हृदय की तो कोई जाति नहीं है। वहीं भगवान् सब को

मिलाते हैं और आप भी आकर मिलते हैं। उस हृदय को हटाकर मन्त्र और मत के ऊपर ही मिलन का भार देने से क्या हृदय की एकता हो सकती है?

विनय ने आनन्दी के पैर की धूल अपने माथे में लगा कर कहा—माँ, तुम्हारी बात मुझे बहुत मीठी लगी। मेरा आज का दिन सार्थक हुआ।

[३७]

सुशीला की मौसी हरिमोहिनी के कारण परेश बाबू के घर में बड़ी अशान्ति उपस्थित हुई। इस अशान्ति का विस्तार-पूर्वक वर्णन करने के पहले हरिमोहिनी ने सुशीला को जो अपना परिचय दिया था वह यहाँ संक्षेप में लिखा जाता है।

मैं तुम्हारी माँ से दो वर्ष बड़ी थी। पिता के घर में हम दोनों बहनों के आदर की सीमा न थी। आदर क्यों न होता, उस समय अपने बाप के घर में केवल हमीं दोनों बालिकाओं ने जन्म लिया था। घर में और कोई लड़का-बच्चा न था। चचा हम दोनों बहनों को बराबर गोद में लिये रहते थे। धरती पर पैर रखने का हमें अवकाश नहीं मिलता था।

मेरी उमर जब आठ वर्ष की हुई, तब कृष्णनगर के विख्यात चौधरी घराने में मेरा विवाह हुआ। वे जैसे ही कुल में थे, वैसे ही धन में थे। किन्तु मेरे भाग्य में सुख न लिखा था।

ब्याह के समय लेन-देन की बात पर मेरे ससुर के साथ पिता जी का झगड़ा हो गया। मेरे पिता के उस अपराध से मेरे ससुर बहुत दिन तक बिगड़े रहे। मेरी ससुराल के सभी लोग कहने लगे—हम अपने लड़के का दूसरा ब्याह करा देंगे तब देखेंगे कि उस लड़की की क्या दशा होती है। मेरी दुर्दशा देख कर ही पिता ने प्रतिज्ञा की थी, अब कभी धनवान् के घर लड़की का ब्याह न करूँगा। इसीसे तुम्हारी माँ को ग़रीब के ही घर में ब्याह दिया था।

मेरे ससुर-कुल में बहुत लोग एक साथ रहते थे। नौ दस वर्ष की उम्र में ही मुझे बहुत लोगों की रसोई बनाने का भार दिया गया। ५०, ६० व्यक्ति नित्य भोजन करते थे। सबको खिला-पिला कर तब मैं किसी दिन सिर्फ़ रूखा सूखा भात, और किसी दिन दाल-भात खा कर ही रह जाती थी। किसी दिन लोगों को खिलाते-पिलाते दो बज जाते थे। किसी दिन कुछ मात्र दिन रह जाता था तब मैं खाती थी। भोजन करने के बाद फिर तुरन्त रात के लिए रसोई चढ़ानी पड़ती थी। रात में भी ग्यारह-बारह बजे के पूर्व मुझे कभी भोजन करने का अवकाश नहीं मिलता था। मेरे सोने के लिए कोई निर्दिष्ट जगह न थी। जिस दिन जहाँ जगह मिल जाती, वहीं सो रहती थी। किसी दिन तो चटाई बिछा कर रात भर जहाँ की तहाँ अकेली पड़ी रहती थी।

घर के सभी लोगों की मुझ पर अनादर-बुद्धि थी, मेरे

स्वामी भी उस पर कुछ ध्यान न देते थे। वे भी बहुत दिनों तक मुझको दूर ही दूर रख कर उन लोगों के साथ मिले रहे।

जब मेरी उम्र सत्रह वर्ष की हुई तब मेरी कन्या मनोरमा ने जन्म लिया। लड़की का जन्म होने से ससुर-कुल में मेरा अनादर और भी बढ़ गया। मेरे सब अपमान और दुःखों के बीच वही लड़की एक मात्र सान्त्वना और विश्राम का स्थान थी। मनोरमा को उसके बाप या घर के और लोग जैसा चाहिए, प्यार नहीं करते थे। इसीसे वह मुझी को अपना सर्वस्व जानती थी।

तीन वर्ष के बाद जब मेरे एक लड़का हुआ, तब से मेरी अवस्था का परिवर्तन होने लगा। तब से मैं गृहिणी कहलाने योग्य हुई। सब लोग मुझे कुछ कुछ आदर की दृष्टि से देखने लगे। मेरे सास न थी, मेरे ससुर भी मनोरमा के जन्म के दो वर्ष बाद संसार से विदा हो चुके थे। उनकी मृत्यु होते ही धन सम्पत्ति के लिए आपस में कलह उपस्थित हुआ। मेरे देवरों ने अपना अंश विभक्त कर लेने के लिए मुक़द्दमा दायर किया। आख़िर उस मामले में बहुत रुपये बरबाद करके हम सब पृथक् हुए।

अब मनोरमा के ब्याह का समय आया। अधिक दूर पर ब्याह करने से पीछे लड़की को देखना कठिन समझ कर मैंने कृष्ण-नगर से पाँच छः कोस के फ़ासले पर राधानगर में उसका ब्याह

कर दिया। दूलहा देखने में बड़ा सुन्दर था, जैसा रङ्ग था, वैसा ही सुडौल चेहरा था। उसके कुछ धन सम्पत्ति भी थी।

जैसे मेरा समय पहले अनादर और कष्ट में बीता था, वैसे ही कपार फूटने के पूर्व विधाता ने मुझे कुछ दिन सुख भी दिया था। अन्त में मेरे स्वामी मुझे बड़े आदर और श्रद्धा की दृष्टि से देखने लगे। मुझ से बिना सलाह लिये कोई काम न करते थे। इतना बड़ा सौभाग्य मेरा विधाता से न देखा गया, हैज़े की बीमारी में पड़कर चार ही रोज़ के भीतर मेरा लड़का और मेरे पति दोनों जाते रहे। कल्पना करने से भी जो दु:ख असह्य मालूम होता है, वह भी मनुष्यों को किसी समय सहना पड़ता है। यही दिखाने के लिए ईश्वर ने मुझे बचा रक्खा।

धीरे धीरे मैं अपने जमाई का परिचय पाने लगी। सुन्दर फूल के भीतर जो काला साँप छिपा था, उसे कोई कैसे जान सकता था। बुरे लोगों की संगति में पड़कर वह मद्य-पान करने लग गया, पर मेरी लड़की ने भी यह मुझसे किसी दिन न कहा। जमाई जब तब आकर, अपने घर की अनेक आवश्यकताएँ दिखाकर, मुझसे रुपया माँग ले जाता था। मुझे तो किसी के लिए रुपया जमा करने का कोई प्रयोजन न था, इसी से जब वह विनती करके मुझसे कुछ माँगता तब मुझे अच्छा ही लगता था। बीच बीच में मेरी लड़की मुझे रोकती थी, और फटकार कर कहती थी कि तुम इस तरह इन्हें रुपया देकर इनके स्वभाव को बिगाड़ती हो। रुपया हाथ आने से उसे

कहाँ कैसे उड़ा डालते हैं, इसका निश्चय नहीं। रुपया पाकर जो इनके जी में आता है, कर गुज़रते हैं। मैं समझती थी कि उसका पति मुझसे जो इस प्रकार रुपया लेता है, उससे अपने श्वशुर-कुल की अप्रतिष्ठा के भय से शायद मनोरमा मुझे रुपया देने से रोकती है।

तब मेरी ऐसी बुद्धि हुई कि मैं अपनी बेटी से छिपाकर जमाई को रुपया देने लगी। मनोरमा को जब इसका पता लगा तब उसने एक दिन मेरे पास आकर और रो रो कर अपने स्वामी के दुराचार की सब बातें कह सुनाईं। तब मैंने अपना सिर पीट डाला। दुःख की बात और क्या कहूँ? मेरे एक देवर ने ही उसे मद्य-पान की आदत लगा कर उसके स्वभाव को बिगाड़ दिया था।

मैंने जब रुपया देना बन्द कर दिया और जब मेरे जमाई को सन्देह हुआ कि उसकी स्त्री ही रुपया नहीं देने देती, तब उसके ऊधम का अन्त न रहा। उसने मेरी लड़की पर घोर अत्याचार करना आरम्भ किया। वह मेरी लड़की को भाँति भाँति के दुःख देने लगा. सबके सामने उसको मारने-पीटने और गालियाँ देने लगा। यह सब सुन कर मेरे दुःख की सीमा न रही। वह मेरी लड़की को दुःख न दे, इसलिए मैं अपनी लड़की से छिपा कर फिर उसे रुपया देने लगी। मैं जानती थी कि यह रुपया मैं पानी में फेंकती हूँ। किन्तु वह मनोरमा को हद दरजे की तकलीफ़ दे रहा है, यह ख़बर पाते ही मैं गला फाड़ फाड़ कर

रोती थी और जमाई को रुपया देकर उसे सन्तुष्ट रखने की चेष्टा करती थी।

आख़िर एक दिन—वह दिन मुझे ख़ूब याद है, माघ के कुछ दिन बाक़ी थे, सबेरे का समय था—मैं अपनी परोसिन के साथ बातें कर रही थी; उससे यही कह रही थी कि मेरे घर के पिछवाड़े जो बाग़ है उसमें आम की अच्छी मञ्जरी आई है। उसी दिन पिछले पहर मेरे दरवाज़े पालकी उतारी गई। देखा, मनोरमा ने हँसते हँसते आकर मुझे प्रणाम किया। मैंने कहा—कहो बेटी, क्या हाल है?

मनोरमा ने प्रसन्न मुख से कहा—हाल अच्छा न रहने से बेटी क्या माँ के घर में हँसी-खुशी से आ. सकती है?

मेरे समधी समझदार थे। उन्होंने मुझे कहला भेजा, बहू का पाँव भारी है। सन्तान प्रसव होने तक वह अपनी माँ के पास रहे तो अच्छा है। मैं ने सोचा, यही बात सच है, किन्तु मेरा जमाई इस अवस्था में भी मनोरमा को मार पीट कर अपने जी की जलन बुझाता था। इसलिए गर्भावस्था में अनिष्ट के भय से ही समधी ने अपनी पतोहू को मेरे पास भेज दिया, यह मैं न जानती थी। मनोरमा ने अपनी सास की शिक्षा के अनुसार मुझसे कोई बात न कही। जब मैं उसे अपने हाथ से तेल लगा कर स्नान कराना चाहती थी तब वह कोई न कोई बहाना कर के मुझे तेल लगाने न

देती थी। उसके कोमल अङ्ग पर जो चोट के दाग़ थे वह अपनी माँको दिखलाना नहीं चाहती थी ।

जमाई कभी कभी आकर मनोरमा को अपने घर लौटा ले जाने के लिए ज़िद करता था। मेरी बेटी मेरे पास रहने से रुपया खींचने में उसे बाधा होती थी। आख़िर उस बाधा को भी उसने न माना। रुपये के लिए मनोरमा के सामनेही वह मुझे बार बार दिक करने लगा। मनोरमा मुझे रुपया देने से बराबर रोकती थी कि "मैं तुमको किसी तरह रुपया देने न दूँगी।" किन्तु मैं स्वभाव की बड़ी दुर्बल थी, जमाई पीछे मेरी लड़की के ऊपर बहुत ख़फ़ा न हो, इस भय से मैं उसे बिना कुछ दिये न रहती थी।

मनोरमा ने एक दिन कहा—"माँ, तुम्हारा रुपया पैसा मैं अपने क़ब्ज़े में ही रक्खूँगी" और यह कह कर मेरे हाथ से कुञ्जी और बक्स जो कुछ था सब ले लिया। जमाई ने आकर जब मुझ से रुपया पाने की सुबिधा न देखी और जब मनोरमा को वह किसी तरह राज़ी न कर सका तब उसने ज़िद पकड़ी कि मैं अपनी स्त्री को अपने घर ले जाऊँगा। मैं मनोरमा से कहती थी, बेटी, उसे कुछ रुपया देकर बिदा कर दो, नहीं तो न जाने वह क्या कर बैठेगा। किन्तु मेरी मनोरमा एक ओर जैसी कोमल थी दूसरी ओर वैसी ही कठोर थी। वह कहती थी, नहीं रुपया किसी तरह नहीं दिया जायगा।

जमाई ने एक दिन आकर आँखें लाल करके कहा—कल

मैं पालकी भेज दूँगा, अगर अपनी बेटी को मेरे घर न भेज दोगी तो अच्छा न होगा। मैं पहले से ही कहे देता हूँ।

दूसरे दिन दो-पहर को पालकी आने पर मैंने मनोरमा से कहा—बेटी, अब देर करना उचित नहीं है, अगले हफ्ते में किसी को भेज कर तुम्हें बुला लूँगी।

मनोरमा ने कहा—आज जाने को मेरा जी नहीं चाहता, दिन के बाद इनसे आने को कहो, तब मैं जाऊँगी।

मैंने कहा—बेटी! पालकी लौटा देने से मेरे क्रोधी जामाता क्या आपे में रहेंगे? कुछ काम नहीं, तुम आज ही जाओ।

मनोरमा ने कहा—नहीं माँ, आज नहीं, मेरे ससुर कलकत्ते गये हैं। आधे फागुन तक वे लौट आवेंगे, तब मैं जाऊँगी।

मैंने न माना, कहा—नहीं, तुम जाओ।

तब मनोरमा लाचार होकर जाने को तैयार हुई। मैं उसके ससुराल के नौकर और कहारों को खिलाने-पिलाने में लगी। उसके जाने के पहले उसके पास कुछ देर बैठती सो भी न हुआ। उस दिन उसके साथ दो एक बात करती, अपने हाथ से उसको भूषण बसन पहिराती, उसका शृङ्गार करती, वह जो खाने को पसन्द करती सो उसे खिलाकर बिदा करती, ऐसा अवकाश मुझे न मिला। पालकी में सवार होने के पहले उसने पैर छूकर मुझे प्रणाम किया और कहा—माँ, मैं अब जाती हूँ।

मैं क्या जानती थी कि वह सचमुच मेरे घर से सदा के लिए जाती है। वह जाना नहीं चाहती थी, मैंने बरजोरी उसे

बेदा कर दिया। उस दुःख से आज तक मेरी छाती जल रही है, वह किसी तरह ठण्ढी नहीं होती।

वह उसी रात को ससुराल पहुँची, और उसी रात में उसका गर्भपात हुआ। गर्भपात होने के साथ उसकी भी मृत्यु हो गई। जब मुझे यह ख़बर मिली, उसके पूर्व्व ही उसकी लाश जला दी गई। मैं उसका मुँह भी देखने न पाई।

जो बात कहने की नहीं, करने की नहीं, सोचने की नहीं, सोच कर भी जिसका किनारा नहीं पाया जा सकता, रोकर भी जिसका अन्त नहीं हो सकता वह दुःख क्या साधारण दुःख है, वह तुम न जानोगी, जानने का कोई प्रयोजन भी नहीं।

मेरे तो एक एक कर सभी चले गये, किन्तु तो भी विपत्ति का अन्त न हुआ। मेरे स्वामी और पुत्र की मृत्यु होते ही देवर लोग मेरी सम्पत्ति के ऊपर दाँत गड़ाने लगे। यद्यपि वे जानते थे कि मेरी मृत्यु के अनन्तर मेरी धन-सम्पत्ति सब उन्हीं की होगी, तोभी उतने दिन तक धैर्य धारण करना उनके लिए कठिन हो गया। मैं इस में किस को दोष दूँ? सब दोष मेरे फूटे कपाल का ही था। मेरे सदृश अभागिन का जीता रहना ही मेरा एक भारी अपराध था। संसार में जो लोग अनेक प्रकार के स्वार्थों से सम्बन्ध रखते हैं वे मेरे सदृश अनावश्यक प्राणी का जीना क्यों पसन्द कर सकेंगे?

जब तक मनोरमा जीती रही तब तक मैं देवरों के भुलावे की बातों में न आई। वे लोग मेरी सम्पत्ति हथियाने के लिए

भाँति भाँति की चेष्टा करने लगे । परन्तु मैं उन लोगों के प्रपञ्च में न फँस कर अपनी सम्पत्ति की—जो मेरे अधिकार में थी—बराबर रक्षा करती रही। मैं ने यही अपने मन में निश्चय किया था कि जब तक जीती हूँ क्यों अपना धन बरबाद करूँ। ख़र्च करके जो बचेगा वह मनोरमा को दे जाऊँगी। मैं अपनी कन्या के लिए रुपया जमा कर रही हूँ। यह सुन कर मेरे देवरों का जी जल उठा। वे लोग समझते थे मानों मैं उन्हों का धन चुरा कर बेटी के लिए जमा कर रही हूँ। मेरे स्वामी का कुमुदकान्त नामक एक पुराना विश्वासी कर्मचारी था, वही मेरा सच्चा सहायक था। जब मैं अपने धन का कुछ अंश उन्हें देकर आपस में मेल कराना चाहती थी तब वह मुझे रोकता था और इस में अपनी सलाह देने को कभी राज़ी न होता था। वह कहता था, देखेंगे कि हमारे अंश का एक पैसा भी कोई कैसे ले सकता है। आख़िर मेरा हक़ हड़पने के लिए देवरों की ओर से झगड़ा होने लगा। इसी समय मेरी लड़की का देहान्त हो गया। उसके दूसरे ही दिन मेरे मँझले देवर ने आकर मुझे वैराग्य लेने का उपदेश दिया। कहा—भाभी! ईश्वर ने तुम्हें जिस दशा में पहुँचा दिया है, उससे तुम्हें अब घर रहना उचित नहीं। अब तुम किसी तीर्थ में जाकर अपने जीवन का शेष समय बिताओ। धर्म-कर्म में मन लगाओ। हम लोग तुम्हारे खाने-पहिरने का प्रबन्ध कर देंगे।

मैं ने अपने गुरु-महाराज को बुलाया और उनसे कहा—महाराज जी, मैं इस असह्य यन्त्रणा से कैसे उद्धार पाऊँगी, उसका उपाय बता दीजिए। घर के किसी काम में मेरा जी नहीं लगता। मेरे हृदय में शोक की आग दिन-रात जलती रहती है। मैं जहाँ जाती हूँ, जिधर जाती हूँ, कहीं मेरी यह ज्वाला शान्त नहीं होती। इस यन्त्रणा से मुक्त होने का कोई मार्ग नहीं सूझता।

गुरु महाशय ने मुझ को हरिमन्दिर के भीतर ले जाकर कहा—आज से तुम इन का भजन करो। ये गोपी-रमण जी ही तुम्हारे स्वामी, पुत्र, कन्या सब कुछ हैं। इनकी सेवा करने ही से तुम्हारे सब दुःख दूर होंगे।

तब से मैं दिन-रात ठाकुर जी की सेवा में हाज़िर रहने लगी। उनको मैं अपना मन सौंप देने की चेष्टा करने लगी। किन्तु जब उन्हें मेरा मन लेना पसन्द न था तब मैं उनको कैसे अपना मन देती? मुझ अभागिन का मन लेकर वे क्या करते?

मैं ने कुमुदकान्त को बुलाकर कहा—कुमुद बाबू, मैंने अपनी सारी सम्पत्ति देवरों को लिख देने का ही निश्चय किया है। वे वृत्ति के रूप में हर महीने मुझे कुछ रुपया दे दिया करेंगे।

कुमुदकान्त ने कहा—यह कभी नहीं हो सकता। आप स्त्री हैं। ये बातें आप क्या जानें?

मैंने कहा—मैं अब सम्पत्ति लेकर क्या करूँगी?

कुमुद—यह आप क्या कहती हैं? जो आपका अंश है वह क्यों छोड़ूंगी? इस तरह का पागलपन मत कीजिए।

कुमुदकान्त मेरे हक़ को किसी के हाथ देना नहीं चाहता था। मैं बड़ी मुश्किल में पड़ी। ज़मींदारी का काम मुझे विष से भी बढ़ कर भयङ्कर मालूम हो रहा था। किन्तु संसार में मेरा यही एकमात्र कुमुद विश्वासी था। मैं उस के मन को कष्ट देना भी नहीं चाहती थी। उसने कैसे कैसे दु:ख झेल कर मेरे अंश को बचाया है, यह सोच कर मैं ने उसकी बात काट कर अपने मन से कोई काम करना उचित न समझा।

आखिर एक दिन मेरे मन में क्या आया! मैं ने कुमुद-कान्त से छिप कर देवरों के कहने पर एक कागज़ पर दस्त-ख़त कर दिया। उसमें क्या लिखा था, यह मैं अच्छी तरह नहीं जान सकी। मैंने सोचा, मुझे सही करने में क्या डर है। मैं कौन सी वस्तु अपने पास रखना चाहती हूँ, जिस के चले जाने से मुझे कष्ट होगा। जब मैं यों ही अपनी सम्पत्ति देने को तैयार हूँ तब कोई ठग कर ही क्या करेगा? सब तो मेरे ससुर का ही है। उन का धन उनके बेटे पावें, इस में मेरा क्या?

लिखा-पढ़ी, रजिस्टरी आदि सब हो गई। तब मैंने कुमुद-कान्त को बुला कर कहा—आप रुष्ट न हों, मेरे पास जो कुछ था, सब लिख पढ़ दिया। मुझे अब किसी से कुछ प्रयोजन नहीं।

कुमुदकान्त ने चौंककर कहा—ओफ़! यह क्या किया!

जब उसने दस्तावेज़ की नक़ल पढ़ी, तब उसने जाना कि मैंने सच कहा है, सत्यही मैंने अपना सब अधिकार त्याग दिया है। यह जान कर कुमुदकान्त के क्रोध की सीमा न रही। जब से उस के मालिक की मृत्यु हुई तब से मेरा हक़ बचाना ही उसके जीवन का एक प्रधान उद्देश था। उसकी सारी बुद्धि और शक्ति उसी हक़ की हिफ़ाज़त में लगी रहती थी। इस हक़ को लेकर उसने कितने मामले-मुक़दमे लड़े, कितने वकील-मुख़तारों के घर देखे, कितने कष्ट सहे, इसका ठिकाना नहीं। मेरे ही काम के पीछे वह दिन-रात बावले की तरह फिरा करता था और उसी में सुख पाता था। उसे अपने घर का काम देखने को भी समय न मिलता था। वह हक़ जब निर्बोध स्त्री के क़लम की नोक के एक ही घसीटे में उड़ गया तब कुमुदकान्त का सब किया धरा व्यर्थ हो गया। उसके मन को शान्त करना असंभव हो गया।

उसने हताश होकर कहा—जाओ, आज से तुम्हारे साथ मेरा सम्बन्ध टूट गया। मैं जाता हूँ।

मैंने देखा, कुमुदकान्त भी मुझे छोड़ कर जा रहा है। क्या मेरा भाग्य ऐसा खोटा है कि दुःख में एक भी सहारा मेरे पास न रहा! मैं अपने इस दुर्भाग्य पर बार बार पछताने लगी। मैंने अपनी भूल स्वीकार कर कुमुदकान्त से कहा—आप मुझ पर क्रोध न करें। मेरे पास कुछ रुपया

एकत्रित है। मैं उस में से अभी आप को पाँच सौ देती हूँ। आपकी पतोहू जब आप के घर आवे तब उसके लिए मेरे आशीर्वाद के रूप में इन रुपयों का उसे गहना गढ़ा दीजिएगा।

कुमुदकान्त ने कहा—मुझे अब इसकी ज़रूरत नहीं। मेरे मालिक का जब सब कुछ चला गया तब ये पाँच सौ रुपये लेकर मैं कौन सुख भोगूँगा। ये आप रहने दीजिए। —यह कह कर मेरे स्वामी का एक सच्चा शुभचिन्तक भी मुझे छोड़ कर चला गया।

मैं पूजा-घर में रहने लगी। मेरे देवरों ने मुझ से कहा—तुम किसी तीर्थ में जाकर रहो।

मैंने कहा—ससुर का घर ही मेरे लिए तीर्थ है। मेरे ठाकुर जी जहाँ रहेंगे वहीं मैं भी रहूँगी।

मैं जो अपने अधिकार में दो एक घर लिये बैठी थी, यह भी उन लोगों से न देखा गया। वे मेरे घरों में अपनी सलतनत जमाने के लिए व्यग्र हो उठे। मेरे किस घर को किस काम में लावेंगे यह उन लोगों ने पहले ही ठीक कर लिया था। आख़िर एक दिन उन्हों ने कहा—जहाँ तुम्हारा जी चाहे अपने ठाकुर को ले जाओ। हम लोग उसमें दस्तन्दाज़ी न करेंगे।

जब मैं इसमें कुछ संकोच दिखाने लगी तब उन्हों ने कहा—यहाँ रहने से तुम्हें खाना-कपड़ा कौन देगा?

मैंने कहा—क्यों? तुम लोगों ने जो परवरिश मुक़र्रर कर दी है, वही मेरे लिए काफ़ी है।

उन्होंने कहा—दस्तावेज़ में कोई परवरिश का ज़िक्र नहीं है।

तब मैं अपने ठाकुरजी को लेकर अपना विवाह होने के ठीक ३४ वर्ष बाद अपने ससुर के घर से चल दी। कुमुदकान्त की खोज करने पर मालूम हुआ कि वह मेरे चलने के पूर्व ही वृन्दावन चला गया।

मैं गाँव के तीर्थ-यात्रियों के साथ काशी गई। किन्तु इस पापी मन को कहीं शान्ति न मिली। मैं ठाकुर जी से नित्य पुकार कर कहती थी—हे नाथ! मेरे स्वामी मेरे बाल्यकाल में मेरे साथ जैसा सत्य भाव धारण किये हुए थे, तुम भी वैसा ही सत्य भाव धारण कर मुझे दर्शन दो। किन्तु उन्होंने मेरी प्रार्थना न सुनी। मेरे हृदय का ताप दूर न हुआ। मैं दिन-रात रोया करती थी। हाय! मनुष्य के प्राण भी कैसे कठिन होते हैं।

मैं आठ वर्ष की उम्र में ससुराल गई थी, फिर लौट कर बाप के घर न जा सकी। तुम्हारी माँ के विवाह में जाने के लिए मैंने बहुत चेष्टा की परन्तु सब व्यर्थ हुआ। इस के अनन्तर पिता जी के पत्र से तुम सबों के जन्म का हाल मालूम हुआ। मैंने अपनी बहिन के मरने का भी संवाद सुना। उसे सुन कर मुझे जो दुःख हुआ सो क्या बताऊँ। मातृ-हीन होने पर भी तुम सबों को गोद में खिलाने का अवसर ईश्वर ने मुझे न दिया।

तीर्थों में भ्रमण करके भी जब मैंने देखा कि माया मेरा साथ नहीं छोड़ती, हृदय का एक अवलम्ब पाने के लिए अब तक मेरे मन में तृष्णा लगी है तब मैं तुम लोगों की खोज करने लगी। यद्यपि मैंने सुना था कि तुम्हारे पिता ने सनातन धर्म को छोड़, समाज-बन्धन को तोड़, कुलाचार से मुँह मोड़, ब्राह्म-समाजियों से नाता जोड़ लिया है तथापि तुम लोगों की ममता मेरे मन से न गई। तुम्हारी माँ मेरी सगी बहन थी। एक ही माँ के पेट से हम दोनों उत्पन्न हुई थीं।

काशी में एक सज्जन पुरुष के द्वारा तुम्हारा पता पा कर मैं यहाँ आई हूँ। सुना है, परेश बाबू भी देवताओं को नहीं मानते किन्तु भगवान् जो इन पर प्रसन्न हैं, यह इनका चेहरा देखने ही से प्रकट होता है। केवल पूजा करने ही से देवता प्रसन्न नहीं होते, यह मैं अच्छी तरह समझ गई हूँ। परेश बाबू ने किस तरह उन्हें वश में कर लिया है, यह मैं उन से पूछूँगी। जो हो, मैं अब अकेली हो कर किसी तीर्थ में रहना नहीं चाहती। ठाकुर जी जब दया करना चाहें करें। किन्तु तुम लोगों से अलग होकर मैं अब न रहूँगी।

[३८]

परेश बाबू ने शिवसुन्दरी के परोक्ष में हरिमोहिनी को अपने घर में टिका लिया था और छत के ऊपर वाली

कोठरी में उसे जगह देकर ऐसा प्रबन्ध कर दिया था जिसमें उसके भजन भाव में कोई विघ्न बाधा न हो।

शिवसुन्दरी जब लौट आई तब वह अपने घर में एक वैष्णवी को टिकी देख जल उठी। उसने परेशचन्द्र से तीव्र स्वर में कहा --आप ने यह क्या किया है ? मैं एक परदेशी स्त्री को अपने यहाँ रहने देना पसन्द नहीं करती।

परेश बाबू ने कहा—हम लोगों का रहना तुम पसन्द करती हो और एक अनाथ विधवा का रहना पसन्द नहीं करती ?

शिवसुन्दरी जानती थी कि परेश बाबू को कुछ भी व्यावहारिक ज्ञान नहीं है। संसार में किस के रहने से आराम और किसके रहने से कष्ट होता है, इस विषय में वे कभी कुछ विचार न करते थे। बल्कि कभी कभी ऐसा अटपट काम कर बैठते थे जिससे घर के लोगों को बहुत दु:ख झेलना पड़ता था। इस के लिए उनके ऊपर क्रोध करो या रोओ-कलपो, वे एकदम पाषाण-मूर्ति की भाँति स्थिर बने रहते थे। ऐसे मनुष्य पर कोई क्रोध करके ही क्या कर सकता है, जिस के साथ झगड़ा करना असंभव है। जो किसी तरह अपनी शान्ति का भङ्ग करना नहीं चाहते उनसे घर का व्यवहार कैसे चल सकता है ? कोई स्त्री उनके घर का काम कैसे चला सकती है ?

सुशीला मनोरमा की प्राय: समवयस्का थी। हरिमोहिनी सुशीला को मनोरमा की ही भाँति देखने लगी और उसके साथ हरिमोहिनी का स्वभाव भी मिल गया था। सुशीला

बड़ी शान्त प्रकृति की थी। किसी किसी समय हरिमोहिनी उसे पीछे से आते देख चौंक उठती थी। उसे जान पड़ता था कि मनोरमा ही मेरे पास आरही है। किसी किसी दिन सायंकाल के अन्धकार में वह अकेली बैठकर चुप चाप रोया करती थी। ऐसे समय में सुशीला जब उस के पास जाती तब वह आँख मूँद कर उसे अपनी छाती से लगा कर कहती थी—अहा! मैं समझती हूँ जैसे मैं उसी को हृदय से लगाये हुए हूँ। मेरी मनोरमा मेरे घर से जाना नहीं चाहती थी, मैंने उसे ज़बर्दस्ती बिदा कर दिया था। क्या इस जन्म में मेरे उस अपराध की शान्ति न होगी? क्या मेरे उस पाप का इस देह से प्रायश्चित्त न हो सकेगा? जो दण्ड पाना था वह तो पाही चुकी हूँ। इसीसे शायद वह फिर लौट आई है। देखो, वह हँसती हुई चली आरही है। "आओ बेटी, आओ! तुम्हीं मेरी बेटी हो। तुम्हीं मेरे हृदय की मणि हो," यह कह कर सुशीला के मुँह पर बड़े प्यार से हाथ फेर कर और उसके मुँह को चूम कर आँसू बहाने लगती थी। सुशीला की आँखों में भी आँसू उमड़ आते थे। वह उसके गले से लिपट कर कहती थी—मौसी, मैं भी तो माता का सुख बहुत दिन नहीं भोग सकी। आज वही खोई हुई माँ मुझे मिल गई है। मैं समझती हूँ, वही मुझे देखने को आई है।

हरिमोहिनी कहती थी—बेटी, ऐसी बात मुँह से न निकालो। तुम्हारी बात सुनने से मुझे इतना हर्ष होता है कि

मैं कह नहीं सकती। क्या जानूँ, ईश्वर कहीं मेरा यह सुख भी न छीन लें, इस भय से कलेजा काँपता है। हे भगवन्! मुझे क्षमा करो, मैं किसी से कोई सम्बन्ध रखना नहीं चाहती। हृदय को पत्थर की तरह कठोर बना कर रहना चाहती हूँ परन्तु मैं ऐसा करने में समर्थ नहीं होती। मैं जितना ही भागने का यत्न करती हूँ, उतनाही मुझे माया अपनी ओर खींच लाती है। मैं हृदय की बड़ी दुर्बल हूँ। मुझ पर दया करो। मुझ ग़रीबिनी को अब मत सताओ। अरी राधा (सुशीला), मुझे छोड़ दो, मुझे इस तरह मत जकड़ रक्खो। मैं संसार में किसी से नाता जोड़ना नहीं चाहती। हे मेरे गोपी-रमण जी! हे मेरे जीवन-धन! हे मेरे गोपाल! हे मेरे नीलमणि! क्या फिर मुझे विपत्ति में डालना चाहते हो? बचाओ! मुझे इस माया-जाल से छुड़ाओ!

सुशीला कहती थी, "तुम मुझे किसी तरह हटा न सकोगी, मैं तुम्हें अब कभी न छोड़ूँगी। मैं बराबर तुम्हारे पास बैठी रहूँगी," यह कह कर वह उस की छाती पर अपना सिर रख बच्चे की तरह चुप हो रहती थी।

दो ही दिन में सुशीला के साथ उसकी मौसी का ऐसा गहरा सम्बन्ध हो गया कि सभी लोग दंग हो रहे।

शिवसुन्दरी को यह देखकर भी क्रोध हो आया। देखो तो, लड़की दो ही दिन में उस के साथ ऐसे हिल मिल गई है, मानों हम लोगों से उसका कोई सम्बन्ध ही न हो! मैंने इतने

दिन इसको बेटी की तरह पाला-पोसा, सो कुछ नहीं। इतने दिन मौसी कहाँ थी? बचपन से ही मैंने इसे सिखा-पढ़ाकर होशियार किया है। किन्तु आज मौसी के पीछे एकदम ढुल पड़ी है। दिन-रात उसी के पास बैठी रहती है। मैं उन (परेश) से बराबर कहती आई हूँ कि आप सुशीला को अच्छी कह कर प्रशंसा करते हैं, सो बाहर से वह भले ही अच्छी हो, किन्तु भीतर उसका साफ़ नहीं है। उसके मन का कोई अन्त नहीं पा सकता। इतने दिन तक हम लोगों ने उसका जो किया, सब व्यर्थ हुआ।

शिवसुन्दरी जानती थी कि परेश बाबू मेरे दुःख पर ध्यान न देंगे। इतना ही नहीं, हरिमोहिनी के ऊपर क्रोध प्रकट करने से परेश बाबू से अपमानित होने में भी उसे कुछ सन्देह न था। इसी से उसका क्रोध और भी बढ़ गया। परेश कुछ भी कहें, किन्तु मेरा मत अधिकांश बुद्धिमान् लोगों से मिलता है, इस को प्रमाणित करने के लिए शिवसुन्दरी अपना दल बढ़ाने की चेष्टा करने लगी। अपने समाज के क्या प्रधान क्या अप्रधान सभी लोगों के आगे वह हरिमोहिनी के विषय में समालोचना करने लगी। हरिमोहिनी हिन्दू है, वह देवता पूजती है, मेरी लड़कियाँ उसका यह कुसंस्कार देखकर बिगड़ जायँगी। इस पर वह अनेक प्रकार की टीका-टिप्पणी करने लगी।

सिर्फ़ लोगों के आगे समालोचना करके शिवसुन्दरी ने संतोष नहीं किया, वरन् वह सब प्रकार से हरिमोहिनी को तक-

लीफ़ भी देने लगी। हरिमोहिनी का चौका-बर्तन करने और पानी लाने के लिए एक ग्वाला नौकर था। उसको वह हरिमोहिनी के काम के समय कोई दूसरा काम करने को भेज देती थी। उसकी खोज होने पर कहती थी, क्यों, रामदीन तो है। रामदीन जाति का दुसाध था। शिवसुन्दरी जानती थी कि उसके हाथ का जल हरिमोहिनी ग्रहण न करेगी। किसी के यह कहने पर वह बोलती थी—"इतने नेम से रहना चाहती है तो हमारे ब्राह्म घर में क्यों आई? हमारे यहाँ यह सब नेम-धरम न चलेगा? हमारे यहाँ जाति-पाँति का विचार नहीं है। हम लोग छूआ-छूत नहीं मानतीं। हमारे घर में रह कर हिन्दू-धर्म निभाना चाहेगी, तो कैसे निभेगा! मैं किसी तरह उसे इस काम में सहायता न दूँगी। ऐसे हिन्दू लोगों के रहने से ब्राह्मधर्म में शिथिलता पहुँच सकती है। इन्हीं सब अड़चनों से ब्राह्म-समाज की यथेष्ट रूप से उन्नति होने नहीं पाती। जहाँ तक हो सकेगा, मैं अपने साध्यानुसार ब्राह्मधर्म को अक्षुण्ण रखने की चेष्टा करूँगी और जिससे ब्राह्म-समाज में शिथिलता आने की सम्भावना होगी वह काम मैं कभी न करूँगी। इसमें यदि कोई मेरी भूल समझे तो वह भी मुझे स्वीकार है। इसके लिए यदि मेरे बन्धुवर्ग भी बिगड़ उठें तो यह भी मुझे स्वीकार है। संसार में जिन महापुरुषों ने जो बड़े बड़े काम किये हैं उनको कितनी ही आपदायें और निन्दा सहनी पड़ी है।" वह इन बातों की सर्वत्र घोषणा करने लगी।

शिवसुन्दरी अनेक प्रकार के कष्ट देकर भी हरिमोहिनी को न भगा सकी। हरिमोहिनी ने मानों कठिन से कठिन कष्ट सहने का प्रण कर लिया था। जब हरिमोहिनी ने देखा कि पानी लाने वाला कोई नहीं है तब उसने रसोई बनाना एक दम छोड़ दिया। वह ठाकुरजी को दूध और फलों का भोग लगा कर प्रसाद-स्वरूप कुछ खाकर दिन काटने लगी। सुशीला को यह देख बड़ा दुःख हुआ। मौसी ने उसे बहुत तरह से समझा कर कहा—बेटी, तुम खेद मत करो, यह मेरे लिए बहुत अच्छा हुआ है। मैं यही चाहती थी। इसमें मुझे कोई कष्ट नहीं, आनन्द ही होता है।

सुशीला ने कहा—अगर मैं दूसरी जाति के हाथ का छूआ खाना छोड़ दूं तो तुम मुझे अपना काम करने दोगी?

हरिमोहिनी ने कहा—बेटी, तुम मेरे लिए अपना धर्म क्यों छोड़ोगी? तुम जिस धर्म को मानती हो उसीके अनुसार चलो। मैं जो तुमको अपने पास बराबर हाज़िर पाती हूँ, तुम्हें छाती से लगा कर जी ठंढा करती हूँ यह क्या मेरे लिए थोड़ा सुख है? परेश बाबू पिता के तुल्य तुम्हारे लिए पूज्य हैं। तुम्हारे गुरु हैं। उन्होंने तुम को जो शिक्षा दी है तुम वही मान कर चलो। उसी में भगवान् तुम्हारा कल्याण करेंगे।

हरिमोहिनी शिवसुन्दरी का सब उपद्रव इस तरह सहने लगी, जैसे वह उसे कुछ समझती ही न हो। परेश बाबू जब नित्य सबेरे उसके पास आकर पूछते थे—कहो कुछ तकलीफ़

तो नहीं होती, तब वह कहती थी—नहीं, मैं बड़े आराम से हूँ।

किन्तु शिवसुन्दरी का अनुचित व्यवहार सुशीला को असह्य होने लगा। वह किसी के पास रोकर अपना दुखड़ा सुनाना न चाहती थी। विशेष कर परेश बाबू से शिवसुन्दरी के कुव्यवहार की शिकायत करना उसके लिए असंभव था। वह चुपचाप सब सहने लगी। भूल कर भी इस विषय में कोई बात कह देने से उसे पीछे बड़ा संकोच होता था।

अन्त में इसका परिणाम यह हुआ कि सुशीला धीरे धीरे शिवसुन्दरी के हाथ से निकल कर हरिमोहिनी के हाथ का खिलौना बन गई। दिन भर वह उसी के पास बैठी रहती थी। उसी के हाथ का दिया कुछ प्रसाद पा कर रह जाती थी। आख़िर सुशीला का यह कष्ट हरिमोहिनी से न देखा गया। हार कर उसे फिर रसोई बनाने का प्रबन्ध करना पड़ा। सुशीला ने कहा—मौसी, तुम मुझे जिस तरह रहने को कहोगी, मैं उसी तरह रहूँगी। किन्तु तुम्हारे लिए जल मैं अपने हाथ से ला दूँगी। यह काम मैं दूसरे को न करने दूँगी।

हरिमोहिनी ने कहा—बेटी! मैं अपने लिए कुछ नहीं कहती किन्तु इस जल से ठाकुरजी की पूजा कैसे करूँगी!

सुशीला—मौसी, क्या तुम्हारे ठाकुरजी भी जाति-पाँति मानते हैं? क्या उन्हें भी प्रायश्चित्त करना होगा? उनका भी कोई समाज है क्या?

आखिर एक दिन सुशीला की भक्ति के आगे हरिमोहिनी को हार माननी पड़ी। उसने सुशीला की सेवा सम्पूर्ण रूप से ग्रहण की। सतीश भी बहन की देखा-देखी मौसी की रसोई में ही खाने लगा। इस तरह ये तीनों मिलकर परेश बाबू के घर में अपना एक अलग ही आश्रम स्थापित कर रहने लगे। सिर्फ़ ललिता इन दोनों आश्रमों के बीच सेतुरूप होकर रहती थी। शिवसुन्दरी अपनी और बेटियों को हरिमोहिनी के पास न जाने देती थी किन्तु ललिता को रोक रखना उसके लिए कठिन था।

[३६]

शिवसुन्दरी अपनी ब्राह्म-भगिनियों को सभा के मिस अपने घर बुलाने लगी। बीच बीच में उसकी छत के ऊपर सभा होती थी। हरिमोहिनी अपनी स्वाभाविक सरलता के साथ उन स्त्रियों की आदर-पूर्वक अभ्यर्थना करती थी, किन्तु वे जो उसका अनादर करती थीं, यह उससे छिपा न रहा। शिवसुन्दरी हिन्दुओं के सामाजिक आचार-व्यवहार पर उस के सामने ही तीव्र समालोचना करती थी; और अनेक स्त्रियाँ हरिमोहिनी के प्रति विशेष लक्ष्य करके उस समालोचना में योग देती थीं।

सशीला अपनी मौसी के पास रह कर ये सब आक्रमण

चुपचाप सह लेती थी। केवल वह अपने मन का भाव किसी तरह प्रकट कर देती थी कि मैं भी अपनी मौसी के साथ हूँ। जिस दिन भोजन का कुछ विशेष आयोजन होता उस दिन शिवसुन्दरी जब सुशीला को खाने के लिए बुलाती थी, तब वह कहती थी—मैं न खाऊँगी !

"यह क्या! मालूम होता है, हम लोगों के साथ बैठकर तुम न खाओगी?"

सुशीला—नहीं।

शिवसुन्दरी कहती थी—आज कल सुशीला बड़ी हिन्दू हो गई है यह तुम लोग नहीं जानतीं। अब यह हम लोगों का छूआ नहीं खाती !

सुशीला भी हिन्दू हो गई! यह ज़माना क्या नहीं दिखाता? अभी और कितना क्या देखना है; इसे कौन जानता है।

हरिमोहिनी किसी किसी दिन व्यस्त होकर कह उठती थी—बेटी, राधा रानी, जाओ, तुम खाने को जाओ।

सुशीला अपने समाज में हरिमोहिनी के कारण इस तरह फटकारी जा रही थी, यह उसके लिए बड़ा ही कष्टकर हुआ। किन्तु सुशीला इस कष्ट को कुछ जी में न लाती थी। एक दिन कोई ब्राह्म-स्त्री जूता पहिरे कुतूहल-वश हरिमोहिनी के घर में जाने लगी। सुशीला रास्ता रोक कर खड़ी हो गई और बोली—इस घर में मत जाना।

क्यों ?

इस घर में उनके ठाकुर जी हैं ।

ठाकुर जी हैं ! मालूम होता है, तुम रोज़ ठाकुर पूजती हो !

हरिमोहिनी ने कहा—हाँ, रोज़ पूजा करती हूँ ।

ठाकुर जी पर तुम्हारी भक्ति है ?

मेरा वैसा भाग्य कहाँ जो उन पर मेरी भक्ति हो ? भक्ति होती तो मैं अपने जन्म को सफल समझती ।

उस दिन ललिता भी वहाँ मौजूद थी । उसने मुँह लाल करके प्रश्नकारिणी स्त्री से पूछा—तुम जिसकी उपासना करती हो, क्या उसकी भक्ति नहीं करतीं ?

वाह ! करती क्यों नहीं ?

ललिता ने सिर हिला कर कहा—भक्ति तो तुम क्या करोगी ?—भक्ति नहीं करती हूँ, यह भी तुम नहीं जानती ।

इस पर वह कुछ न बोली और चुप चाप वहाँ से चली गई ।

हरिमोहिनी ने अनेक यत्न किये जिस में सुशीला आचार-व्यवहार में अपने दल से पृथक् न हो, किन्तु वह किसी तरह कृत-कार्य न हो सकी ।

इसके पूर्व हरि बाबू और शिवसुन्दरी के बीच कुछ मन-मुटाव रहता था किन्तु वर्तमान घटना से दोनों में खूब मेल-जोल हो गया । शिवसुन्दरी ने कहा—कोई कुछ कहे, ब्राह्म-समाज के आदर्श को विशुद्ध रखने के लिए यदि कोई हृदय से साकांक्ष है तो वह हरि बाबू ही है । हरि बाबू ने भी ब्राह्म-समाजी

परिवार को सब प्रकार निष्कलङ्क रखने का पूर्ण यश शिवसुन्दरी को ही दिया। उसकी इस प्रशंसा के भीतर परेश बाबू के प्रति एक विशेष आक्षेप था।

हरि बाबू ने एक दिन परेश बाबू के सामने ही सुशीला से कहा—सुना है कि आज कल तुमने ठाकुर का प्रसाद खाना आरम्भ किया है?

सुशीला का मुँह क्रोध से लाल हो गया किन्तु ऐसा भाव करके—मानों उसने कुछ सुना ही नहीं—वह टेबल पर रक्खे क़लम-दान, दावात और पुस्तकों को सँवार कर रखने लगी। परेश बाबू ने एक बार कारुण्य-पूर्ण दृष्टि से सुशीला के मुँह की ओर देख कर हरिश्चन्द्र से कहा—हरि बाबू, हम लोग जो कुछ खाते हैं सभी तो ठाकुरजी का ही प्रसाद है।

हरि ने कहा—किन्तु सुशीला हम लोगों के ठाकुर जी को छोड़ने का उद्योग कर रही है।

परेश—अगर यही बात है तो इसके विरुद्ध भाषण करने से क्या होगा? उस में बाधा डालने से क्या उसका प्रतिकार होगा?

हरि बाबू—जो मनुष्य प्रवाह में बहा जा रहा है उसे ऊपर लाने की चेष्टा करना भी तो उचित है।

परेश—उस बहते हुए व्यक्ति के सिर पर ढेले मारने को ही ऊपर लाने की चेष्टा नहीं कहते। हरि बाबू, आप निश्चिन्त रहिए, मैं सुशीला को इतने दिनों से देखता आता हूँ।

अगर वह बे-रास्ते चलती तो आप लोगों से पहले मैं ही जानता और इस तरह निश्चिन्त नहीं रहता।

हरि ने कहा—सुशीला तो यहीं है। आप उसी से क्यों नहीं पूछते? सुना है, वह अब सब के हाथ का छूआ नहीं खाती। क्या यह झूठ है?

सुशीला ने अनावश्यक पुस्तक-स्थापन-कार्य की ओर से मन को हटाकर कहा—बाबूजी भी यह जानते हैं कि मैं सबके हाथ का छूआ नहीं खाती। यदि वे मेरे इस आचरण को बुरा नहीं मानते तो दूसरे के मानने ही से क्या? यदि आप को मेरा यह आचरण अच्छा न लगे तो, आप की ख़ुशी है, जहाँ तक जी चाहे मेरी निन्दा कीजिए किन्तु पिता जी को क्यों दिक़ कर रहे हैं? वे आप लोगों की उद्दण्डता को कितना सहन करते हैं, क्या आप यह नहीं जानते? शायद उसी का यह प्रतिफल है?

हरि बाबू विस्मित हो कर सोचने लगा—सुशीला ने भी आजकल बातें करना सीख लिया है!

परेश बाबू बड़े शान्तिप्रिय थे। इस लिए वे अपने या दूसरे के सम्बन्ध में अधिक आलोचना करना पसन्द नहीं करते थे। अब तक उन्होंने ब्राह्म-समाज का कोई प्रधान पद ग्रहण नहीं किया, वे समाज-सम्बन्धी किसी झंझट में न पड़ चुप-चाप अपना जीवन बिता रहे हैं। हरि बाबू उनके इस भाव को उत्साह-हीनता और उदासीनता में परिगणित कर

कभी कभी इसके लिए उपदेश के तौर पर उनसे कुछ कहा करता था। इसके उत्तर में परेश बाबू कहते थे, ईश्वर ने चर और अचर दो श्रेणियां के पदार्थों को ही सिरजा है। मैं एक-दम अचर हूँ, मेरे ऐसे लोगों के द्वारा जो काम होगा वह ईश्वर अपने आप करा लेंगे। जो संभव नहीं है, उसके लिए चञ्चल होने से कोई लाभ नहीं। मेरी उम्र अब बुढ़ापे की है। मुझ में कितनी क्या शक्ति है, उसकी भी मीमांसा हो गई है। अब मुझ को कर्म-क्षेत्र में प्रवृत्त कराने की चेष्टा से कोई फल न होगा।

हरि बाबू की धारणा थी कि हम चाहें तो शून्यहृदय में भी उत्साह का संचार कर सकते हैं। जड़बुद्धि को कर्त्तव्य-पथ पर ले आने और मार्ग-भ्रष्ट को अनुताप से विह्वल करने की उसमें एक स्वाभाविक योग्यता थी। उसकी अत्यन्त बलवती और एकाग्र शुभ-कामना को कोई अधिक दिन तक रोक नहीं सकता था। उसका ऐसा ही विश्वास था। उसके समाज के लोगों के व्यक्तिगत-चरित्र में जो अच्छा भला परिवर्तन हुआ है, उसने किसी न किसी तरह उसका प्रधान कारण अपने ही को मान लिया है। उसका अप्रकट प्रभाव भी भीतर ही भीतर काम कर रहा है, इसमें भी उसे सन्देह न था। इतने दिन उसके सामने सुशीला की जब कभी किसी ने विशेष रूप से प्रशंसा की है, तब उसने ऐसा भाव धारण किया है, मानों वह सारी प्रशंसा हमारी ही हुई है। वह उपदेश, दृष्टान्त और अपने संसर्ग के द्वारा सुशीला के चरित्र को इस प्रकार सुधार

रहा है कि इस सुशीला के जीवन द्वारा ही जन-समाज में उसका अद्भुत प्रभाव प्रमाणित होगा। उसकी आशा ऐसी ही थी।

उस सुशीला की शोचनीय अवनत दशा से हरि बाबू का अपनी योग्यता के सम्बन्ध में कुछ भी गर्व कम न हुआ। उसने सब दोष परेश बाबू के माथे मढ़ दिया। परेश बाबू की सब लोग बराबर प्रशंसा करते आये हैं, किन्तु हरि बाबू कभी उसमें सहमत नहीं हुआ। वह परेश बाबू को प्रशंसनीय नहीं समझता था, इससे यह भी इस दफ़े सब लोग बखूबी समझ जायँगे कि उसकी दीर्घदर्शिता कहाँ तक है। इस प्रकार वह न मालूम अपने मन में कितनी ही आशायें कर रहा था।

हरि बाबू के सदृश लोग और सब कुछ सह सकते थे, किन्तु जिनको वे विशेष रूप से शुभ मार्ग पर चलाने की चेष्टा करते थे वे यदि अपनी बुद्धि के अनुसार स्वतन्त्र मार्ग का अवलम्बन करें तो यह अपराध वे किसी तरह क्षमा नहीं कर सकते थे। सहज ही उन स्वतन्त्र-गामियों को छोड़ देना उनके लिए असाध्य था। वे जितना ही अपने उपदेश को विफल होते देखते थे उतना ही उनका हठ बढ़ता जाता था। वे बारबार उसपर आक्रमण करते थे। कल जैसे एक बार चलाने से बराबर चलती रहती है, और बिना रोके नहीं रुकती उसी तरह हरि बाबू अपने को कल की तरह चला कर फिर रोक नहीं सकता था। जो लोग उसके विमुख हैं उनके

कान में एक ही बात हज़ार बार कह कर भी वह हार नहीं मानता था।

इससे सुशीला बहुत कष्ट पाने लगी, पर अपने लिए नहीं, परेश बाबू के लिए। परेश बाबू की समालोचना ब्राह्म-समाज में जहाँ-तहाँ हो रही है, यह अशान्ति किस उपाय से दूर की जाय? इधर सुशीला की मौसी भी बराबर समझ रही थी कि मैं विनीत भाव धारण कर जितनी ही सबसे बचकर चलने की चेष्टा करती हूँ उतनी ही इस घर के लोगों के लिए उपद्रव-स्वरूप होती जा रही हूँ। इस कारण सुशीला की मौसी जो मारे लज्जा और शोच के मरी जा रही थी यह देख सुशीला का हृदय दग्ध होने लगा। इस सङ्कट से उद्धार पाने का कोई रास्ता सुशीला को न सूझ पड़ा।

इधर सुशीला को शीघ्र ब्याह देने के लिए शिवसुन्दरी परेश बाबू को बहुत दिक करने लगी। उसने कहा—सुशीला की जिम्मेवारी अब हम अपने ऊपर लेना नहीं चाहतीं। अब उसकी रक्षा हम से न हो सकेगी। उसने अपने मन से चलना आरम्भ किया है। अब यदि उसे आप ब्याहने में विलम्ब करेंगे तो मैं अपनी लड़कियों को लेकर कहीं और ठौर चली जाऊँगी। सुशीला का विचित्र दृष्टान्त मेरी लड़कियों के लिए बड़े अनिष्ट का कारण हो रहा है। कुछ दिन में इसकी देखा-देखी मेरी लड़कियाँ भी बिगड़ जायँगी। इसका कोई उपाय शीघ्र कीजिए नहीं तो इसके लिए आपको पीछे पछताना पड़ेगा। ललिता

पहले ऐसी न थी, अब जो उसके जी में आता है, कर बैठती है। किसी से कुछ नहीं पूछतो। इसका कारण क्या है? उस दिन वह ऐसा काम कर बैठी, विनय के साथ चुपचाप चली आई, जिस कारण मैं लज्जा से मरी जा रही हूँ। क्या आप समझते हैं कि इस काम में सुशीला का हाथ न था? आप अपनी सब लड़कियों से बढ़कर सुशीला पर प्यार करते हैं, इसके लिए मैं आप से कभी कुछ नहीं कहती, किन्तु अब यह बात न चलेगी, यह मैंने आप से अभी कह रक्खा है।

सुशीला के लिए तो नहीं, किन्तु घर के और लोगों की अशान्ति के कारण परेश बाबू चिन्तित हो पड़े थे। इस अशान्ति का कारण हरिमोहिनी का रहना ही था। शिवसुन्दरी इस उपलक्ष्य के कारण बड़ी गड़बड़ मचावेगी और अपने उद्योग में वह जितनी ही असफल होगी उतनी ही गड़बड़ को बढ़ाती जायगी, इस बात को परेश बाबू जानते थे। सुशीला के विवाह का प्रस्ताव भी शिवसुन्दरी ने यही सोच कर परेश बाबू से किया था। यदि सुशीला का ब्याह शीघ्र हो जाय तो सुशीला के लिए भी अच्छा ही होगा, यह विचार कर परेश बाबू ने शिवसुन्दरी से कहा—अगर हरि बाबू सुशीला को राज़ी कर सके तो मैं इस सम्बन्ध में कोई उज्र न करूँगा।

शिवसुन्दरी ने कहा—उसे अब कितनी दफ़े राज़ी करना होगा? वह तो कई बार अपनी सम्मति प्रकट कर चुकी है। आपके मन में क्या है, सो मैं नहीं जानती! आप इसके लिए

इतना टाल-मटोल क्यों कर रहे हैं? बताइए तो, हरि बाबू के सदृश योग्यपात्र वह कहाँ पावेगी? आप क्रोध कीजिए, चाहे जो कीजिए, किन्तु सच बोलने में क्या है। सुशीला हरि बाबू के योग्य नहीं है।

परेश बाबू ने कहा—हरि बाबू के प्रति सुशीला के मन का भाव क्या है, यह मैं ठीक ठीक नहीं जानता। इसलिए उन दोनों में जब तक इस बात की निष्पत्ति न होगी तब तक मैं इस विषय में ज़बरदस्ती कोई काम नहीं कर सकता।

शिवसुन्दरी ने कहा—उसके मन का भाव ठीक ठीक न जानने की बात इतने दिन पीछे आपने स्वीकार की? इस लड़की के मन की बात समझना बड़ा कठिन काम है। वह बोलती कुछ और करती कुछ है। उसका बाहर भीतर एक नहीं।

शिवसुन्दरी ने हरि बाबू को बुला भेजा।

उस दिन समाचार-पत्र में ब्राह्म-समाज की वर्तमान दुर्गति की आलोचना थी। उसमें परेश बाबू के परिवार के प्रति ऐसे भाव से आक्षेप किया गया था कि उसमें किसी का नाम न रहने पर भी स्पष्ट रूप से झलक रहा था कि किसके ऊपर आक्रमण किया गया है। और इसका लेखक कौन है, यह भी लेख की शैली से अनुमान करना कठिन न था। सुशीला किसी तरह उस लेख को एक बार पढ़कर उसे टुकड़े टुकड़े कर फाड़ रही थी। उसके अनेक टुकड़े कर डालने पर भी मानों उसका क्रोध शान्त न होता था।

इसी समय हरि बाबू घर में प्रवेश करके सुशीला के पास एक कुरसी खींच कर बैठ गया। सुशीला ने एक बार भी आँख उठाकर उसकी ओर न देखा। वह जिस तरह कागज़ फाड़ रही थी उसी तरह फाड़ती रही।

हरि बाबू ने कहा—सुशीला, आज तुमसे एक विशेष बात कहना है, मेरी बात पर ज़रा ध्यान देना होगा।

सुशीला कुछ न बोली, सिर नीचा किये कागज़ फाड़ने में लगी रही। जब नह से कागज़ फाड़ना असम्भव हो गया तब उसने उन कागज़ के टुकड़ों को कैंची से कतरना शुरू किया। ठीक इसी समय ललिता घर में आई।

हरि बाबू ने कहा—ललिता! सुशीला के साथ मुझे आज कुछ बातों का विचार करना है।

ललिता को वहाँ से जाने का उपक्रम करते देख सुशीला ने झट उसका आँचल पकड़ लिया। ललिता ने कहा—हरि बाबू को तुम्हारे साथ कुछ बात करनी है। सुशीला उसको कुछ उत्तर न दे ललिता का आँचल ज़ोर से पकड़े ही रही। तब ललिता सुशीला के पास ही एक कुरसी पर बैठ गई।

हरि बाबू किसी बाधा से दब जाने वाला आदमी न था। उसने कथा की भूमिका बाँधना छोड़ एकदम सुशीला से कहा—विवाह में विलम्ब होना अब मैं उचित नहीं समझता—परेश बाबू को मैंने इसकी सूचना दी थी, उन्हों ने कहा—तुम्हारी सम्मति पाने पर ही सब बातें तय हो जायँगी फिर उसमें

कोई बाधा न होगी। मैंने निश्चय किया है, इस रविवार के अगले रविवार को—

उसकी बात काट कर सुशीला बीच ही में बोल उठी—नहीं।

सुशीला के मुँह से यह स्पष्ट और कर्ण-कटु अत्यन्त संक्षिप्त "नहीं" सुन कर हरि बाबू ठिठक गया। सुशीला को वह अपने ऊपर विशेष अनुरक्त समझता था। वह एक मात्र "नहीं" शब्द-रूपी बाण से मेरे प्रस्ताव को बीच ही में काट गिरावेगी, ऐसा ख़याल उसके मन में कभी न हुआ था। उसने रुष्ट होकर कहा—नहीं! नहीं के मानी क्या? क्या तुम और देरी करना चाहती हो?

सुशीला ने फिर कहा—नहीं।

हरि बाबू ने आश्चर्य्य के साथ कहा—तो फिर?

सुशीला ने सिर हिला कर कहा—विवाह के लिए मेरी सम्मति नहीं है।

हरि बाबू ने हताश होकर पूछा—सम्मति नहीं है, इसके मानी?

ललिता ने हँस कर कहा—हरि बाबू आज आप 'मानी' का 'अर्थ' क्यों भूल गये?

हरि बाबू ने कड़ी दृष्टि से ललिता की ओर देख कर कहा—मातृभाषा भूल जाने की भूल स्वीकार करना सहज है किन्तु जिस व्यक्ति की बात पर मेरी बराबर श्रद्धा हो उसे मैं ठीक ठीक नहीं परख सका, यह स्वीकार करना सहज नहीं है।

ललिता ने कहा—दूसरे के मन का भाव समझने में समय लगता है। परन्तु कभी कभी अपने सम्बन्ध में भी यह बात संघटित होती है। कितने ही लोग अपने मन का भाव आप ही शीघ्र नहीं समझते।

हरि बाबू ने कहा—शुरू से आज तक मेरी बात, विचार या व्यवहार में कुछ वैषम्य नहीं आया है। मैं अपने को कुछ का कुछ जँचाने का किसी को अवसर नहीं देता, यह बात मैं ज़ोर देकर कह सकता हूँ। सुशीला ही कहे, मैं ठीक कहता हूँ या नहीं!

ललिता कुछ कहना चाहती थी किन्तु सुशीला ने उसे रोक कर कहा—आप ठीक कहते हैं, आपको मैं कोई दोष देना नहीं चाहती।

हरि बाबू ने कहा—यदि दोष देना नहीं चाहती तो मेरे साथ अन्याय करना ही क्यों चाहती हो?

सुशीला ने स्पष्ट स्वर में कहा—यदि आप इसको अन्याय कहते हैं, तो मैं अन्याय ही करूँगी। किन्तु—

बाहर से आवाज़ आई—बहन! घर में हो?

सुशीला प्रसन्न होकर झट बोल उठी—आइए, विनय बाबू, आइए।

"बहन, तुम भूल करती हो। विनय बाबू नहीं आये, मैं तो विनय मात्र हूँ। मुझे विनय बाबू कहकर क्यों आदर के शिखर पर चढ़ा कर लजा रही हो"—यह कह विनय ने घर में

प्रवेश करते ही हरि बाबू को देखा । हरि बाबू के मुँह पर उदासी का चिह्न देखकर विनय ने कहा—बहुत दिन से मेरे न आने के कारण आप नाराज़ तो नहीं हो गये हैं ?

हरि बाबू ने इस परिहास में योग देने की चेष्टा करके कहा—नाराज़ होने की तो बात ही है । किन्तु आज आप बे मौक़े आये हैं—सुशीला के साथ मेरी कुछ विशेष वार्ता हो रही थी ।

विनय ने घबड़ा कर कहा—यह देखिए, मेरा आना कब बे-मौक़े न होगा, यह मैंने आज तक समझा ही नहीं । इसी नासमझी के कारण यहाँ आने का साहस भी नहीं होता ।—यह कह कर विनय बाहर जाने लगा ।

सुशीला ने कहा—विनय बाबू कहाँ चले? बैठिए । इनके साथ जो बात होनी थी वह ख़तम हो गई । आप बड़े अच्छे अवसर पर आ गये ।

विनय समझ गया कि मेरे आने से सुशीला एक सङ्कट से उद्धार पा गई । वह प्रसन्न होकर एक कुरसी पर बैठ गया और बोला—मैं किसी के मन को दुखाना नहीं चाहता । जब कोई मुझे बैठने को कहता है तब मैं बैठूँगा ही । मेरा स्वभाव ऐसा ही है । इसलिए सुशीला बहन से यही निवेदन है कि वे इन बातों को समझ बूझ कर बोलें, नहीं तो विपत्ति में फँसेगी ।

हरि बाबू कुछ न बोलकर चुप चाप बैठा रहा । उसने

मन में कहा—अच्छा, मैं जब तक अपने मन की सब बातें सुशीला से न कहलूँगा, तब तक न टलूँगा।

विनय का कण्ठस्वर दरवाज़े के बाहर से सुनकर ही ललिता चौंक उठी थी। मानों बड़े वेग से उसकी रग रग में शोणित का प्रवाह बह चला था। उसकी छाती धड़कने लगी थी। उसने बड़े कष्ट से अपने स्वाभाविक भाव की रक्षा करनी चाही, किन्तु वह किसी तरह सफल-प्रयत्न न हो सकी। विनय जब घर में आया, तब ललिता, परिचित बन्धु की भाँति, उससे कुछ पूछ न सकी। मैं किस ओर देखूँ, क्या बोलूँ, किस तरह बैठने से मेरे स्वभाव में भिन्नता न पाई जाय, इसी को वह मनही मन सोचने लगी। एक बार उसने उठ जाने की चेष्टा की थी, किन्तु सुशीला ने किसी तरह उसको जाने न दिया। उसका कपड़ा पकड़ कर बिठा रक्खा।

विनय ने भी सब बात चीत सुशीला से ही की। ललिता से कोई बातचीत करने का उसे साहस न हुआ। हरि बाबू मौन साधे बैठा था, इस लिए विनय अकेला ही सुशीला के साथ बातें करने लगा। बातचीत में उसने अपनी चञ्चलता प्रकट न होने दी।

किन्तु हरि बाबू से ललिता और विनय का यह नया संकोच छिपा न रहा। जो ललिता उसके सम्बन्ध में आज कल ऐसे तीव्र भाव से वाचाल हो उठी है वह आज विनय के आगे ऐसी सकुच कर बैठी है कि एक बार सिर तक नहीं उठाती।

यह देख वह मन ही मन जलने लगा। वह सोचने लगा कि ब्राह्म-समाज से भिन्न लोगों के साथ कन्याओं को बेधड़क मिलने का अवकाश देकर परेश बाबू अपने घर की मर्यादा नष्ट कर रहे हैं। इससे परेश बाबू के ऊपर उसकी घृणा और बढ़ गई। परेश बाबू को इस कारण एक दिन अवश्य पछताना पड़ेगा, यह दुर्वासना उसके मन में अभिशाप की तरह खौलने लगी।

बड़ी देर तक इस तरह बात चीत होने के पीछे यह बात स्पष्ट रूप से समझ में आगई कि हरि बाबू नहीं उठेगा। तब सुशीला ने विनय से कहा—बहुत दिनों से मौसी के साथ आपकी भेंट नहीं हुई है, इसलिए वे प्रायः रोज़ ही आप का ज़िक्र करती हैं। क्या आप एक बार उनको देखने न जायँगे?

विनय ने कुरसी से उठ कहा—जब मैं यहाँ आया हूँ तब बिना उनको देखे कैसे जा सकता हूँ।

विनय को जब सुशीला अपनी मौसी के पास ले गई तब ललिता ने उठकर कहा—हरि बाबू, मुझसे तो अब आपका कोई विशेष प्रयोजन नहीं है।

हरि बाबू ने कहा—नहीं। मालूम होता है, तुम्हें और किसी जगह कोई आवश्यक काम है, तुम जा सकती हो!

ललिता उसकी बात का मर्म समझ गई। उसने तुरन्त उद्धत भाव से सिर हिलाकर उसकी साङ्केतिक बात को खोलकर कह दिया—विनय बाबू आज बहुत दिनों में आये हैं, मैं उनसे बातचीत करने जाती हूँ। तब तक यदि आप अपना लेख पढ़ना

चाहें तो—अरे! उस काग़ज़ को बहन ने टुकड़े टुकड़े कर फाड़ डाला है; दूसरे का लेख यदि आप पढ़ना चाहें तो उन काग़ज़ों को देख सकते हैं।

यह कहकर कोने में टेबल पर यत्नपूर्वक रक्खे हुए गौरमोहन के लेखों को लाकर हरि बाबू के सामने रख, वह झट वहाँ से चली गई।

विनय को देखकर हरिमोहिनी बहुत प्रसन्न हुई। किन्तु उस पर इसका कुछ विशेष स्नेह था, केवल इसी कारण नहीं। बल्कि इस घर में बाहर का जो कोई हरिमोहिनी को देखने आता था वह उसे एक विचित्र जीव की तरह समझता था। वे लोग ठहरे कलकत्ते के रहने वाले, सभी अँगरेज़ी और भाषा लिखने-पढ़ने में उसकी अपेक्षा श्रेष्ठ—उन सबों के द्वारा अपमानित होने के कारण यह बड़े संकोच में पड़ जाती थी। ऐसी अवस्था में विनय इसे एक अवलम्ब सा मिल गया था। विनय भी कलकत्ते का रहने वाला है। यह लिखा-पढ़ा भी किसी की अपेक्षा कम नहीं है तथापि वह हरिमोहिनी पर कुछ अश्रद्धा नहीं रखता। विनय इसे अपने घर के लोगों की तरह देखता था, इससे इसके मन में बड़ा ही सन्तोष होता था। इसी कारण थोड़े ही परिचय से विनय को इसके यहाँ आत्मीय का स्थान मिल गया।

हरिमोहिनी के पास विनय के जाने के थोड़ी देर पीछे ललिता वहाँ तुरन्त कभी नहीं जाती थी—किन्तु आज हरि बाबू से गुप्त

आक्षेप की चोट खाकर वह सब संकोच-बन्धन को तोड़ बड़ी निर्भीकता के साथ ऊपर वाली कोठरी में गई। और जाते ही विनय बाबू के साथ बेरोक बात करने भी लग गई। उन की सभा ख़ूब जम उठी। यहाँ तक कि बीच बीच में उन सबके हँसने का शब्द नीचे के घर में अकेले बैठे हुए हरि बाबू के कान की राह से भीतर प्रवेश कर हृदय को बेधने लगा। वह अब देर तक घर में अकेला न रह सका। शिवसुन्दरी के साथ वार्तालाप करके उसने मन की मर्मान्तिक वेदना को दूर करना चाहा। शिवसुन्दरी ने जब सुना कि सुशीला ने हरि बाबू के साथ विवाह करने से इनकार किया है तब वह एकदम अधीर हो उठी। उसने हरि से कहा—सीधेपन से आप का काम न होगा। जब वह बार बार अपनी सम्मति प्रकट कर चुकी है और ब्राह्म-समाज के सभी लोग इस बात को जान चुके हैं और उसकी अपेक्षा कर रहे हैं तब आज उसके सिर हिलाने से जो सब बातें बदल जायँ, यह नहीं हो सकता। उसकी यह अस्वीकृति अब ग्राह्य न होगी। आप अपना दावा किसी तरह न छोड़ें, यह मैं अभी आपसे कहे रखती हूँ। देखें वह क्या करती है?

इस सम्बन्ध में हरि बाबू को उत्साह देना, धधकती हुई आग में मानों घी डालना हुआ। वह अभिमान से सिर उठाकर मन ही मन कहने लगा—सुशीला को हार कर मेरी बात माननी ही पड़ेगी, मेरे लिए सुशीला का त्याग करना कुछ कठिन नहीं

किन्तु मैं ब्राह्म-समाज के सिर को नीचा कर देना कभी नहीं चाहता।

विनय ने हरिमोहिनी के साथ आत्मीयता दिखाने के अभिप्राय से कुछ प्रसाद पाने की इच्छा प्रकट की। हरिमोहिनी ने झट उठ कर एक छोटी सी थाली में ठाकुर जी का भोग लगा भीगा चना, कुछ मेवा-मक्खन, मिसरी और केला तथा एक कटोरे में थोड़ा सा दूध लाकर बड़े प्रेम से विनय के आगे रख दिया। विनय ने हँस कर कहा—मैं असमय में भूख की बात चला कर मौसी को तकलीफ़ देना चाहता था, किन्तु मैं ही ठगा गया। यह कह कर वह ख़ूब आडम्बर के साथ भोजन करने बैठा। इसी समय शिवसुन्दरी वहाँ आपहुँची—विनय ने अपने आसन पर बैठे ही बैठे ज़रा सिर नवा कर नमस्कार करने की चेष्टा करते हुए कहा—मैं बड़ी देर तक नीचे बैठा था। आपका दर्शन न हुआ। शिवसुन्दरी ने इसका कोई उत्तर न देकर सुशीला के प्रति लक्ष्य करके कहा—यह तो यहाँ बैठी हैं! मैं क्या जानती थी कि यहाँ सभा लगी है। सब आनन्द लूट रहे हैं। उधर बेचारे हरि बाबू सवेरे से इसके लिए अपेक्षा किये बैठे हैं। मानों वे इसके बाग़ के माली हैं। मैंने बचपन से इसको पाल-पोस कर इतनी बड़ी की है, अरे बाबू! इतने दिन तो इसका ऐसा व्यवहार कभी न देखा था! कौन जाने, आज कल यह सब सीख कहाँ से पारही है। हमारे घर में जो बात कभी न होती थी, वही

आज कल होने लगी है । समाज के लोगों के आगे हम लोग मुँह दिखलाने योग्य न रहीं । इतने दिन तक बड़े यत्न से जो शिक्षा दी गई थी वह सब दो ही दिन में न जाने कहाँ उड़ गई । यह क्या माजरा है, कुछ समझ में नहीं आता ।

हरिमोहिनी ने डर कर सुशीला से कहा—नीचे कोई बैठा था, यह मैं न जानती थी । बड़ा अन्याय हुआ । बेटी! तुम शीघ्र जाओ, मैंने तुम को बिठा रक्खा, यह मुझसे बड़ी भूल हुई !

इसमें हरिमोहिनी की रत्ती भर भूल नहीं है, यह कहने के लिए ललिता तुरन्त उद्यत हो उठी थी, परन्तु सुशीला ने चुपचाप ज़ोर से उसका हाथ दबाकर उसे रोक दिया, और शिवसुन्दरी की बात का कोई प्रतिवाद न करके नीचे चली गई ।

यह बात पहले ही कही जा चुकी है कि विनय ने शिवसुन्दरी का स्नेह अपनी ओर आकर्षित किया था । विनय जो मेरे घर के लोगों के साथ हिल मिल कर एक न एक दिन ब्राह्म-समाज में सम्मिलित होगा, इस विषय में उसे सन्देह न था । मानों वह विनय को अपने हाथ से नये साँचे में ढाल रही थी और इसका उसके मन में बड़ा गर्व था । इस गर्व को उसने अपने समाज में किसी किसी पर प्रकाशित भी किया था । उसी विनय को आज विपक्षी के घर में प्रतिष्ठित देख उसके मन में जलन पैदा हुई, और अपनी बेटी ललिता को भ्रष्टाचारी

विनय की सहकारिणी देख उसके हृदय की ज्वाला दूनी हो भभक उठी। उसने रूखे स्वर में कहा—ललिता, यहाँ क्या तुम्हारा कोई काम है ?

ललिता ने कहा—हाँ, विनय बाबू आये हैं इसीसे—

शिवसुन्दरी ने कहा—विनय बाबू जिसके पास आये हैं, वही इनका आतिथ्य करे। अभी तुम नीचे चलो, काम है।

ललिता ने मन में सोचा कि हरि बाबू ने अवश्य ही विनय का, मेरा तथा सुशीला का नाम लेकर माँ से कुछ ऐसा कहा है जिसे कहने का उनको कोई अधिकार नहीं था, यह सोच कर उसका मन अत्यन्त कठोर हो उठा। उसने प्रयोजन न रहने पर भी बड़ी प्रगल्भता के साथ कहा—विनय बाबू बहुत दिनों में आये हैं, इनके साथ कुछ बात करके तब मैं आऊँगी।

ललिता की बोली से ही शिवसुन्दरी जान गई कि इस पर अब ज़ोर न चलेगा। हरिमोहिनी के सामने ही फिर अपना पराभव बचाने की दृष्टि से वह और कुछ न बोली, और विनय के साथ किसी प्रकार का सम्भाषण किये बिना ही चली गई।

ललिता ने विनय के साथ बातें करने का उत्साह अपनी माँ के पास ज़ाहिर तो किया, किन्तु शिवसुन्दरी के चले जाने पर इस उत्साह का कोई लक्षण न देखा गया। तीनों व्यक्ति एक विचित्र भाव धारण कर चुप हो रहे। कुछ ही देर बाद

ललिता वहाँ से उठकर अपने घर में गई और भीतर से किवाड़ लगा लिये।

इस घर में हरिमोहिनी की क्या दशा है, यह विनय बखूबी समझ गया। उसने बात-चीत करके क्रमशः हरिमोहिनी का सब वृत्तान्त सुन लिया। सब बातों के अन्त में हरिमोहिनी ने कहा—बाबू! मेरे समान अनाथा के लिए घर में रहना ठीक नहीं। किसी तीर्थ में जाकर देव-सेवा में मन लगाती यह मेरे लिए अच्छा होता। मेरे पास जो कुछ रुपया-पैसा बच रहा है, उस से कुछ दिन निर्वाह चल जाता। तब भी यदि यह अधम शरीर बचा रहता तो मैं किसी के घर में रसोई-पानी का काम करके भी किसी तरह दिन काट लेती। मैं काशी में देख आई हूँ कि इस तरह कितने ही लोगों का निर्वाह हो रहा है। किन्तु मैं तो बड़ी अभागिन हूँ, मेरा दुर्भाग्य कोई काम होने नहीं देता। जब मैं एकान्त में अकेली बैठती हूँ तब दुःख की सब बातें चारों ओर से आकर मेरे मन को घेर लेती हैं। भगवान् मेरे पास किसी को आने नहीं देते। मैं किसी से अपने मन की बातें कह कर दुःख का बोझ हलका करूँ, इसका भी कोई उपाय नहीं दीखता। इससे मुझे पागल हो जाने का भय लगा है। जैसे डूबते हुए मनुष्य को एक सहारे की लकड़ी मिल जाय और वह उसे किसी तरह छोड़ना न चाहे वैसे ही राधा रानी और सतीश मेरे लिए आधार हो गये हैं। उनको छोड़कर कहीं जाने की बात मन में आते ही मेरे प्राण सूख जाते हैं।

इन दोनों को कहीं छोड़ना न पड़े इसका भय दिन-रात मेरे मन में लगा रहता है। इस चिन्ता से रात को नींद नहीं आती। अगर इन दोनों को छोड़ कर जाना पड़ा तो मैंने इनके साथ इतना स्नेह किस लिए जोड़ा? तुमसे कहने में मुझे लज्जा नहीं, जब से इन दोनों को पाया है तब से मैं ठाकुर जी की पूजा ध्यान लगा कर कर सकी हूँ। यदि ये दोनों मेरे पास से अलग हो जायँगे तो ठाकुर जी की पूजा में मेरा ध्यान न लगेगा।

यह कहकर हरिमोहिनी ने अपने आँचल से आँखें पोंछ डालीं।

[४०]

सुशीला नीचे के घर में आकर हरि बाबू के सामने खड़ी हुई। फिर उसने कहा—आप को क्या कहना है, कहिए!

हरि बाबू ने कहा—बैठो।

सुशीला बैठी नहीं, खड़ी ही रही।

हरि बाबू ने कहा—सुशीला, तुम मेरे साथ अन्याय कर रही हो।

सुशीला—आप भी तो मेरे साथ अन्याय कर रहे हैं।

हरि बाबू—क्यों, मैंने तो जो वचन तुम को दिया है, अब भी उसके विरुद्ध कोई—

सुशीला ने बीच में ही उसकी बात काट कर कहा—न्याय-

अन्याय कहने ही से तो नहीं होता। क्या आप उस अन्याय की बात पर ज़ोर देकर मेरे साथ अत्याचार करना नहीं चाहते? एक सत्य क्या हज़ार मिथ्या से श्रेष्ठ नहीं है? अगर मैं ने सौ बार भूल की हो तो क्या आप ज़ोर करके मेरी उसी भूल को सच मानेंगे? आज जब मैं अपनी भूल को समझ गई हूँ, मेरी भ्रान्ति दूर हो गई है, तब मैं आगे होने वाली कोई बात क़बूल न करूँगी—क़बूल करने से मेरे हक़ में अन्याय होगा।

सुशीला का मन एकाएक इस तरह क्यों फिर गया, यह हरि बाबू किसी तरह नहीं समझ सका। उसने मन ही मन सुशीला के नये साथियों के ऊपर दोषारोपण करके पूछा—तुमने क्या भूल की थी?

सुशीला—यह बात आप क्यों मुझ से पूछ रहे हैं? पहले विचार था, अब नहीं है, मेरे इस कथन को ही आप यथेष्ट समझिए।

हरि बाबू—ब्राह्मसमाज में हम लोगों का यह भावी सम्बन्ध ज़ाहिर हो चुका है। इसमें अन्यथा होने से समाज में तुम क्या कहोगी या मैं ही क्या कहूँगा?

सुशीला—मैं कुछ न कहूँगी। आप यदि कुछ कहना चाहें तो आपकी खुशी। सुशीला का अवस्था अल्प है, उसकी बुद्धि अच्छी नहीं, उसका स्वभाव चञ्चल है, और भी जो आप के मन में आवे, कहिएगा। किन्तु इस सम्बन्ध में हमारी

आप की यह आख़िरी बात हो गई । अब इस विषय में आप फिर कभी मुझ से कोई प्रश्न न कीजिए ।

हरि बाबू ने कहा—इस बात को हम अभी आख़िरी कैसे मान सकते हैं । यदि परेश बाबू—

इसी समय परेश बाबू ने घर में आकर कहा—कहिए, हरि बाबू ! मेरे सम्बन्ध में क्या कह रहे हैं ?

सुशीला वहाँ से बाहर जाने लगी । हरि बाबू ने पुकार कर कहा—सुशीला, अभी मत जाओ । परेश बाबू के सामने बात को तय कर लो ।

सुशीला लौट कर खड़ी हुई । हरि बाबू ने परेशचन्द्र से कहा—इतने दिन बाद सुशीला आज कहती है कि विवाह में मेरा मत नहीं है । इतने बड़े गम्भीर विषय में क्या इतने दिन तक इसको खेल करना उचित था ? यह जो बेजा कार्रवाई हुई है उसके लिए क्या आप दोष-भागी न होंगे ?

परेश बाबू ने सुशीला को खिन्न देख स्नेह-भरे स्वर में कहा—बेटी, तुमको यहाँ रहने की आवश्यकता नहीं, तुम जाओ !

यह सुनते ही सुशीला की आँखों में भक्ति के आँसू उमड़ आये । वह लम्बी साँस ले झट वहाँ से चली गई ।

परेश बाबू ने कहा—सुशीला ने बिना समझे-बूझे ही विवाह में सम्मति दी है, यह सन्देह बहुत दिनों से मेरे मन में बना था, इससे मैं समाज के लोगों के सामने यह सम्बन्ध

पक्का करने के विषय में आपके अनुरोध का पालन नहीं कर सका।

हरि बाबू ने कहा—सुशीला ने समझ कर ही सम्मति दी थी। अब वह बिना समझे असम्मति दे रही है, यही सन्देह आपके मन में क्यों नहीं होता?

परेश बाबू—दोनों बातें हो सकती हैं, किन्तु ऐसे सन्देह-स्थल में तो विवाह नहीं हो सकता।

हरि बाबू—क्या सुशीला को आप अच्छी सलाह न देंगे?

परेश—आप सत्य समझें कि मैं सुशीला को अपनी साध्य के अनुसार कभी बुरी सलाह नहीं दे सकता।

हरि बाबू—यदि आप का ध्यान इस ओर रहता तो सुशीला का परिणाम कभी ऐसा न होता। वह कभी ऐसी स्वेच्छाचारिणी न हो सकती। आपके घर में आज कल जो काम आरम्भ हुए हैं, वे केवल आपकी अविवेचना के फल-स्वरूप हैं। यह बात मैं आपके सामने ही कहता हूँ।

परेश बाबू ने ज़रा हँस कर कहा—यह आप ठीक ही कह रहे हैं। अपने घर के भले-बुरे का यश-अयश मैं न लूँगा तो कौन लेगा?

हरि बाबू—इसके लिए आपको एक दिन पछताना पड़ेगा, यह भी मैं कह रखता हूँ।

परेश—पछताना तो ईश्वर की दया है। मैं केवल अपराध से डरता हूँ, पछताने से नहीं।

सुशीला घर में आकर परेश बाबू के पास खड़ी हुई और बोली—बाबूजी, आपकी उपासना का समय हो गया।

परेश बाबू ने हरिश्चन्द्र से पूछा—तो आप अभी कुछ देर बैठेंगे?

"नहीं" कह कर हरि बाबू तेज़ी के साथ चला गया।

[४१]

सुशीला दुबिधा में पड़ कर अनेक यन्त्रणाओं का अनुभव करने लगी। भीतर से बाहर तक कहीं उसको चैन नहीं। गौरमोहन के प्रति उसके मन का भाव इतने दिन से अलक्षित रूप में घनिष्ठ होता जा रहा था। गौर के जेल जाने के कारण जो कष्ट उसके मन में हो रहा है, उसके दूर होने का उसे कोई उपाय नहीं दिखाई देता। वह दिन-रात घोर चिन्ता में डूबी रहती है। किसीसे अपने मन का दुःख कह भी नहीं सकती। उसे इतना भी समय नहीं मिलता जो एकान्त में बैठकर वह अपने मानसिक दुःख पर कुछ विचार कर सके। हरि बाबू ने इसका मन फेरने के लिए अपने समग्र समाज को उसके पास भेज कर उसे बाधित करने का उपाय रचा है। वह समाचार-पत्र में भी इस सम्बन्ध का उल्लेख करना चाहता है। सुशीला की मौसी परेश बाबू के घर में ठाकुर जी की पूजा करती है, और सुशीला को बहका रही है, इसका भी उल्लेख किया जायगा।

यह सुन कर मौसी बड़ी बेचैन हो पड़ी है। मैं अब क्या करूँ, कहाँ जाऊँ, इसी सोच से इसका कुछ निश्चय नहीं कर सकती। सुशीला भी इसी सोच से मरी जा रही है।

इस संकट के समय इसके एक मात्र अवलम्ब थे परेश बाबू। वह उनसे कोई परामर्श लेना नहीं चाहती थी; उसे अनेक बातें कहने को थीं, जिन्हें वह परेश बाबू के सामने कह नहीं सकती थी और कितनी ही बातें ऐसी थीं जो संकोच-वश वह उनके निकट प्रकट नहीं कर सकती थी। यद्यपि वह परेश बाबू से कुछ कह नहीं सकती थी तथापि उसे पूर्ण विश्वास था कि वे मेरे हृदय का भाव जानते हैं। वह उन्हीं को अपना माँ-बाप समझ बैठी है।

आज कल जाड़े के समय साँझ को परेश बाबू बाग़ में उपासना करने न जाते थे। घर के पच्छिम ओर की एक छोटी सी कोठरी के खुले दर्वाज़े के सामने एक आसन बिछा कर वे उपासना करते थे। उनके उजले केशों से सुशोभित मुख-मण्डल पर सायंकालिक सूर्य की आभा पड़ने से वह और भी दीप्तिमान हो उठता था। उसी समय सुशीला पैरों की आहट बचाये चुपचाप उनके पास आकर बैठती थी। वह अपने अशान्त, व्यथित चित्त को मानों परेश बाबू की गम्भीर उपासना में डुबा रखती थी। आज कल उपासना के अन्त में प्राय: परेश बाबू नित्य देखते थे कि हमारी यह लड़की, यह शिष्या, चुपचाप हमारे पास बैठी है। वे उसको अनिर्वचनीय आध्या-

त्मिक माधुर्य द्वारा परिवेष्टित देख अन्तःकरण से चुपचाप आशीर्वाद देते थे।

परब्रह्म के साथ आत्मा का एक हो जाना ही परेश बाबू के जीवन का एकमात्र लक्ष्य था। जो परम श्रेष्ठ और सत्यतम है, उसी ओर परेश बाबू का मन सदा लगा रहता था। इस कारण संसार का कोई झमेला उनको कठिन प्रतीत न होता था। सब काम वे ईश्वर की इच्छा पर निर्भर कर निश्चिन्त रहते थे। इस प्रकार उन्हों ने अपने मन को अपने अधीन कर लिया था, इसलिए मत-मतान्तर की बातों में या किसी के भिन्न आचरण से रुष्ट होकर वे किसी के विरुद्ध कोई काम करना नहीं चाहते थे। शुभ कर्म की ओर प्रवृत्ति और संसार की ओर निरपेक्षता उनकी स्वाभाविक थी। यह उनमें इतनी अधिक थी कि साम्प्रदायिक लोगों में उनकी निन्दा होती थी; किन्तु यह निन्दा उनके मन को व्यथित नहीं कर सकती थी। वे निन्दक के इस व्यवहार पर हँसते थे। जो कोई उनकी निन्दा करता था उसकी वे प्रशंसा करते थे।

परेश बाबू के जीवन की इस गम्भीर शान्ति का कुछ सुख पाने की इच्छा से सुशीला कोई न कोई बहाना करके उपासना के समय उनके पास जा बैठती थी। वह अपने चिन्तित चित्त में शान्ति पहुँचाने के लिए परेश बाबू के पैरों पर मस्तक रखने के सिवा और कोई सुगम उपाय न देखती थी।

सुशीला अपने अटल धैर्य के साथ सब आघातों को चुप

चाप सह लेने ही में अपना कल्याण समझती थी। उसका ख़याल था कि इस विषय में कुछ न बोलने से आप ही आप सब बखेड़े मिट जायँगे। परन्तु यह न हुआ। उसे और ही उपाय का अवलम्बन करना पड़ा।

शिवसुन्दरी ने जब देखा कि क्रोध करके या धिक्कार देकर के सुशीला को राज़ी करना संभव नहीं है और परेशचन्द्र से भी इस विषय में सहायता पाने की कोई आशा नहीं है, तब हरिमोहिनी के प्रति वह भूखी बाघिन की तरह क्रुद्ध हो उठी। घर में हरिमोहिनी का रहना उसे उठते-बैठते मर्मान्तिक कष्ट देने लगा।

उस दिन शिवसुन्दरी के पिता के मृत्यु-दिन की वार्षिक उपासना थी। इस उपलक्ष्य में उसने विनय को नेवता दिया था। उपासना सायंकाल को होने वाली थी। उसके पूर्वही वह उपासना-गृह को सज रही थी। सुशीला और शिवसुन्दरी की लड़कियाँ भी उसकी सहायता कर रही थीं।

इस समय एकाएक शिवसुन्दरी की नज़र विनय पर पड़ी। वह पास के ज़ीने से ऊपर हरिमोहिनी के पास जा रहा था। जब मन में कुछ मालिन्य रहता है तब छोटी सी घटना भी बहुत बड़ी हो उठती है। विनय का यह ऊपर के कमरे में जाना शिवसुन्दरी को ऐसा असह्य हो गया कि वह घर की सजावट छोड़कर तुरन्त हरिमोहिनी के पास जा पहुंची। देखा, विनय चटाई पर बैठ कर आत्मीय की भाँति विश्वस्त भाव से हरिमोहिनी के साथ बातचीत कर रहा है।

शिवसुन्दरी ने कहा—तुम हमारे यहाँ जब तक जी चाहे रहो, मैं तुम को आदर से रक्खूँगी। किन्तु तुम्हारे ठाकुर जी को मैं अपने यहाँ नहीं रहने देसकती।

हरिमोहिनी देहात की रहने वाली थी। ब्राह्म के सम्बन्ध में उसकी धारणा थी कि वह किरिस्तानी धर्म की ही ऐक शाखा है। कई दिनों से वह इसी बात को सोच रही थी और इस चिन्ता से व्याकुल हो रही थी कि अब क्या करना चाहिए। ऐसेही अवसर पर आज शिवसुन्दरी के मुख से यह बात सुनकर वह समझ गई कि अब सोच विचार करने का समय नहीं है, अब कोई एक बात शीघ्र ही स्थिर करनी होगी। पहले उसने सोचा, कलकत्ते में कोई मकान किराये पर लेकर रहूँगी तो कभी कभी सुशीला और सतीश को भी देख सकूँगी, किन्तु मेरे पास जो थोड़ी सी पूँजी बच रही है, उससे कलकत्ते का ख़र्च नहीं चलेगा।

शिवसुन्दरी बवंडर की तरह आकर जब चली गई तब विनय सिर नीचा कर के चुप हो बैठा रहा।

कुछ देर चुप रह कर हरिमोहिनी ने कहा—मैं तीर्थ को जाऊँगी. तुम में से कोई मुझे पहुँचा आवेगा?

विनय ने कहा—क्यों नहीं पहुँचा आऊँगा। किन्तु इस की तैयारी करने में दो चार दिन का विलम्ब होगा। तब तक तुम मेरी माँ के पास चलकर रहो।

हरिमोहिनी ने कहा—मेरा भार कुछ साधारण नहीं है। विधाता ने मुझे कितना भारी बनाया है, यह मैं नहीं जानती।

मेरा बोझ कोई नहीं ढो सकता। जब ससुराल में भी विपत्ति आ पड़ने पर मुझे कोई न रख सका तब दूसरा कौन मुझे रख सकेगा? अब किसी के घर जाने का काम नहीं। जो विश्व का भार धारण करते हैं अब उन्हीं के चरण-कमलों में आश्रय लूँगी। अब यहाँ न रहूँगी, यह कह कर वह बार बार दोनों आँखें आँचल से पोंछने लगी।

विनय ने कहा—यह कहने से क्या होगा! मेरी माँ के साथ किसी की तुलना नहीं हो सकती। जो अपने जीवन का समस्त भार भगवान् को अर्पण कर चुकी है, वह दूसरे का भार उठाने में कुछ भी संकोच नहीं करती। जैसे परेश बाबू हैं, वैसी ही मेरी माँ है। एक बार मैं तुम को अपनी माँ के पास ले चलूँगा, तब तुम जहाँ जिस तीर्थ में जाने को कहोगी, वहाँ मैं पहुँचा आऊँगा।

हरिमोहिनी—तो एक बार उनको इसकी ख़बर—

विनय ने कहा—मेरे जाने ही से उन्हें ख़बर मिल जायगी। इसके लिए आप कुछ चिन्ता न करें।

हरिमोहिनी—तो कल सबेरे—

विनय—कल की क्या बात! आज ही रात को चलिए।

सन्ध्या समय सुशीला ने आकर कहा—विनय बाबू, आप को माँ बुलाती हैं, उपासना का समय हो गया।

विनय ने कहा—मौसी के साथ बात चीत हो रही है, अभी मैं न चल सकूँगा।

असल में आज विनय को शिवसुन्दरी की उपासना का निमन्त्रण किसी तरह स्वीकार न था। उसने मन में कहा, यह सब आडम्बर है।

हरिमोहिनी ने घबरा कर कहा—बाबू, तुम जाओ, मेरे साथ बातचीत फिर होगी। वहाँ का काम पूरा हो जाय तब यहाँ आना।

सुशीला ने कहा—अभी आप का वहाँ चलना अच्छा है।

विनय ने समझा, अभी उपासना-गृह में न जाऊँगा तो इस घर में जिस उपद्रव का आरम्भ हुआ है, वह और बढ़ जायगा। इस लिए वह उपासना-स्थल में गया तो, परन्तु उसका जाना पूर्ण रूप से फलित न हुआ।

उपासना के अनन्तर भोजन का प्रबन्ध था। विनय ने कहा—अभी मुझ को भूख नहीं है।

शिवसुन्दरी ने कहा—भूख को दोष मत दीजिए। आप ऊपर से ही भूख का निवारण कर आये हैं।

विनय ने हँस कर कहा—आपका कहना ठीक है, लोभी की ऐसी ही दुर्दशा होती है। वह वर्तमान की अल्प-प्राप्ति से भविष्य के बृहत् लाभ को खो बैठता है।—यह कह कर विनय जाने को उद्यत हुआ।

शिवसुन्दरी ने कहा—मालूम होता है, आप फिर ऊपर जा रहे हैं?

विनय संक्षेप में 'हाँ' कह कर वहाँ से बाहर हो गया।

दर्वाज़े के पास सुशीला खड़ी थी। विनय ने उससे मीठे स्वर में कहा—बहन, एक बार मौसी के पास तुम्हारा जाना आवश्यक है। शायद वह तुमसे कोई काम की बात पूछेगी।

ललिता आगत-जनों के आतिथ्य में नियुक्त थी; एक बार हरि बाबू उसे अपने पास आते देख बोल उठा—विनय बाबू तो यहाँ नहीं हैं, ऊपर गये हैं।

उसकी यह व्यङ्ग-भरी बात सुन ललिता खड़ी हो उसके मुँह की ओर दृष्टि करके निःसंकोच होकर बोली—मालूम है। वे मुझसे भेंट किये बिना न जायँगे। मैं यहाँ का काम पूरा कर के अभी ऊपर जाऊँगी।

ललिता को किसी तरह चुप न कर सकने के कारण हरि बाबू के हृदय की ज्वाला और भी बढ़ गई। विनय सुशीला से कुछ कह गया और सुशीला ने कुछ ही देर पीछे उसका अनुसरण किया, यह भी हरि बाबू ने अपनी आँखों देखा—आज वह सुशीला से बातचीत करने का ढंग निकाल बार बार विफलप्रयत्न हुआ है। दो एक बार उसके द्वारा स्पष्ट रूप से बुलाई जाने पर सुशीला ने उसकी बात अनसुनी कर दी है, जिससे सभा-स्थित लोगों के सामने हरि बाबू ने अपने को विशेष अपमानित समझा। इससे उसका मन स्वस्थ न था।

सुशीला ने ऊपर जाकर देखा, हरिमोहिनी अपनी चीज़ों को समेट गठरी बाँधे इस भाव से बैठी है जैसे अभी कहीं जायगी। सुशीला ने पूछा—मौसी यह क्या?

हरिमोहिनी ने उसका कोई उत्तर न दे, रोकर कहा—सतीश कहाँ है, बेटी ! एक बार उसे बुला दो।

सुशीला ने विनय के मुँह की ओर देखा। विनय ने कहा—इस घर में मौसी का रहना सबको भारी मालूम होता है, इससे मैं इनको माँ के पास लिये जा रहा हूँ।

हरिमोहिनी ने कहा—वहाँ से मैंने तीर्थ-यात्रा का विचार किया है। मेरे सदृश अनाथा का इस तरह किसी के घर में रहना ठीक नहीं। मुझे कोई अधिक दिन तक अपने घर में रहने देना क्यों पसन्द करेगा ?

सुशीला आपही इस बात को कई दिनों से सोच रही थी। इस घर में रहना मौसी के लिए अपमान है, यह सुशीला जान चुकी थी, इसलिए वह कोई उत्तर न दे सकी। चुप होकर उसके पास जा बैठी। सायंकाल का अन्धकार घर में छा गया है परन्तु अभी तक चिराग़-बत्ती नहीं हुई है। हेमन्त के धुँधले आकाश में कहीं कहीं तारे उगे हुए दिखाई दे रहे थे। किसके नेत्रों से आँसू गिर रहे हैं, यह इस अँधेरे में दिखाई न दिया।

ज़ीने पर से ही सतीश का ऊँचे स्वर से मौसी को पुकारने का शब्द सुन पड़ा। "क्या है बेटा ! आओ" कह कर हरिमोहिनी झट उठ खड़ी हुई। सुशीला ने कहा—मौसी, आज रात को कहीं जाना ठीक न होगा, कल सबेरे की यात्रा ठीक होगी। बाबूजी को जाने की सूचना दिये बिना तुम कैसे जा सकोगी ? यह बड़ा अन्याय होगा।

विनय ने शिवसुन्दरी के द्वारा किये गये हरिमोहिनी के अपमान से उत्तेजित होकर इस बात को न सोचा था। उसने यही निश्चय किया था कि अब एक रात भी मौसी का इस घर में रहना मुनासिब नहीं है। और आश्रय के अभाव से ही हरिमोहिनी सब कष्ट सह कर इस घर में है, शिवसुन्दरी की इस धारणा को दूर करने के लिए वह हरिमोहिनी को यहाँ से लेजाने में कुछ भी विलम्ब करना नहीं चाहता था। सुशीला की बात सुन कर उसे धक से स्मरण हो आया कि इस घर में हरिमोहिनी का शिवसुन्दरी के साथ ही तो एकमात्र सम्बन्ध नहीं है। जिस व्यक्ति ने इसका अपमान किया है, उसी को सब से बड़ा समझना और जिसने बड़ी उदारता के साथ अपने सम्बन्धी की भाँति आश्रय दिया है, उसको भूल जाना उचित नहीं।

विनय ने कहा—हाँ, यह ठीक है। परेश बाबू को बिना जताये इस तरह जाना न्याय-विरुद्ध है।

सतीश ने आते ही कहा—मौसी, जानती हो, भारतवर्ष पर आक्रमण करने को रूस आ रहा है। बड़ा मज़ा होगा।

विनय ने पूछा—तुम किसकी ओर रहोगे?

सतीश—मैं रशिया के दल में रहूँगा।

विनय—तो रूस को अब कुछ चिन्ता नहीं।

इस प्रकार सतीश के बाल-संभाषण से विशेष कुतूहल उत्पन्न होने के अनन्तर सुशीला धीरे धीरे वहाँ से उठ कर नीचे गई।

सुशीला जानती थी कि सोने के पहले परेश बाबू अपनी उपासना-सम्बन्धी कोई पुस्तक पढ़ा करते हैं। कई दिन ऐसे समय में सुशीला उनके पास जाकर बैठी है और उसके अनुरोध से परेश बाबू ने उसे कुछ पढ़ कर सुनाया है।

आज भी अपने सूने घर में परेश बाबू चिराग़ जलाकर एमर्सन का ग्रन्थ पढ़ रहे थे। सुशीला धीरे धीरे उनके पास एक कुरसी पर जा बैठी। परेश बाबू ने पुस्तक रख एक बार उसके मुँह की ओर देखा। सुशीला का संकल्प भङ्ग हुआ। वह जो बात कहने के लिए आई थी, वह कह न सकी। सिर्फ़ इतना ही कहा—बाबू जी, क्या पढ़ते थे, मुझे भी पढ़ कर सुनाइए।

परेश बाबू पढ़कर उसका गम्भीर आशय सुशीला को समझाने लगे। जब रात के दस बज गये तब पढ़ना समाप्त हुआ। तब भी सुशीला, यह सोच कर कि सोने के पूर्व परेश बाबू के मन में किसी प्रकार का क्षोभ न हो, कोई बात कहे सुने बिना ही धीरे धीरे उठ खड़ी हुई और चल पड़ी। परेश बाबू ने उसे पुकार कर कहा—राधा।

वह लौट आई। परेश बाबू ने कहा—तुम अपनी मौसी की बात मुझ से कहने आई थीं ?

परेश बाबू मेरे मन की बात समझ गये, यह जान कर वह विस्मित हो बोली—हाँ, बाबू जी! आज अब यह बात रहने दीजिए, कल सबेरे कहूँगी।

परेश बाबू ने कहा—बैठो ।

सुशीला के बैठने पर उन्हों ने कहा—तुम्हारी मौसी को यहाँ कष्ट होता है सो मैं समझता हूँ । उसका धर्म-विश्वास और आचरण लावण्य की माँ के ब्राह्मसंस्कार में इतना अधिक आघात देगा यह मैं पहले न जान सका । अब देखता हूँ, वह उसे तकलीफ़ दे रही है, तब इस घर में तुम्हारी मौसी कैसे रह सकेंगी ।

सुशीला ने कहा—मौसी तो यहाँ से जाने के लिए तैयार है ।

परेश बाबू ने कहा—मैं जानता हूँ, वे जायँगी । तुम्हीं दोनों उनकी एक मात्र आत्मीय हो । तुम उन को इस तरह भिखारिन की तरह बिदा कर सकोगी, यह मैं नहीं जानता । यह बात मैं कई दिनों से सोच रहा था ।

मौसी का संकट परेश बाबू जानते हैं और उस के लिए चिन्तित हैं, इसका कुछ भी अनुभव सुशीला को न था । मेरी मौसी का कष्ट जानने से उन्हें दुःख होगा, इस भय से इतने दिन तक वह बड़ी सावधानी से चलती थी, भूल कर भी वह परेश बाबू के आगे इस विषय में कुछ न बोलती थी । आज परेश बाबू की बात सुन कर वह अचम्भे में आगई । उस-की आँखों में आँसू उमड़ आये ।

परेश बाबू ने कहा—तुम्हारी मौसी के लिए मैं ने एक मकान ठीक कर रक्खा है ।

सुशीला ने कहा—किन्तु वह तो—

परेश बाबू–भाड़ा नहीं दे सकेंगी! भाड़ा वे क्यों देंगी? भाड़ा तुम देना।

सुशीला उन के कथन का अर्थ न समझकर चुप चाप उन के मुँह की ओर देखने लगी।

परेश बाबू ने हँस कर कहा—तुम अपने ही मकान में रहने देना, तब भाड़ा न देना पड़ेगा।

सुशीला और भी आश्चर्य में डूब गई। परेश बाबू ने कहा—तुम नहीं जानतीं कि कलकत्ते में तुम्हारे दो मकान हैं। एक तुम्हारा और एक सतीश का। मृत्यु के समय तुम्हारे पिता मुझे कुछ रुपया दे गये थे। उस रुपये को किसी तरह बढ़ा कर उससे मैंने दो मकान मोल लिये हैं। इतने दिन तक वे भाड़े पर उठा दिये गये थे। भाड़े का रुपया जमा हो रहा था। तुम्हारे घर का भाड़ा कुछ दिन से बन्द है। वह ख़ाली पड़ा है। वहाँ रहने में तुम्हारी मौसी को कोई तकलीफ़ न होगी।

सुशीला ने कहा—वहाँ क्या वह अकेली रह सकेंगी?

परेश बाबू ने कहा—तुम्हारे रहते वे अकेली क्यों रहेंगी?

सुशीला ने कहा—मैं अभी आप से यही बात कहने के लिए आई थी। मौसी जाने के लिए तैयार थी। मैं सोच रही थी कि उसे इस तरह अकेली कैसे जाने दूँगी। इसी लिए आपका उपदेश लेने आई हूँ। आप जो कहेंगे वही करूँगी।

परेश बाबू ने कहा—इस घर के बग़ल में जो यह गली है

इसके दो तीन घर के बाद ही तुम्हारा घर है। इस बरामदे पर खड़े होने से वह घर देख पड़ता है। वहाँ रहने से तुम लोगों को अरक्षित अवस्था में रहने का भय न होगा। मैं तुम्हारी ख़बर लेता रहूँगा।

सुशीला के हृदय से मानों एक बहुत बड़ा बोझ उतर गया। परेश बाबू को छोड़ कर मैं कैसे जाऊँ, इस बात की उसके मन में बड़ी चिन्ता थी, किन्तु जाना अवश्य होगा। यह भी उसने निश्चय कर लिया था।

सुशीला आवेश से भरे हृदय को लेकर चुपचाप परेश बाबू के पास बैठी रही। परेश बाबू भी शान्त भाव से मौन धारण किये बैठे रहे। सुशीला उनकी शिष्या थी, उनकी कन्या के समान थी, उनकी विशेष कृपापात्री थी। यहाँ तक कि वह उनकी ईश्वरोपासना के साथ मिल गई थी। जिस दिन वह चुपके से आकर उनकी उपासना के साथ योग देती थी उस दिन मानों उनकी उपासना विशेष रूप से पूरी होती थी। सुशीला को धर्म की शिक्षा देते देते वह उन्हें एक प्रकार से अभ्यस्त हो गया था। सुशीला जिस भक्ति और नम्रता के साथ उनके पास आकर बैठती थी, उस तरह कोई उनके पास न आता था। सूर्य के उदय से जैसे कमल का विकाश होता है, वैसे ही परेश बाबू को देख कर सुशीला का हृदय खिल उठता था। जिस भाव से सुशीला उनके पास आती थी उस भाव से यदि कोई भक्त महात्मा के पास पहुँचे तो महात्मा का मन आप ही

उपदेश देने का अवसर होता है और वे अपने हृदय की बात को खोल कर कहने का अच्छा सुयोग समझते हैं। यही दुर्लभ सुयोग सुशीला ने परेश को दिया था। इस भक्ति-भाव के कारण सुशीला के साथ उनका सम्बन्ध बहुत गहरा हो गया था। अपने पास जो कुछ सत्य और श्रेष्ठ हो उसे प्रति दिन अनुकूल चित्त को दान करने से बढ़कर सुयोग और क्या हो सकता है—वही दुर्लभ अवसर सुशीला ने परेश को दिया था। इसी कारण सुशीला के साथ उनकी घनिष्ठता थी। उसी सुशीला के साथ आज उनका बाह्य सम्बन्ध टूटने को है:—फल को अपने जीवन-रस द्वारा परिपक्व करके वृक्ष उसे अलग कर देता है। इसलिए वे मन में जिस निगूढ़ (मुक्त) वेदना का अनुभव कर रहे थे उसको वे अपने अन्तर्यामी को निवेदन करते थे। सुशीला के पास कलेऊ सञ्चित हो गया है, अब अपनी शक्ति से प्रशस्त मार्ग पर सुख-दुःख और घात-प्रतिघात के द्वारा नूतन अभिज्ञता प्राप्त करने की ओर वह जो बुलाई जा रही है, इस तैयारी को परेश बाबू कुछ दिन से ताड़ रहे थे। वे मन ही मन कह रहे थे—बेटी, तुम जाओ, तुम्हारे चिर-जीवन को मैं अपनी बुद्धि और आश्रय के द्वारा घेर रक्खूँ, यह कभी न हो सकेगा। ईश्वर तुमको अच्छे मार्ग पर ले जायँ और तुम्हारा जीवन सार्थक हो। इस प्रकार बचपन से स्नेह-पालित सुशीला को वे अपनी ओर से बिदा कर ईश्वर के हाथ सौंपने की बात सोच रहे थे। परेश बाबू शिवसुन्दरी पर क्रोध न करते थे, सांसा-

रिक झमेले के कारण अपने मन में किसी तरह के विरोध को स्थान नहीं देते थे। वे जानते थे कि संकीर्ण उपकूल (अन्तरीप) के भीतर नई वर्षा की बाढ़ एकाएक आ जाने पर भारी गड़बड़ मच जाती है। इसका एक मात्र प्रतिकार यही है कि उसे प्रशस्त खेत की ओर बहा कर पहुँचा दिया जाय। उन्हें यह भी ज्ञात था कि सुशीला को थोड़े दिन तक अपने घर में आश्रय देने के कारण जो बखेड़े इस छोटे घर में खड़े हुए हैं, वे यहाँ के बँधे संस्कार को पीड़ित कर रहे हैं। उन बखेड़ों को हटा देने ही से स्वाभाविक सामञ्जस्य संघटित होगा और सर्वत्र शान्ति हो सकेगी। यह सोच कर वे सहज ही शान्ति और विरोध का परिहार करने का मन ही मन उपाय ढूँढ़ने लगे।

दोनों कुछ देर तक चुप बैठे रहे। घड़ी में ग्यारह बज गये। तब परेश बाबू ने सुशीला को ईश्वर-वन्दना का आदेश दिया और आप भी ईश्वर से यह प्रार्थना की कि संसार के सभी असत्य मुझ से दूर हों और मेरे हृदय में पूर्ण सत्य का विकाश हो। फिर वे सोने को गये। सुशीला भी अपनी मौसी के पास चली गई।

[४२]

दूसरे दिन सबेरे हरिमोहिनी ने परेश बाबू के पास जा कर उन्हें प्रणाम किया। उन्हों ने हड़बड़ा कर कहा—यह क्या?

हरिमोहिनी ने आँखों में आँसू भर कर कहा—आप का ऋण मैं किसी जन्म में न चुका सकूँगी। मेरे सदृश इतनी बड़ी अनाथा के लिए आपने उपाय कर दिया है। यह आप के सिवा और कोई नहीं कर सकता था। प्रार्थना करने पर भी मेरा कोई उपकार करने वाला यहाँ नहीं। आप के ऊपर भगवान् की बड़ी कृपा है, इसी से आप मेरे सदृश अभागिन के ऊपर भी कृपा कर सके हैं।

परेश बाबू बड़े संकुचित हो उठे। उन्हों ने कहा—मैंने तो आप का कुछ उपकार नहीं किया है। कुछ किया है तो राधा रानी ने।

हरिमोहिनी ने रोक कर कहा—मैं जानती हूँ, किन्तु राधा रानी भी तो आप की ही है। उसका किया मैं आप का ही किया समझती हूँ। उसकी माँ जब चल बसी, उसके पिता भी न रहे, तब मैंने कहा कि लड़की बड़ी अभागिन है। किन्तु इस के बिगड़े नसीब को ईश्वर ऐसा अच्छा कर देंगे, यह मैं न जानती थी। ठौर ठौर पर घूमती फिरती आखिर जब मैं कलकत्ते आई और आप के दर्शन मिले तब मैंने समझा कि भगवान् ने मुझ पर भी दया की है।

"मौसी, माँ आप को लिवाने आई है।" विनय ने घर में पैर रखने के साथ यह बात हरिमोहिनी से कही। सुशीला ने उत्कण्ठित होकर कहा—वे कहाँ हैं?

विनय ने कहा—नीचे आप की माँ के पास बैठी है।

सुशीला झट नीचे चली गई।

परेश बाबू ने हरिमोहिनी से कहा—मैं आप के घर में आप की वस्तुओं को रख आता हूँ।

परेश बाबू के चले जाने पर विनय ने अचम्भे के साथ कहा—तुम्हारे घर की बात मैं नहीं जानता।

हरिमोहिनी ने कहा—मैं भी तो नहीं जानती, केवल परेश बाबू जानते हैं। वह घर हमारी राधा रानी का है।

विनय ने यह सुन कर कहा—मैं ने सोचा था कि विनय संसार में किसी के काम आवेगा, पर अब यह आशा भी जाती रही। अभी तक तो मुझसे माँ की कुछ सेवा बन नहीं पड़ी है, जो काम मुझे करना चाहिए उसे वे आप कर रही हैं। मौसी का भी कुछ काम न करके मैं उसी से अपना काम लूँगा। मेरे नसीब में केवल लेना ही लिखा है, देना नहीं।

कुछ देर बाद ललिता और सुशीला के साथ आनन्दी आ पहुँची। हरिमोहिनी ने कुछ आगे बढ़ कर कहा—"भगवान जब दया करते हैं तब किसी बात की कमी नहीं रहती। बहन, आज तुम भी मिल गई" यह कह कर उसे हाथ पकड़ ले आई, और चटाई के ऊपर बिठाया।

हरिमोहिनी ने कहा—बहन, तुम्हारी चर्चा छोड़कर विनय के मुँह में और कोई बात ही नहीं।

आनन्दी ने हँस कर कहा—बचपन से ही उसको यह

रोग है । वह जिस बात को पकड़ता है उसे शीघ्र नहीं छोड़ता । मौसी का नाम लेना भी अब शीघ्र ही शुरू होगा ।

विनय ने कहा—हाँ, यह होगा । यह मैं पहले ही कह रखता हूँ ।

ललिता की ओर देख कर आनन्दी मुसकुराती हुई बोली—जो वस्तु विनय के पास नहीं है उसका संग्रह करना वह जानता है, और संग्रह करके उसका आदर करना भी जानता है । तुम लोगों को वह किस दृष्टि से देख रहा है, यह भी मैं जानती हूँ । जिस बात को वह कभी कल्पना में भी नहीं ला सकता था, मानों उसे वह सहसा पागया है । तुम लोगों के साथ उसके परिचय की घनिष्ठता होने से मुझे जितना हर्ष हुआ है, वह मैं तुमसे क्या कहूँ । तुम्हारे इस घर में विनय का जो इस तरह मन रम गया है इससे उसका बड़ा उपकार हुआ है । इस बात को वह बखूबी समझता है, और हृदय से स्वीकार भी करता है ।

ललिता ने कुछ उत्तर देने की चेष्टा की पर कुछ उत्तर न दे सकी । उसका मुँह लज्जा से लाल हो गया । सुशीला ने ललिता का संकट देख कर कहा—विनय बाबू सब के हृदय का सद्भाव लखते हैं इसी लिए सब मनुष्यों का सद्भाव इनके पास आकर एकत्रित होता है । यह इनमें विशेष गुण है ।

विनय ने कहा—तुम विनय को जितना बड़ा समझती हो उसकी उतनी बड़ी इज्ज़त संसार में नहीं है । यह बात मैं तुम

को समझाना चाहता हूँ, परन्तु मेरे मन में इतना अधिक अभिमान है जिससे मैं समझा नहीं सकता, इसके आगे मैं अब कुछ नहीं बोल सकता । मेरी बात यहीं तक रही ।

इसी समय सतीश अपने प्यारे पिल्ले को लिये दौड़ता दौड़ता वहाँ आ गया । हरिमोहिनी घबड़ा कर बोली, बेटा सतीश, इस कुत्ते को यहाँ से ले जाओ ।

सतीश ने कहा—मौसी, डरो मत, यह कुछ न करेगा, यह तुम्हारे घर में न जायगा । तुम इस पर ज़रा प्यार तो करो ।

हरिमोहिनी ने कहा—नहीं बेटा, इसे ले जाओ ।

तब आनन्दी ने कुत्ते और सतीश को अपने पास बिठा लिया । कुत्ते को अपनी गोद में लेकर उन्होंने सतीश से पूछा—कहो सतीश, तुम हमारे विनय के मित्र हो न ?

विनय बाबू को अपना मित्र बता देने में सतीश गौरव समझता था, इसलिए उसने निःसंकोच हो कर कहा—"हाँ ।" यह कह कर वह आनन्दी के मुँह की ओर देखने लगा ।

आनन्दी ने कहा—मैं विनय की माँ हूँ ।

कुत्ते का बच्चा आनन्दी के हाथ की चूड़ी चाटने की चेष्टा करके अपने विनोद में प्रवृत्त हुआ । सुशीला ने सतीश से कहा—बख़्तियार, माँ को प्रणाम करो ।

सतीश ने लजाते लजाते किसी तरह आनन्दी को प्रणाम किया ।

इसी समय शिवसुन्दरी ने ऊपर आकर हरिमोहिनी की ओर दृक्पात तक न कर के आनन्दी से पूछा—आप हमारे घर की बनी कोई वस्तु खा सकेंगी ?

आनन्दी ने कहा—खाने-पीने में क्या धरा है, हम आप के घर में खाने से क्या अजात होंगी ? किन्तु आज नहीं, गौरमोहन आ ले तब खायंगी।

आनन्दी, गौर के परोक्ष में, उसके विरुद्ध कोई काम कर न सकी।

शिवसुन्दरी ने विनय की ओर देख कर कहा—विनय बाबू तो यहाँ हैं। मैं समझती थी, वे अभी तक नहीं आये हैं।

विनय ने तुरन्त कहा—मैं जो आया हूँ सो आप समझती हैं कि बिना आप से भेंट किये ही चला जाऊँगा ?

शिवसुन्दरी ने कहा—कल तो आप निमन्त्रित होने पर भी बिना भोजन किये चले गये, आज मालूम होता है, बिना निमंत्रण के ही भोजन करेंगे।

विनय—इसका तो मैं अत्यन्त लोभी हूँ। मासिक के अलावा ऊपरी लाभ की ओर खिंचाव अधिक होता है।

हरिमोहिनी मन ही मन विस्मित हुई। विनय इस घर में खाता-पीता है। आनन्दी भी कुछ आचार-विचार नहीं करती। इससे उसका मन कुछ उदास हुआ।

शिवसुन्दरी के चले जाने पर हरिमोहिनी ने संकोच के साथ पूछा—बहन, तुम्हारे स्वामी क्या—

आनन्दी—मेरे स्वामी कट्टर हिन्दू हैं।

हरिमोहिनी को अपार आश्चर्य हुआ। आनन्दी ने उसके मन का भाव समझ कर कहा—बहन, जब मैं समाज को श्रेष्ठ मानती थी तब समाज को मान कर ही चलती थी। किन्तु भगवान् ने मेरे घर में एक ऐसी घटना कर दी जिससे मुझे समाज को छोड़ना पड़ा। उन्होंने जब स्वयं आकर मुझे जाति से ख़ारिज कर दिया तब मैं अब किस से डरूँ।

हरिमोहिनी ने इस कैफ़ियत का अर्थ न समझ कर कहा—तुम्हारे स्वामी?

आनन्दी—इस के लिए वे मुझ से नाराज़ रहते हैं।

हरिमोहिनी—लड़के?

आनन्दी—लड़के भी ख़ुश नहीं हैं। किन्तु उन्हें ख़ुश करने से ही क्या होगा? बहन, मैं अपनी बात क्या कहूँ? जो सर्वज्ञ हैं, वही समझेंगे।—यह कह कर आनन्दी ने हाथ जोड़ प्रणाम किया।

हरिमोहिनी ने समझा, शायद कोई पादरी की स्त्री आनन्दी को किरिस्तानिन बना गई है। उसके मन में बड़ी लज्जा उत्पन्न हुई।

[४३]

सुशीला के साथ ही साथ लावण्यलता, ललिता और

लीलावती घूमने लगीं। वे बड़े उत्साह के साथ सुशीला का नया घर सजाने को गईं किन्तु उस उत्साह के भीतर गुप्त वेदना के आँसू थे।

इतने दिन तक सुशीला किसी न किसी ढंग से परेश बाबू के छोटे बड़े कितने ही काम कर दिया करती थी। कभी फूलदान में फूल सजा कर रखती, टेबल के ऊपर पुस्तकें सँवार कर रख देती, और उनका बिछौना अपने हाथ से धूप में सूखने को रख देती थी। नित्य स्नान के समय उनको समय का स्मरण करा दिया करती थी। इन कामों को करके वह कभी अपने मन में अभिमान न करती थी। सुशीला आज कल जब परेश बाबू के घर का कोई साधारण काम करने को आती थी तब वह काम परेश बाबू की दृष्टि में बहुत बड़ा दिखाई देता था। और इससे उनके हृदय में विशेष सन्तोष उत्पन्न होता था। यह काम अब दूसरे दिन दूसरे के हाथ से होगा, यह सोचकर सुशीला की आँखों में आँसू भर आते थे।

जिस दिन दो-पहर को भोजन करके सुशीला के नये घर में जाने की बात थी उस दिन सवेरे परेश बाबू ने अपने सूने घर में उपासना करने के लिए जाकर देखा कि उनके आसन के आगे की भूमि को फूलों से सजाकर सुशीला घर के एक कोने में उनके आने की प्रतीक्षा कर रही है। लावण्य और लीला भी उपासना-स्थल में आज आवेंगी, ऐसा उन्होंने विचार किया था किन्तु ललिता ने उन दोनों को रोक

रक्खा, वहाँ जाने न दिया। ललिता जानती थी कि परेश बाबू की निर्जन उपासना में योग देकर सुशीला मानों विशेष भाव से उनके आनन्द का अंश और आशीर्वाद प्राप्त करती है। आज सबेरे उस आशीर्वाद को प्राप्त करने का सुशीला को विशेष प्रयोजन था, यह सोच कर ललिता ने आज की उपासना की शून्यता भङ्ग न होने दी।

उपासना समाप्त हो जाने पर जब सुशीला की आँखों से आँसू गिरने लगे तब परेश बाबू ने कहा—बेटी, रोती क्यों हो? पीछे की ओर घूम कर मत देखो, आगे का मार्ग तय करने की चेष्टा करो, संकोच करने की आवश्यकता नहीं। जैसा समय आपड़े, सुख या दुःख जो तुम्हारे सामने आजाय, उन सबों को चुप चाप सह लिया करो; और अपनी शक्ति के अनुसार जहाँ तक हो सके अच्छा काम करो। मन में खेद को कभी न आने दो। प्रसन्न रहना ही जीवन का मुख्य उद्देश है, ईश्वर को संपूर्ण रूप से आत्म-समर्पण कर के उन्हीं को अपना एक मात्र सहायक समझो। इससे भूल होने पर भी लाभ के मार्ग से विचलित न हो सकोगी। और यदि अपने को पूर्ण रूप से ईश्वर को समर्पित न करके अन्यत्र मन लगाओगी तो तुम्हारे सब काम कठिन हो जायँगे। ईश्वर ऐसा ही करें जिसमें तुम को हमारे साधारण आश्रय की आवश्यकता न हो।

उपासना के बाद दोनों ने बाहर आकर देखा कि बैठने के कमरे में हरि बाबू प्रतीक्षा किये बैठा है। सुशीला ने आज से

किसी के विरुद्ध मन में किसी तरह का विद्रोह-भाव न रखने का प्रण करके हरि बाबू को नम्रता-पूर्वक नमस्कार किया। हरि बाबू ने अपने को अत्यन्त दृढ़ करके गम्भीर स्वर में कहा—सुशीला, इतने दिन तक तुमने जिस सत्य का आश्रय किया था उससे आज पीछे हट रही हो। यह हम लोगों के लिए बड़े शोक का अवसर है।

सुशीला ने कुछ उत्तर न दिया, किन्तु जो रागिनी उसके मन के भीतर शान्ति और दया के साथ मिश्रित होकर बज रही थी उसमें कुछ बेसुरी आवाज़ आपड़ी।

परेश बाबू ने कहा—अन्तर्यामी भगवान् जानते हैं कि कौन आगे बढ़ रहा है और कौन पीछे हट रहा है। बाहरी बातों का विचार कर के हम लोग वृथा उद्विग्न होते हैं।

हरि बाबू ने कहा—तो क्या आप कहना चाहते हैं कि आप के मन में कोई आशङ्का नहीं है? और आप के पश्चात्ताप का भी कोई कारण नहीं है?

परेश बाबू ने कहा—हरि बाबू, काल्पनिक आशङ्का को मैं मन में जगह नहीं देता और अनुताप का कारण होना तभी मानूँगा जब मन में अनुताप उत्पन्न होगा।

हरि बाबू—यह जो आपकी कन्या ललिता अकेली विनय बाबू के साथ स्टीमर पर चली आई, क्या यह भी काल्पनिक है?

सुशीला का मुँह क्रोध से लाल हो गया। परेश बाबू ने कहा—हरि बाबू, आपका मन किसी कारण से उत्तेजित

हो उठा है। इस लिए अभी इस सम्बन्ध में आप के साथ वार्तालाप करने से आप के प्रति अन्याय करना होगा।

हरि बाबू ने सिर उठा कर कहा—मैं किसी बात के जोश में आकर कोई बात नहीं कह बैठता। मैं जो कहता हूँ, उस सम्बन्ध में मुझे बोलने का पूर्ण-अधिकार है। उसके लिए आप चिन्ता न करें। मैं आप से जो कह रहा हूँ, वह मैं व्यक्तिगत भाव से नहीं कहता। मैं ब्राह्म-समाज की ओर से कहता हूँ। न कहना अन्याय होगा, यह समझ कर ही मैं यह कहता हूँ कि यदि आप आँख मूँद कर न चलते तो विनय बाबू के साथ जो ललिता अकेली चली आई, इस एक घटना से ही आप समझ जाते कि आप का यह परिवार ब्राह्म-समाज के लङ्गर को तोड़ कर बह जाने का उपक्रम कर रहा है। यह केवल आप के ही अनुताप का कारण न होगा, इस से सारे ब्राह्म-समाज की अप्रतिष्ठा होगी।

परेश बाबू ने कहा—किसी का कोई बाहरी व्यवहार देख कर ही निन्दा करता है, किन्तु विचार करते समय भीतर की बात देखनी होती है। केवल किसी घटना से मनुष्य को दोषी मत बनाइए।

हरि बाबू ने कहा—वह घटना कुछ ऐसी वैसी घटना नहीं है। आप इस घटना की भीतरी बात सोच कर ही देखिए; आप ऐसे ऐसे लोगों को अपने घर में आत्मीय भाव से ग्रहण करते हैं जो आप के घर के लोगों को अपने समाज से दूर ले जाना

चाहते हैं। दूर लेही तो गये, क्या यह आप को सूझता नहीं है?

परेश बाबू ने कुछ रुष्ट होकर कहा—आपकी सूझ विलक्षण है, आप के साथ मेरा मत कैसे मिलेगा ?

हरि बाबू—सही है। नहीं मिलेगा । किन्तु, मैं सुशीला को ही साक्षी मानता हूँ। वही सच सच कहे, कुछ दिन से ललिता के साथ विनय का जो सम्बन्ध हुआ है वह क्या केवल बाहरी सम्बन्ध है? क्या उस सम्बन्ध में आन्तरिक भाव नहीं पाया जाता ? सुशीला ! तुम कहाँ चली ? तुम्हारे चले जाने से काम नहीं बनेगा। इस बात का जवाब देना होगा। यह साधारण बात नहीं है।

सुशीला ने झिड़क कर कहा-साधारण हो चाहे न हो, इस से आप को क्या? इसमें आप को कुछ कहने का अधिकार नहीं।

हरि बाबू ने कहा—अधिकार न रहने पर मैं चुप ही न बैठ रहता, बल्कि इसका ख़याल भी न करता। समाज को तुम लोग भले ही न मानो, किन्तु जब तक तुम लोग इस समाज में हो तब तक समाज तुम लोगों का विचार करेगा ही। तुम समाज के विरुद्ध कोई काम न कर सकोगी।

ललिता बवंडर की तरह घर में प्रवेश करके बोली—यदि समाज ने आप को विचारक के पद पर नियुक्त किया हो तो इस समाज से बाहर होजाना ही हम सब के लिए अच्छा होगा।

हरि बाबू ने कुरसी से खड़े होकर कहा—आप के आने से मैं बहुत प्रसन्न हुआ। आप के सम्बन्ध में जो नालिश दायर है उस का विचार आप के सामने ही होना ठीक है।

क्रोध से सुशीला की भौंहें तन गईं। उसने कहा—हरि बाबू, आप अपने घर में जा कर अपना इजलास करें। गृहस्थ के घर में आकर आप बढ़ चढ़ कर बोलें, उनकी निन्दा करें, आप के इस अधिकार को हम लोग किसी तरह नहीं मानेंगी। आओ बहन ललिता, बैठो।

ललिता जहाँ की तहाँ खड़ी रही। उसने कहा—सुनो बहन, मैं भागूँगी नहीं। हरिश्चन्द्र बाबू को जो कुछ कहना है, कहें। मैं सब सुन लेना चाहती हूँ। कहिए क्या कहते हैं?

हरि बाबू एकाएक रुक गया।

परेश बाबू ने कहा—नहीं बेटी! आज सुशीला मेरे घर से जायगी। आज सबेरे सबेरे मैं किसी तरह की अशान्ति या कलह होने न दूँगा। हरि बाबू! आप बुद्धिमान् हैं। हम से आज कितने ही अपराध क्यों न हों, आज आप को सब माफ़ करने होंगे।

हरि बाबू गम्भीर भाव धारण कर चुप हो बैठ रहा। सुशीला जितना ही उसको छोड़ना चाहती थी, उतना ही बल करके वह इसको पकड़ रखना चाहता था। उसको पूर्ण विश्वास था कि हम असाधारण नैतिक बल से अवश्य ही जीतेंगे। अब भी उसने हठ छोड़ दिया हो, यह भी नहीं, सुशीला के

प्रति उसका भाव वही है। अब उसके मन में इस बात का सोच हुआ कि मौसी के साथ सुशीला दूसरे मकान में जायगी वहाँ उस पर मेरा ज़ोर नहीं चलेगा। इसी सोच से वह बेचारा क्षुब्ध था। इसी हेतु आज अपने ब्रह्मास्त्र को ख़ूब तेज़ कर लाया था। आज सबेरेही वह मिज़ाज को ख़ूब कड़ा कर के सब बातों का फ़ैसला कर लेने को तैयार था। आज सब संकोच को मन से हटा कर ही आया था। किन्तु उसका विरुद्ध दल भी इसी प्रकार संकोच दूर कर सकता है, ललिता और सुशीला भी एकाएक तर्कस से तीर निकाल कर खड़ी होंगी, इसकी कभी उसने कल्पना भी न की थी। वह जानता था कि जब हम अपने नैतिक अग्निबाण को बड़े वेग से चलावेंगे तब हमारे विपक्षी का सिर नीचा होजायगा। किन्तु ऐसा न हुआ। अवसर भी हाथ से जाता रहा। किन्तु हरि बाबू हार मानने वाला न था। उसने मन में कहा—सत्य की जय होगी ही। पर यों ही तो जय होगी नहीं, इसके लिए लड़ाई करनी होगी। हरि बाबू कमर कस रणक्षेत्र में प्रविष्ट हुआ।

सुशीला ने हरिमोहिनी से कहा—मौसी, मैं आज इन सबों के साथ मिल कर भोजन करूँगी, तुम मन में बुरा मत मानो।

हरिमोहिनी चुप हो रही। उस ने मन में विश्वास कर लिया था कि सुशीला सम्पूर्ण रूप से मेरी हो गई, मैं उससे जो कहूँगी, वही करेगी। विशेष कर जब सुशीला अपनी सम्पत्ति के बल स्वाधीन होकर अपना घर सँभालने चली है

तब हरिमोहिनी को अब किसी बात का ख़ौफ़ न रहेगा। वह सुशीला को सोलह आने अपने पथ पर चला सकेगी। यही कारण है कि आज जब सुशीला ने आचार-विचार त्यागकर फिर सब के साथ इकट्ठी होकर भोजन करने का प्रस्ताव किया तब यह बात उसे अच्छी न लगी, और वह चुप हो रही।

सुशीला ने उसके मन का भाव समझ कर कहा—मैं तुम से सच कहती हूँ कि इससे ठाकुर जी प्रसन्न होंगे। मेरे उन्हीं अन्तर्यामी ठाकुर ने मुझे आज सबके साथ बैठ कर भोजन करने का आदेश दिया है। उनकी बात न मानूँगी तो वे नाराज़ होंगे। मैं उनकी नाराज़गी को तुम्हारे क्रोध की अपेक्षा अधिक डरती हूँ।

जब से हरिमोहिनी शिवसुन्दरी के द्वारा अपमानित होने लगी तब से सुशीला ने उसके अपमान का अंश अपने ऊपर लेने के लिए उस का आचार ग्रहण किया था और आज जब उस अपमान से छुटकारा पाने का दिन उपस्थित हुआ तब सुशीला उसका आचार न मान कर क्यों चल रही है, हरिमोहिनी इस बात को भली भाँति नहीं समझ सकी। वह सुशीला को समझा कर कोई बात न कहती थी। समझाना उस के लिए एक कठिन समस्या थी।

हरिमोहिनी ने सुशीला को स्पष्ट रूप से मना तो न किया किन्तु वह मन ही मन रुष्ट हुई। वह सोचने लगी, राम! राम! मनुष्य को इस धर्म में क्योंकर प्रवृत्ति हो सकती है,

यह मैं नहीं जानती। ब्राह्मण के घर में तो जन्म है, तब ऐसा अनाचार क्यों?

कुछ देर चुप रह कर उसने कहा—बेटी! मैं तुम से एक बात कहती हूँ। तुम्हारे जी में जो आवे करो, किन्तु इस दुसाध नौकर के हाथ का पानी मत पीओ।

सुशीला ने कहा—क्यों! यह रामदीन बेहरा ही तो अपनी गाय का दूध दुह कर तुम को दे जाता है।

हरिमोहिनी ने नेत्र विस्फारित करके कहा—तुम ने तो ग़ज़ब किया। दूध और पानी एक हुआ!

सुशीला ने हँस कर कहा—अच्छा मौसी, रामदीन का छूआ जल आज मैं न पीऊँगी। किन्तु सतीश से तुम ऐसा करने को कहोगी तो वह ठीक इसका उलटा काम करेगा।

हरिमोहिनी—उसकी बात न्यारी है।

हरिमोहिनी जानती थी कि पुरुषों के आचार-विचार में संयम-नियम की त्रुटि सहनी ही पड़ती है।

[४४]

हरि बाबू ने प्रचण्ड रूप धारण कर रणक्षेत्र में प्रवेश किया।

ललिता को अगिनबोट पर विनय के साथ आये आज प्राय: पन्द्रह दिन हो गये हैं। यह बात दो चार मनुष्यों के कान में जा चुकी है और धीरे धीरे व्याप्त होने की चेष्टा कर

रही है। किन्तु अभी दो दिन के भीतर ही यह ख़बर सूखे खर में आग लगने की तरह चारों ओर पसर गई है।

ब्राह्म-परिवार के धर्म-नैतिक-जीवन के प्रति लक्ष्य करके इस प्रकार के कुव्यवहार को दबाना उचित है, यह हरि बाबू बहुतों को समझा चुका है। समझाने में उसे विशेष कष्ट बोध नहीं होता। जब हम लोग सत्य के अनुरोध से या कर्तव्य के अनुरोध से दूसरों के दोष पर घृणा प्रकट करते हैं और उन्हें दण्ड देने को उद्यत होते हैं, तब सत्य धर्म और कर्तव्य कर्म का पालन करना हम लोगों के लिए कदापि क्लेशकारक नहीं है। इस सिद्धान्त के विषय में हरि बाबू जब ब्राह्म-समाज में अप्रिय सत्य की घोषणा और कठोर कर्तव्य का साधन करने को प्रवृत्त हुआ तब इतनी बड़ी अप्रियता और कठोरता का कुछ भय न कर कितने ही लोग उत्साहपूर्वक उसका साथ देने को खड़े हो गये। ब्राह्म-समाज के हितैषी लोग पालकी गाड़ी करके परस्पर एक दूसरे के घर जाकर कह आये—आज कल जब ऐसी ऐसी घटना होने लगी है तब ब्राह्म-समाज के भविष्य को घोर अन्धकार में छिप गया समझना चाहिए। इसके साथ साथ सुशीला जो हिन्दू हुई है, और हिन्दूधर्मवाली मौसी के घर में रह कर नियम-निष्ठा के साथ ठाकुरजी की सेवा करके दिन बिता रही है, यह बात भी घर घर में फैलने लगी।

बहुत दिनों से ललिता के मन में एक बात का विवाद

चल रहा था। वह नित्य रात को सोने के पहले कहती थी कि मैं कभी हार न मानूँगी और जाग कर भी वह आँखें मलती हुई बोलती थी, चाहे जो हो, मैं कभी हार न मानूँगी, किसी तरह भी नहीं। यह मानसिक कलह और किसी के साथ नहीं, केवल विनय के साथ था। विनय की चिन्ता उसके मन पर सम्पूर्ण रूप से अधिकार किये बैठी थी। विनय नीचे के कमरे में बैठ कर बातें कर रहा है, यह जानते ही उसका कलेजा उछलने लगता था। उसके मन की सोची हुई सब बात छूमन्तर की तरह उड़ जाती थी। विनय जहाँ दो दिन उसके घर न आया कि वह मारे सोच के मन ही मन पछाड़ खाने लगती थी। उसके ऊपर एक झूठ मूठ का क्रोध और अपने ऊपर ग्लानि उत्पन्न हो आती थी। बीच बीच में सतीश को किसी न किसी बहाने विनय के घर भेजती और सतीश के लौट आने पर खोद खोद कर पूछती थी कि विनय क्या कर रहा है, विनय के साथ क्या बातें हुई, इत्यादि। विनय के सम्बन्ध की सब बातें आदि से अन्त तक पूछ करके ही, वह उसे छुट्टी देती थी। इस विषय में ललिता का मन जितना ही आगे को बढ़ता जाता है उतनी ही उसके मन की यन्त्रणा बढ़ती जाती है। ग्लानि से उसका हृदय उतना ही अधीर हुआ जाता है। विनय और गौरमोहन के साथ क्यों परिचय होने दिया, पिता ने क्यों उनके साथ बात चीत करने में रोक टोक न की, कभी कभी इस बात को सोच कर उसे परेश बाबू पर क्रोध भी हो आता

था। किन्तु वह अन्त तक लड़ेगी, मर जायगी तो क़बूल, पर हार न मानेगी, यही उसकी प्रतिज्ञा थी। इस जीवन को मैं कैसे बिताऊँगी, इस विषय में नाना प्रकार की कल्पना उसके मनके भीतर आती-जाती थी। यूरोप की लोक-हितैषिणी-कुमारिकाओं के जीवनचरित की जो कीर्ति-कथायें वह पढ़ चुकी थी वही उसको अपने लिए साध्य और बर्तने योग्य मालूम होने लगीं।

एक दिन उसने परेश बाबू से जाकर कहा—पिता जी! क्या मैं किसी कन्यापाठशाला में शिक्षा देने का भार नहीं ले सकती?

परेश बाबू ने अपनी लड़की के मुँह की ओर देखा। क्षुधा से व्याकुल हुए हृदय की वेदना से उसकी दीनता-भरी आँखें मानों कंगाल होकर उनसे यह प्रश्न कर रही हैं। उन्होंने स्नेह-भरे स्वर में कहा—क्यों नहीं ले सकोगी बेटी! किन्तु वैसा गर्ल्स् स्कूल है कहाँ?

जिस समय की बात हो रही है उस समय कन्या-पाठशालाओं की संख्या अधिक न थी। कहीं कहीं साधारण पाठशालाएँ थीं और अच्छे घर की स्त्रियाँ तब अध्यापिका का काम करने को आगे पैर न बढ़ाती थीं। ललिता ने व्याकुल होकर कहा—क्या सचमुच पाठशालाएँ नहीं हैं?

परेश बाबू ने कहा—कहीं देखने में तो नहीं आतीं।

ललिता—अच्छा, पिता जी! क्या एक कन्यापाठशाला खोली नहीं जा सकती?

परेश बाबू—क्यों नहीं खोली जा सकती? परन्तु इसके लिए पूरा खर्च चाहिए। और इसमें अनेक लोगों की सहायता दरकार है।

ललिता जानती थी कि अच्छे काम की ओर चित्त का झुकाव होना ही कठिन है, किन्तु उसके साधन-पथ में जो इतनी विघ्न-बाधाएँ हैं, यह वह पहले नहीं समझती थी। कुछ देर चुपचाप बैठ कर वह वहाँ से उठ कर धीरे धीरे चली गई। परेश बाबू अपनी लड़की के मानसिक दुःख का कारण ढूँढ़ने लगे। वे जब इस बात को सोचने लगे तब विनय के सम्बन्ध में जो हरि बाबू उस दिन कुछ कह गया था वह भी उन्हें याद हो आया। उन्होंने लम्बी साँस लेकर अपने मन से पूछा—तो क्या मैंने भूल की है? उसके सिवा कोई दूसरी लड़की होती तो विशेष चिन्ता का कारण न था, किन्तु ललिता के चरित्र को वे बहुत विशुद्ध मानते थे। छल प्रपञ्च किसे कहते हैं, यह तो वह जानती ही नहीं। उसके सभी व्यवहारों का सत्य से सम्बन्ध है। सुख दुःख को वह बराबर समझती है।

उसी दिन दो-पहर को ललिता सुशीला के घर गई। उसके घर में सजावट की कोई चीज़ देखने में न आई। घर के भीतर दो चटाइयाँ बिछी थीं। उसी पर एक ओर सुशीला का और दूसरी ओर हरिमोहिनी का बिछौना था। हरिमोहिनी चारपाई पर नहीं सोती है इस कारण सुशीला भी उसके साथ एक घर में नीचे बिछौना कर के सोती है। दीवाल पर परेश बाबू

का एक चित्र टँगा है। उस घर से सटी कोठरी में सतीश की चारपाई बिछी है और एक कोने में एक छोटी सी टेबल पर दावात-क़लम-कॉपी-स्लेट और किताबें आदि लिखने-पढ़ने का सामान जहाँ तहाँ बिखरा पड़ा है। एकआध कॉपी और किताब टेबल के नीचे भी गिरी पड़ी है। सतीश स्कूल गया है। घर में सन्नाटा छाया है।

भोजन के अनन्तर हरिमोहिनी अपनी चटाई पर लेटी है और नींद आने की बाट जोह रही है। सुशीला अपने खुले केशों को पीठ की ओर करके चटाई पर बैठी है और सिर नीचा किये, गोद में तकिया रख कर हाथ में किताब लिये बड़े ध्यान से कुछ पढ़ रही है। उसके सामने और भी कितनी ही पुस्तकें पड़ी हैं।

ललिता को एकाएक घर में आते देख सुशीला ने मानों लजा कर, झट हाथ की किताब को बन्द कर नीचे रख दिया। फिर लज्जा को लज्जा से ही दबा कर उस किताब को हाथ में ले लिया। यह किताब गौरमोहन के लेखों के संग्रह के सिवा और कुछ न थी।

हरिमोहिनी झट उठ बैठी और बोली—आओ बेटी, ललिता, इधर आ कर बैठो। तुम्हारा घर छोड़ने से सुशीला पर जो बीत रही है, सो मैं जानती हूँ। यहाँ उसका ज़रा भी जी नहीं लगता। जी बहलाने ही के लिए वह किताब लेकर पढ़ने बैठती है। अभी मैं पड़ी पड़ी यही सोच रही थी

कि तुम में से कोई यहाँ आती तो अच्छा होता—इतने में तुम यहाँ आ ही तो गईं। बेटी, तुम बहुत दिन जीओगी।

ललिता के मन में जो बातें थीं, उन्हें सुशीला के पास बैठ कर सुनाना उसने आरम्भ किया। उसने कहा—बहन, इस महल्ले में यदि लड़कियों के लिए एक स्कूल खोल दिया जाय तो कैसा हो?

हरिमोहिनी ने विस्मित हो कर कहा—इस की बात तो सुनो। क्या तुम स्कूल खोलोगी?

सुशीला बोली—स्कूल कैसे जारी होगा? कोई सहायता भी तो करे। ऐसा कोई देखने में नहीं आता जो हम लोगों को इस कार्य में सहायता देगा। बाबू जी से इस बात का ज़िक्र किया था?

ललिता—हम और तुम दोनों मिल कर पढ़ा सकेंगी। प्रार्थना करने पर शायद बड़ी बहन भी राज़ी हो जाय।

सुशीला—सिर्फ़ पढ़ाने ही की बात तो नहीं है। किस प्रकार स्कूल का काम करना होगा, उस के लिए सब नियम चाहिएँ। एक मकान का प्रबन्ध करना होगा। विद्यार्थिनियाँ चाहिएँ और ख़र्च के लिए कुछ रुपये भी चाहिए। ये सब काम क्या योंही हो जायँगे। हम दोनों इसका कहाँ तक क्या कर सकती हैं।

ललिता—बहन, यह कहने से कुछ न होगा। ऐसा कौन काम है जो यत्न करने से नहीं हो सकता। स्त्री होकर जन्म

लिया है तो क्या इस से मुँह छिपा कर घर में पड़ी रहेंगी, क्या हम सब संसार का कोई काम न करेंगी ?

ललिता के मन में जो दुःख का तार था, वह सुशीला के हृदय में बज उठा। वह कुछ जवाब न देकर मन ही मन सोचने लगी।

ललिता ने कहा—महल्ले में तो कितनी ही बे-पढ़ी लिखी लड़कियाँ हैं, हम लोग अगर उनको यों ही पढ़ाना चाहैं तो वे बेहद ख़ुश होंगी। उन में जो पढ़ना चाहेंगी उन्हें तुम्हारे इस घर में लाकर हम तुम दोनों मिल कर पढ़ा दिया करेंगी। इस में ख़र्च की क्या ज़रूरत है ?

इस घर में महल्ले के अज्ञात घर की लड़कियों को एकत्र करके पढ़ाने की बात सुन कर हरिमोहिनी उद्विग्न हो उठी। वह लोगों की भीड़-भाड़ से बचकर एकान्त में पूजा पाठ कर के शुद्ध आचार-विचार से रहना चाहती थी। इसलिए वह ठाकुर जी की सेवा में व्याघात पहुँचने की संभावना से आपत्ति करने लगी।

सुशीला ने कहा—मौसी, तुम डरो मत; यदि लड़कियाँ जुटेंगी तो हम उन्हें नीचे के घर में ही पढ़ा लिखा लेंगी। तुम्हारे इस ऊपर वाले घर में हम उत्पात करने न आवेंगी। सुनो ललिता बहन, यदि पढ़ने वाली लड़कियाँ मिलें तो मैं यह काम करने को राज़ी हूँ।

ललिता—अच्छा, एक बार यत्न कर के देखूँगी।

हरिमोहिनी बार बार कहने लगी—सभी बातों में तुम

लोग किरिस्तानों की नक़ल करोगी तो कैसे चलेगा? गृहस्थ के घर की लड़कियों को स्कूल में पढ़ते मैंने बाप राज कहीं नहीं देखा।

परेश बाबू की छत के ऊपर से समीपवर्ती घरों की छत पर की स्त्रियों में परस्पर वार्तालाप होता था। इस परस्पर की बात चीत में बड़े विस्मय का विषय यह था कि पास वाले घर की स्त्रियाँ इस घर की लड़कियों की, जवानी में भी, अब तक शादी न होने पर आश्चर्य करतीं और प्रायः रोज़ ही प्रश्न पर प्रश्न करती थीं। इसी कारण ललिता इस छत की गपशप से जहाँ तक बनता, अलग रहती थी।

इस छत के मित्रत्व-विस्तार में सबकी अपेक्षा लावण्यलता ही विशेष उत्साहित थी। दूसरे के घर का व्यावहारिक इतिहास जानने की उसे बड़ी चाह थी। उस के लिए यह एक विशेष कुतूहल का विषय था। पड़ोसियों के घर का नित्य नया समाचार वायु की सहायता से उसके कानों में आजाता था। मानों यह सुनने का उसे एक रोग सा हो गया था। कंघी हाथ में लिये बाल सँवारते समय तीसरे पहर को छत के खुले आकाश में उसकी वाग्विनोदिनी सभा जमती थी।

ललिता ने अपने संकल्पित गर्ल्स स्कूल के लिये लड़कियों के संग्रह करने का भार लावण्य को सौंपा। लावण्य ने जब हर एक छतवाली स्त्री से इस प्रस्ताव की घोषणा कर दी तब बहुतेरी

लड़कियाँ उत्साहित हो उठीं। ललिता प्रसन्न होकर सुशीला के घर के निचले खंड को चूने से पोतवा कर ख़ूब झाड़ बुहार कर साफ़ करवाने लगी और उसे लिखने-पढ़ने के उपयोगी सामान से सजाने लगी।

किन्तु उसका वह सजा-सजाया स्कूल का घर सूना ही रह गया। पड़ोस के घर की लड़कियों के अभिभावक यह सुन कर कि हमारे घर की लड़कियों को फुसला कर पढ़ाने के बहाने ब्राह्म-समाज में ले जाने का प्रस्ताव हो रहा है, अत्यन्त क्रुद्ध हो उठे। जब उन्होंने सुना कि परेश बाबू की लड़कियों के साथ हमारे घर की बहू-बेटियाँ छत पर जाकर बात-चीत करती हैं तब उन्हों ने उन सबों को ऊपर जाने की एकदम मना-ही कर दी और ब्राह्म पड़ोसी की लड़कियों के साधु संकल्प पर असाधु भाषा का प्रयोग किया। बेचारी लावण्य ने नित्य नियमानुसार हाथ में कंघी लेकर अपनी छत पर जाकर देखा कि पास वाली छतों पर नवयुवतियों के बदले आज बूढ़ी बूढ़ी स्त्रियाँ आ जुटी हैं। आज और दिन की सी बात न हुई। एक के भी मुँह से उसने सादर संभाषण न सुना।

ललिता इतने पर भी बाज़ न आई। उसने कहा—बहुतेरी ग़रीब ब्राह्म-बालिकाओं का फ़ीसवाले स्कूलों में जाकर पढ़ना कठिन है, इस लिए उनको मुफ़्त पढ़ाना स्वीकार करने से उनका विशेष उपकार हो सकता है।

इस विचार से वह विद्यार्थिनियों की खोज में स्वयं लग पड़ी और सुधीर को भी लगा दिया।

उस समय परेश बाबू के घर की लड़कियों के पढ़ने-लिखने का यश दूर दूर तक फैल गया था। यहाँ तक कि वह यश सत्य का भी अतिक्रम कर गया था। इस लिए कितने ही ग़रीब लड़कियों के माँ-बाप ख़ुश हो उठे कि वेही हमारी लड़कियों को बिना फ़ीस के पढ़ावेंगी।

पहले पाँच छः लड़कियों को लेकर ही ललिता ने स्कूल जारी कर दिया। इस स्कूल के क्या क्या नियम होने चाहिएँ, कब क्या पढ़ाना होगा, इस विषय में परेश बाबू से परामर्श तक लेने का अवसर ललिता को न मिला। वह एका-एक इस काम में प्रवृत्त हो गई। यहाँ तक कि साल के अख़ीर में इम्तिहान हो जाने पर लड़कियों को कैसा पुरस्कार देना चाहिए, इस विषय पर लावण्य के साथ ललिता तर्क-वितर्क करने लगी। ललिता पुरस्कार या पाठ के लिए जिन पुस्तकों का नाम लेती थी उन्हें लावण्य पसन्द न करती थी और इस विषय में लावण्य जो कुछ कहती थी वह ललिता को पसन्द न आता था। लड़कियों की परीक्षा कौन लेगा, इस पर भी बहस हुई। लावण्य यद्यपि हरि बाबू को जी से पसन्द न करती थी तथापि वह उसके पाण्डित्य से परिचित थी और उसकी विद्या का सुयश सर्वत्र व्याप्त है यह वह जानती थी। हरि बाबू उस पाठशाला का परीक्षक या निरीक्षक नियुक्त

हो तो उस पाठशाला का विशेष नाम होगा, इस विषय में उसे कुछ भी सन्देह न था किन्तु ललिता ने इस बात को एकदम अस्वीकार कर दिया। हरि बाबू के साथ उसकी इस पाठशाला का कोई सम्बन्ध नहीं रह सकता।

दो ही तीन दिन के भीतर उसकी छात्रियों की संख्या घटते घटते क्लास ख़ाली हो गया। ललिता अपने सूने क्लास में बैठ कर लड़कियों के आने की बाट जोहने लगी। किसी के पैरों की आहट सुन कर वह किसी छात्री के आने की आशङ्का से चकित हो उठती थी। इस प्रकार जब दो-पहर बीत गया तब उसने समझा कि किसी ने विघ्न डाला है। कुछ न कुछ ज़रूर दाल में काला है।

पास में जो छात्री रहती थी उसके घर ललिता गई। छात्री आँखों में आँसू भर कर रोती हुई सी बोली—माँ मुझ को जाने नहीं देती है। उस की माँ ने कहा—'वहाँ जाने में अनेक बाधाएँ हैं।' बाधाएँ क्या हैं, यह स्पष्ट नहीं बताया। ललिता बड़ी मानिनी है। वह दूसरी ओर अनिच्छा का लेश मात्र देखने से न हठ कर सकती है और न कारण ही पूछ सकती है। उस ने कहा—अगर बाधा है तो मत भेजो।

इस के बाद ललिता जिस जिस घर में गई वहाँ यही बात सुनी कि सुशीला अब हिन्दू होगई है, वह जाति-पाँति मानती है, मूर्ति पूजती है, उसके घर में जाने से लड़कियों के चित्त पर उसका प्रभाव पड सकता है।

ललिता ने कहा—अगर यही एक मात्र उज़्र हो तो मेरे ही घर में स्कूल होगा।

किन्तु इससे भी आपत्ति का खंडन न हुआ। इस में कुछ और ही गाँठ लगी है। ललिता ने अब और छात्रियों के घर जाना उचित न समझ सुधीर को बुलाकर पूछा—सुधीर, सच सच बतलाओ, क्या मामला है? क्यों लड़कियों का आना एकाएक बन्द हो गया?

सुधीर—हरि बाबू तुम्हारे इस स्कूल के विरुद्ध हो गया है। वह नहीं चाहता कि यह स्कूल चले।

ललिता—सुशीला बहन के घर ठाकुरजी की पूजा होती है इसी से?

सुधीर—सिर्फ़ इतना ही नहीं।

ललिता ने अधीर होकर कहा—और क्या! कहते क्यों नहीं?

सुधीर ने कहा—बहुत बातें हैं।

ललिता—शायद मैं अपराधिनी समझी गई हूँ।

सुधीर चुप हो रहा। ललिता ने क्रोध से मुँह लाल कर के कहा—यह स्टीमर के द्वारा मेरी उस जल-यात्रा का दण्ड है! यदि मैंने वह अविचार का काम किया तो अच्छा काम कर के प्रायश्चित्त करने का मार्ग हमारे समाज में एकबारगी बन्द मालूम होता है! क्या मेरे लिए सभी शुभ कर्म्म इस समाज में निषिद्ध हैं? मेरी और मेरे समाज की आध्या-

त्मिक उन्नति का तुम लोगों ने क्या यही मार्ग ठीक किया है?

सुधीर ने बात को कुछ मुलायम करने के अभिप्राय से कहा—विनय बाबू आदि कहीं इस विद्यालय के साथ सम्मिलित न हो पड़ें, इसी का भय वे लोग करते हैं।

ललिता ने क्रोध से आग-बबूला होकर कहा—भय नहीं, समाज का भाग्य मानना चाहिए। योग्यता में विनय बाबू के साथ बराबरी करने वाले कितने आदमी ब्राह्म-समाजियों में हैं?

सुधीर ने ललिता के क्रोध से संकुचित होकर कहा—यह तो सही है। किन्तु विनय बाबू तो—

ललिता—यही न कहोगे कि वे ब्राह्म-समाज के अन्तर्गत नहीं हैं। इसी से ब्राह्म-समाज उन को दण्ड देगा। ऐसे समाज को मैं गौरवास्पद नहीं समझती।

छात्रियों को एकाएक अन्तर्धान होते देख सुशीला समझ गई थी कि ऐसा क्यों हुआ है, किस के द्वारा यह कुचक्र चल रहा है। वह इस सम्बन्ध में कुछ न कहकर ऊपर के कमरे में सतीश को उसकी समीपीय परीक्षा के लिए तैयार कर रही थी।

सुधीर के साथ बातें करके ललिता सुशीला के पास गई और बोली—कहो बहन कुछ सुना है?

सुशीला ने मुसकुरा कर कहा—सुना तो नहीं है किन्तु जानती सब हूँ।

ललिता ने कहा—क्या यह सब सहने की बात है?

सुशीला ने ललिता का हाथ पकड़ कर कहा—सहने में क्या मानहानि है? पिता जी कैसे सहनशील हैं? सब बातों को वे कैसे सह लेते हैं, देखती नहीं हो?

ललिता—बहन, मैं तुम्हारी बात काट नहीं सकती, किन्तु मेरे मन में कभी कभी ऐसा होता है कि कोई बात सह लेना एक तरह से अन्याय को स्वीकार करना है। अन्याय को न सहना ही उसके प्रति उचित व्यवहार है।

सुशीला ने कहा—तुम क्या करना चाहती हो, सो कहो।

ललिता—मैं क्या करूँगी इस पर मैंने अभी तक ध्यान नहीं दिया है। मैं यह नहीं बता सकती कि क्या करूँगी परन्तु कुछ करना ही होगा। हम लोगों के सदृश कर्तव्य-परायण स्त्रियों के पीछे जो लोग ऐसे खोटे भाव से पड़े हैं, वे अपने को चाहे जितना बड़ा क्यों न मानें, परन्तु वास्तव में वे नीच मनुष्य हैं। वे भले ही उत्पात मचावें, मैं उनसे हार मानने वाली नहीं। कभी नहीं, किसी तरह नहीं। इसके लिए जो उनके जी में आवे करें।—यह कहते ही ललिता ने ज़ोर से ज़मीन पर पैर पटका।

सुशीला कुछ उत्तर न दे कर धीरे धीरे ललिता के हाथ

पर हाथ फेरने लगी। कुछ देर पीछे बोली—ललिता बहन, एक बार बाबू जी से पूछ देखो, वे क्या कहते हैं?

ललिता ने खड़ी होकर कहा—मैं अभी उनके पास जाती हूँ।

ललिता ने अपने घर के फाटक के पास आकर देखा, विनय सिर झुकाये बाहर जा रहा है। ललिता को आते देख वह कुछ देर तक खड़ा हो रहा। ललिता के साथ मैं दो एक बातें करूँ या नहीं, इस बात को वह मन ही मन सोचने लगा। किन्तु उसने अपने को रोक ललिता के मुँह की ओर देखे बिना ही उसे नमस्कार किया। वह सिर झुकाये ही झट चल दिया।

ललिता के हृदय में मानों आग की तपी बर्छी चुभ गई। वह बड़ी तीव्रगति से फाटक पार करके एकाएक अपनी माँ के कमरे में गई। उसकी माँ उस समय टेबल के ऊपर एक लम्बी जमा-खर्च की बही खोल कर बड़े ध्यान से कोई हिसाब करने की चेष्टा कर रही थी।

ललिता का मुँह देखते ही शिवसुन्दरी को शंका हुई। वह ऐसा भाव दिखलाने लगी जैसे कोई एक अङ्क न मिलने से वह बड़ी देर से हैरान हो रही है। हिसाब ठीक ठीक न बैठने से मानों वह ऊब गई है।

ललिता एक कुरसी खींच कर टेबल के पास बैठ गई तो भी शिवसुन्दरी ने सिर न उठाया। ललिता ने कहा—माँ!

शिवसुन्दरी— बैठो बेटी, मैं यही—देखो बड़ी देर से— यह कहकर वह बही के ऊपर और भी झुक पड़ी।

ललिता ने कहा—मैं तुम को विशेष कष्ट न दूँगी। सिर्फ एक बात जानना चाहती हूँ। विनय बाबू आये थे?

शिवसुन्दरी बही की ओर नज़र किये किये ही बोली—हाँ।

ललिता—उनके साथ तुम्हारी क्या बात चीत हुई?

शिवसुन्दरी—बहुत बातें हुईं।

ललिता—मेरे सम्बन्ध में कुछ बात हुई है?

शिवसुन्दरी ने भागने का कोई रास्ता न देख क़लम फेंक बही से सिर उठा कर कहा—हाँ बेटी! हुई थी। जब देखा कि बात दिनों दिन बढ़ती जा रही है, समाज के लोग चारों ओर निन्दा कर रहे हैं, तब लाचार हो कर उन्हें सावधान कर देना पड़ा।

लज्जा से ललिता का सिर झुक गया। उस का कलेजा धड़कने लगा। उसने पूछा—क्या पिता जी ने विनय बाबू को यहाँ आने से मना कर दिया है?

शिवसुन्दरी—वे इन बातों को थोड़े ही सोचते हैं? यदि सोचते तो शुरू से ही ऐसा क्यों होने पाता?

ललिता—क्या हरि बाबू यहाँ आ सकेगा?

शिवसुन्दरी ने भौंहें तानकर कहा—सुनो तो इसकी बात? हरि बाबू क्यों नहीं आवेगा?

ललिता—तो विनय बाबू क्यों नहीं आ सकेंगे?

शिवसुन्दरी ने फिर वही हाथ में ले कर कहा—ललिता, मैं तुम से नहीं जीत सकती । अभी जाओ, मेरा जी मत जलाओ—मुझे बहुत काम हैं ।

ललिता जब दोपहर को सुशीला के घर स्कूल की तैयारी करने गई थी तब यह अच्छा अवसर पा शिवसुन्दरी ने विनय को बुलाकर अपना वक्तव्य कह सुनाया था । उसने सोचा था कि ललिता को इसकी ख़बर ही न मिलेगी । जब उस की क़लई इस तरह खुल पड़ी तब वह नई विपत्ति की आशङ्का कर के डर गई । उसने समझा कि अब इस विरोध की शान्ति शीघ्र न होगी और सहज ही इसका निबटेरा भी न होगा । अपने व्यवहारज्ञान-हीन पति के ऊपर उसका सब क्रोध उथल पड़ा। ऐसे अबोध पुरुष के साथ घर का काम चलाना स्त्री के लिए बड़ी विडम्बना है ।

ललिता अपने अशान्त चित्त को ले कर वायुवेग से चल पड़ी । नीचे के कमरे में बैठे परेश बाबू चिट्ठी लिख रहे थे । वहाँ जाकर वह एकदम उन से पूछ बैठी—पिताजी, क्या विनय बाबू हम लोगों के साथ मिलने के पात्र नहीं हैं ?

प्रश्न सुनते ही परेश बाबू घर की अवस्था को समझ गये। उन के घर के लोगों के विषय में उन के समाज में जो आन्दोलन मच रहा है, वह परेश बाबू से छिपा न था। इस के लिए उन्हें कभी कभी बड़ी चिन्ता करनी पड़ती है । विनय के प्रति ललिता के मन का भाव खिंच गया है, इस सम्बन्ध में यदि

उनके मन में सन्देह न होता तो वे बाहर की बात पर कुछ भी ध्यान न देते। किन्तु विनय के ऊपर यदि यथार्थ में ही ललिता का अनुराग उत्पन्न हुआ हो तो ऐसी अवस्था में क्या करना उचित है, यह प्रश्न वे कई बार अपने मन से पूछ चुके हैं। जब से उन्होंने खुल्लमखुल्ला ब्राह्म धर्म की दीक्षा ली है तब से यही पहले पहल उनके घर में एक संकट का समय उपस्थित हुआ है। इस लिए एक ओर उन्हें समाज का भय भीतर ही भीतर कष्ट दे रहा है और दूसरी ओर उन की समस्त चित्तवृत्ति सिमट कर उन से कह रही है कि ब्राह्मधर्म ग्रहण के समय जैसे एक मात्र ईश्वर की ओर दृष्टि रख कर ही मैं कठिन परीक्षा में उत्तीर्ण हुआ हूँ, सत्य को ही सुख-सम्पत्ति-समाज आदि सबके ऊपर मान कर यह जीवन चिर काल के लिए धन्य हो चुका है, वैसे ही अब भी यदि कठिन परीक्षा का दिन आ गया है तो उसी सत्य की ओर लक्ष्य रख कर मैं उत्तीर्ण हूँगा।

ललिता के प्रश्न के उत्तर में परेश बाबू ने कहा—विनय को तो मैं बहुत अच्छा समझता हूँ। उसकी जैसी ही विद्या और बुद्धि है वैसा ही चरित्र भी उत्तम है।

कुछ देर चुप रह कर ललिता बोली—गौर बाबू की माँ इधर दो दफ़े अपने घर आई हैं। मैं सुशीला बहन के साथ आज एक बार उनके घर जाना चाहती हूँ।

परेश बाबू सहसा कोई उत्तर न दे सके। वे बख़ूबी जानते थे कि जब हमारे घर की आलोचना ब्राह्म-समाज में सर्वत्र

होरही है तब इस प्रकार वहाँ आने जाने से निन्दा और भी बढ़ जायगी। किन्तु उनकी आत्मा बोल उठी कि जब तक यह अन्याय नहीं है तब तक मैं रोक न सकूँगा। उन्होंने कहा—अच्छा, जाओ! मुझे काम करना है नहीं तो मैं भी तुम्हारे साथ चलता।